मुद्रा, विनिमय तथा बैंकिंग

(MONEY, EXCHANGE & BANKING)

प्रथम भाग

लेखक—

आर० के० अग्रवाल, एम० ए०, एम० काम०,

अध्यक्ष वाणिज्य विभाग,

महाराणा भूपाल कालेज, उदयपुर

व

एस० सी० हाड़ा, एम० काम,

प्रवक्ता, वाणिज्य विभाग,

महाराणा भूपाल कालेज, उदयपुर

तथा

एम० पी० सिंह, एम० ए०, एम० काम०,

प्रवक्ता, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर

प्रकाशक—

किशोर पब्लिशिंग हाउस,

परेड, कानपुर

१९५[illegible]

प्रस्तावना

१४ अगस्त, १९४७ को देश स्वतन्त्र हुआ। स्वतंत्रता के साथ देश में अपनी भाषा और संस्कृति का प्रेम उमड़ पड़ा। हिन्दी राष्ट्रभाषा हो, राजकीय समस्त कार्य हिन्दी में हो और विश्वविद्यालयों की शिक्षा का माध्यम भी हिन्दी ही हो, इस प्रकार की माँग देश में गूंज उठी। इसके फलस्वरूप भारतीय विधान सभा को हिन्दी को राष्ट्रभाषा की मान्यता देनी पड़ी। राजकीय कार्यों में सर्वत्र हिन्दी का ही व्यवहार हो, इसके लिये १५ वर्ष की अवधि 'निश्चित कर दी गई। यह अवधि हिन्दी में राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वाणिज्य शास्त्र तथा शासन से सम्बन्धित सभी आवश्यक विषयों पर सामग्री तैयार करने के लिये अत्यावश्यक समझी गई।

हमारे विश्वविद्यालय भी इस ओर गतिशील हैं और हिन्दी धीरे-धीरे शिक्षा का माध्यम बनती चली जा रही है। किन्तु अभी तक देश में उक्त विषयों पर हिन्दी की मौलिक पुस्तकों का अभाव खटकता रहा है। जो भी पुस्तकें देखने में आती हैं, उनमें से अधिकांश अंग्रेजी पुस्तकों के अनुवाद मात्र हैं। इसी कमी की पूर्ति के उद्देश्य से हम अपना यह विनम्र प्रयास 'मुद्रा, विनिमय तथा बैंकिंग' की पुस्तक के रूप में आपके सम्मुख रख रहे हैं।

मुद्रा, विनिमय तथा बैंकिंग का ज्ञान आज के युग में आवश्यक बनता चला जा रहा है। विषय गूढ़ होने के साथ साथ बड़ा महत्वपूर्ण भी है। हमने प्रस्तुत पुस्तक में इसको अति सरल व सुबोध बनाने का पूरा पूरा प्रयत्न किया है।

कठिन व दुरुह शब्दों का मोह त्याग कर हमने बोल चाल के सुगम व प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। स्थान स्थान पर पारिभाषिक शब्दों को समझाने के लिये कोष्टक में अंग्रेजी शब्दों को भी लगा दिया है, जिससे विषय के समझने में कठिनाई न हो। प्रत्येक अध्याय के अन्त में विभिन्न परीक्षाओं के लिये सम्भावित प्रश्न भी जोड़ दिये गये हैं, जिससे विद्यार्थियों को परिक्षात्तर मालूम हो सके और परीक्षा सदन में प्रश्न समझना कठिन न हो।

वैसे तो यह पुस्तक विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा शिक्षा बोर्डों के पाठ्य-क्रम के अनुसार लिखी गई है, किन्तु किसी भी व्यक्ति के लिये, जो मुद्रा, विनिमय तथा बैंकिंग का सामान्य ज्ञान प्राप्त करना चाहता हो, यह बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी। हमको केवल आशा ही नहीं, किन्तु पूर्ण विश्वास है कि विद्यार्थी, शिक्षक तथा अन्य व्यक्ति इससे पूरा लाभ उठायेंगे। पुस्तक के उन सब के लिये उपयोगी सिद्ध होने पर ही लेखक अपने आप को धन्य मानेंगे। पुस्तक सम्बन्धी सुझाव सहर्ष स्वीकार किये जायेंगे और वे उनके लिये सदैव कृतज्ञ रहेंगे।

यहां हम उन सभी महानुभावों के आभारी हैं, जिनसे हमको समय समय पर प्रोत्साहन व मार्ग-प्रदर्शन मिलता रहा है। अन्त में हम अपने प्रकाशक महोदय के भी आभारी हैं, जिन्होंने बड़े अल्प समय में ही पुस्तक को पाठकों के समक्ष लाने का कष्ट किया है।

लेखक—

१५—७—५३

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

प्रारम्भिक अर्थ व्यवस्था

समाज की प्रारम्भिक अर्थ-व्यवस्था आज की अर्थ-व्यवस्था से बिलकुल भिन्न थी। उस समय का मानव आज की भाँति इच्छाओं का पिटारा न था। उसकी इच्छायें अत्यन्त सीमित थीं। जब भूख लगी, कन्द मूल फल खा लिये, जब ठंड लगी वृक्षों की छाल पहिन ली, जब सुरक्षा की आवश्यकता पड़ी, पेड़ के नीचे झोंपड़ी बना कर पड़ रहा। यही उसकी नित्य की जीवन-चर्या थी। आखेट जीवन का एक आवश्यक अंग होने के कारण उसका स्थान स्थान घूमना स्वाभाविक था। विनिमय क्या है यह उसने कभी नहीं जाना।

किन्तु धीरे २ उसकी इच्छायें बढ़ती गईं और उसने खेती करना, मवेशी पालना, औजार बनाना, कपड़ा बुनना आदि बातें सीख ली। जीवन की विभिन्न आवश्यकतायें वह स्वयं ही पूरी कर लेता था। इसलिये इस युग को हम आत्म-निर्भरता का युग (Stage of self sufficiency) कह कर पुकारते हैं।

वस्तु विनिमय (Barter)

यह आत्म निर्भरता अधिक दिनों तक न चली। जो व्यक्ति जिस वस्तु की उत्पादन क्षमता रखता था और जिस ओर जिसकी रुचि थी वह उधर ही बढ़ने लगा। ऐसी अवस्था में

अतिरिक्त उत्पादन (Surplus outout) का होना स्वाभाविक था। इस अतिरिक्त उत्पादन को एक व्यक्ति दूसरे के अतिरिक्त उत्पादन से बदलने लगा। यहींसे विनिमय (Exchai ge) का भी श्रीगणेश हुआ। विनिमय के साथ साथ श्रम विभाजन (Division of Labour) और विशिष्टीकरण (Specialisation) का भी प्रादुर्भाव हुआ। दूसरे शब्दों में एक व्यक्ति अपनी अनावश्यक वस्तु को देकर आवश्यक वस्तु लेने लगा। यहाँ एक व्यक्ति की अनावश्यक वस्तु दूसरे के लिए आवश्यक और दूसरे व्यक्ति की अनावश्यक वस्तु पहिले के लिये आवश्यक होती है। उदाहरण के लिये सोहन ५० मन गेहूँ पैदा करता है और मोहन ५०० गज कपड़ा। अब यदि सोहन को कपड़े की और मोहन को गेहूँ की आवश्यकता हुई तो सोहन मोहन को गेहूँ देकर कपड़ा ले लेगा और मोहन सोहन को कपड़ा देकर गेहूँ ले लेगा। इस प्रकार के वस्तुओं के आदान प्रदान को धारणा [illegible] या वस्तु विनिमय (Barter) कहते हैं। वस्तु-विनिमय में हम तुलनात्मक रूप से कम आवश्यक वस्तु को तुलनात्मक रूप से अधिक आवश्यक वस्तु से बदलते हैं। प्रत्यक्ष विनिमय (Direct Exchange) का अनुपम उदाहरण है क्योंकि यहां हम एक वस्तु को दूसरी वस्तु से बदलते हैं। गांवों में जहां आज भी अनाज के बदले में शाक सब्जी, कपड़ा, औज़ार तथा सेवायें (Services) लेते देते हैं उसको [illegible] कहकर पुकारा जाता है। जैसे २ वस्तुओं की सख्या में वृद्धि हुई और [illegible] विस्तृत हुये वस्तु विनिमय का तरीका अपूर्ण सिद्ध होने लगा और उसमें अनेक कठिनाइयां सामने आने लगी वे इस इस प्रकार हैं—

(१) इच्छाओं के दोहरे एकीकरण का अभाव

एक व्यक्ति के पास जो अधिक मात्रा में वस्तु हो उसकी दूसरे को आवश्यकता और दूसरे व्यक्ति के पास जो अधिक मात्रा

वस्तु हो उसकी पहिले [illegible] कता होना ही इच्छाओं का दुहरा एकीकरण कहलाता [illegible]. राम के पास गेहूँ है और श्याम के पास कपड़ा अब [illegible] राम को कपड़े की और श्याम को गेहूँ की आवश्यकता होना अनिवार्य है तभी उनका सौदा हो सकता है यदि राम गेहूँ के बदले में कपड़ा न लेकर और कोई वस्तु, और श्याम कपड़े के बदले में गेहूँ न लेकर कोई अन्य वस्तु लेना चाहता है तो दोनों का सौदा पटना दुर्लभ है। यही बात अधिकांश में पाई जाती है। अर्थात् ऐसे दो व्यक्ति, जिनकी आवश्यकतायें और अधिकतायें एक दूसरे की पूरक हो, मिलना बड़ा कठिन है इसीलिये वस्तु विनिमय की यह एक बहुत बड़ी कठिनाई सिद्ध होती है।

(२) सर्वमान्य मूल्य मापक का अभाव

दो व्यक्तियों की इच्छाओं का एकीकरण भी हो जाय तो मूल्य मापन की कठिनाई सामने आती है। आज कल की भाँति उस समय कोई एक सर्वमान्य मूल्य मापक न था। इसलिये एक वस्तु की अन्य सब वस्तुओं से भिन्न २ कीमत निश्चित करना आवश्यक था। जैसे एक सेर गेहूँ के बदले में पाँच गज कपड़ा, दस सेर लकड़ी, पाँच सेर कोयला, पचास नारंगी आदि। और फिर सभी वस्तुयें गेहूँ से बदली जायें यह आवश्यक नहीं। किसी के पास कपड़ा है तो वह उससे मूल्य निश्चित करेगा। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक नहीं कि दोनों को एक दूसरे का मूल्य स्वीकार हो। इसलिये सर्वमान्य मूल्य मापक का अभाव दूसरी बड़ी कठिनाई सामने आता है।

(३) विभाजन का अभाव—

यदि दो व्यक्तियों के इच्छाओं के एकीकरण पर व मूल्य मापन पर भी एक मत हो जाय तो वस्तु का विभाजन न होना तीसरी

अड़चन उपस्थित करता है। उदाहरण के लिये एक व्यक्ति के पास गाय है और वह उसके बदले में व्यक्ति कपड़ा, औजार आदि वस्तुयें जो भिन्न २ व्यक्तियों के पास हैं, लेना चाहता है तो वह ऐसा करने में असमर्थ है, क्योंकि एक ही गायको बिना टुकड़े किये वह सबको कैसे दे सकता है और यदि वह टुकड़े करता है तो गाय के मूल्य हीन होने के कारण कोई न लेगा। यह वस्तु विनिमय की तीसरी कठिनाई है।

उपर्युक्त वृत्तान्त से यह स्पष्ट है कि वस्तु विनिमय एक पिछड़े हुये समाज में जहाँ लोगों को इच्छायें सीमित होने से विनिमय का क्षेत्र भी बिलकुल सीमित हो, सम्भव है। आज भी अफ्रीका जैसे पिछड़े हुये देश में, बल्कि हमारे देश में भी आदिवासी लोग अब भी मुद्रा का प्रयोग न कर एक वस्तु से दूसरी वस्तु बदलने की प्रणाली काम में लाते हैं।

अभ्यास-प्रश्न

१—वस्तु विनिमय क्या है? यह किन अवस्थाओं में संभव है? आज के युग में वस्तु विनिमय क्यों नहीं सम्भव है? लिखिये।

२—वस्तु विनिमय की क्या क्या कठिनाइयाँ हैं, सिद्ध कीजिये कि वस्तु विनिमय का अन्त इन कठिनाइयों के कारण ही हुआ।

३—क्या आज युग में वस्तु विनिमय होता है? यदि हाँ, तो उदाहरण सहित लिखिये।

४—'कुछ देशों में वस्तु विनिमय आज भी होता है और यह केवल उनके पिछड़ा होने के कारण' क्या आप इस कथन से सहमत हैं, विस्तार से लिखिये।

द्वितीय अध्याय

मुद्रा की परिभाषा व कार्य

मुद्रा का प्रादुर्भाव

गत अध्याय में हम वस्तु विनिमय की कठिनाइयों के बारे में पढ़ आये हैं। इन कठिनाइयों ने हमको किसी ऐसी वस्तु ढूँढ निकालने को बाध्य किया जो इन अड़चनों से परे हो और जिसके द्वारा हमारा विनिमय माध्यम का कार्य सरलता से चलाया जासके। आवश्यकता ज्ञान की जननी है। मानव धीरे धीरे विकास की ओर अग्रसर होता गया और उसने आधुनिक मुद्रा को खोज निकाला। किन्तु यह खोज एक दिन की नहीं अपितु सैकड़ों वर्षों के सतत् प्रयास का अपूर्व परिणाम है। अब तक भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न वस्तुयें मुद्रा के रूप में काम में लाई जा चुकी है जैसे मसाचुसैट्स में सीसे के टुकड़े, वर्जीनिया में तम्बाखू, कैनाडा में चमड़ा, न्यूफाउन्डलैंड में कॉड मछली, तिब्बत में चाय, उत्तरी अमरीका में वैमपम (Wampum) कौड़ियों से बना एक आभूषण तथा एशयाई देशों में कौड़ी। इनके अतिरिक्त कई देशों में पशु भी सम्भवतः सबसे प्राचीन मुद्रा का रूप था। एंगलो सैक्सन लोग तो गुलामों और पशुओं को जीवित मुद्रा के नाम से पुकारा करते थे। धातु मुद्रा जब पहिले पहल प्रयोग में लाई गई प्राचीन समय के कुछ सिक्कों में पशु की छाप ही अंकित की गई। यही

नहीं लैटिन शब्द (Pecunia) मुद्रा और अंग्रेजी शब्द (Pecuniary) की उत्पत्ति भी Pecus (पशु) शब्द से हुई है। पशुओं को अति प्राचीन काल से मनुष्य की धन दौलत का प्रमुख अंग माना जाता रहा है।

किन्तु जैसे जैसे व्यापारिक युग (commercial stage) आया इन सब वस्तुओं का स्थान सोने और चाँदी ने ले लिया जैसा जान स्टुअर्ट मिल ने कहा भी है—"अपूर्व संयोग से लगभग समस्त राष्ट्रों ने अति प्राचीन काल से ही कुछ धातुओं विशेषकर सोना और चाँदी को इस कार्य के लिये अपनाया। किसी अन्य वस्तु में इतने अधिक आवश्यक तत्वों का लाभपूर्ण सामंजस्य नहीं मिलता। भोजन और वस्त्र के बाद और किसी जलवायु वाले देश में तो वस्त्र से भी पहिले, समाज की आदिम अवस्था में, निजी आभूषणों तथा एक प्रकार की अनुपमता (Distinction) के लिये, जो इन आभूषणों में केवल अलभ्यता तथा बहुमूल्यता द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है, सबसे अधिक झुकाव मिलता है। जीवन की अत्यावश्यक इच्छाओं के संतुष्ट हो जाने के बाद, प्रत्येक व्यक्ति बहुमूल्य तथा आभूषण योग्य वस्तुओं विशेषकर सोना, चाँदी और जवाहिरात का अधिक से अधिक संग्रह करना चाहता था। ये ऐसी वस्तुयें थीं जिनका संग्रह प्रत्येक व्यक्ति को अधिकतर लुभाता था और जिनको किसी भी वस्तु के बदले में सहर्ष लेने को लोग शीघ्र तैयार हो जाते थे।"

इस प्रकार से सोने और चाँदी का मुद्रा के प्रमुख रूप में विकास "लाठी जिसकी भैंस" वाले सिद्धांत का एक अच्छा उदाहरण है क्योंकि इन धातुओं में कुछ ऐसी विशेषतायें मौजूद हैं जिन्होंने इनको अब तक जीवित रखा है।

मुद्रा की परिभाषा

अब हम मुद्रा कहते किसे हैं, अथवा दूसरे शब्दों में मुद्रा की परिभाषा पर विचार करेंगे। भिन्न २ विद्वानों ने मुद्रा की भिन्न भिन्न परिभाषायें दी हैं। मुद्रा की परिभाषाओं से दो विचारधारायें प्रकट होती हैं। एक तो मुद्रा की परिभाषा में मुद्रा को संकीर्ण रूप देने के पक्ष में है और दूसरी विचार धारा वाले इसको विस्तृत रूप देते हैं। प्रथम के अनुसार मुद्रा में केवल धातु के सिक्के तथा सरकार द्वारा घोषित विधि ग्राह्य मुद्रा (Legal tender money) ही शामिल किये जाते हैं, जब कि दूसरी विचार धारा वाले मुद्रा में उपर्युक्त चीजों के अतिरिक्त चैक, बिल तथा हुंडी आदि को भी सम्मिलित करते हैं। अर्थात ये लोग मुद्रा को एक व्यापक दृष्टिकोण देते हैं। आधुनिक विद्वान मध्यम मार्ग अपनाने के पक्ष में हैं। उनके अनुसार कोई भी वस्तु जो विनिमय माध्यम का कार्य बिना किसी रुकावट के करती है तथा जो ऋणों के भुगतान में बिना किसी आपत्ति के साधारणतया स्वीकार की जाती है इसको मुद्रा की संज्ञा दी जानी चाहिये। विभिन्न परिभाषायें इस प्रकार हैं :—

१—'कोई भी वस्तु जो माल के भुगतान में अथवा अन्य प्रकार के व्यापारिक ऋण शोधन में सर्वत्र स्वीकार की जाती है।'

—राबर्टसन

२—'मुद्रा शब्द का प्रयोग उन्हीं सर्व मान्य वस्तुओं तक सीमित है जिनका विनिमय माध्यम के रूप में स्वतन्त्रतापूर्वक हस्तान्तरण होता हो और जो ऋणों के अन्तिम भुगतान के लिये सबके द्वारा स्वीकार की जाती हो।'

—एली

३—'मुद्रा वह वस्तु है जिसमें सर्व मान्यता हो'

—सैलिगमैन

४—'ऐसी सभी वस्तुयें जो बिना किसी सन्देह के अथवा विशेष जांच के; सेवाओं, वस्तुओं के क्रय विक्रय तथा ऋणों के भुगतान करने में एक साधन की तरह साधारणतया काम आती हैं मुद्रा हैं।' —मारशल

५—'कोई भी वस्तु जो विनिमय के एक साधन के रूप में साधारणतया सर्वमान्य हो और साथ ही मूल्य-मापन तथा मूल्य-संचय का भी कार्य करती हो, वही मुद्रा है।' —काउथर

६—मुद्रा क्रय-शक्ति है—कोई भी वस्तु जिससे अन्य वस्तुयें खरीदी जा सकें। किन्तु हमारी मुद्रा की विचार धारा में से चैक और हुंडी आदि को अलग रखना अत्यन्त आवश्यक है'—कोल

७—'मुद्रा वह वस्तु है जिसकी सुपुर्दगी से ऋण प्रसंविदे और मूल्य-प्रसंविदे पूरे किये जाते हैं और जिसके रूप में सामान्य क्रय-शक्ति रक्खी जाती है।' —कीन्स

८—'किन्हीं दो वस्तुओं के बीच वह तीसरी वस्तु जो पारस्परिक स्वीकृति द्वारा विनिमय तथा मूल्य-मापन के लिये एक साधन मान ली गई हो, वही मुद्रा है।' —स्टीफेन्सन

९—'सब अन्य वस्तुओं के बीच वो वस्तु जो सर्व स्वीकृति से मूल्य-मापन तथा विनिमय माध्यम के लिये चुन ली गई हो, वही मुद्रा है।' —थामस

१०—'मुद्रा में उन वस्तुओं को शामिल किया जाता है जिनमें सर्व मान्यता हो और जिनको समाज में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से विनिमय माध्यम के रूप में ले और दे। किन्तु कोई भी वस्तु सर्व स्थानों में सर्व मान्य नहीं हो सकती और इस अर्थ में मुद्रा सदैव राष्ट्रीय (Local) रहती है। कुछ स्थानों में यह मुद्रा है और कुछ में नहीं।' —वाफ

११—'मुद्रा पुस्तपालन (Book keeping) के लिये एक सुविधा और सहायता है. यह एक वह माध्यम है जिसके द्वारा सम्पत्ति का विनिमय किया जाता है।'

१२—'मुद्रा वह है, जो मुद्रा का कार्य करती है।'

—हार्टले-विदर्स

1. "Any thing which is widely accepted in payment for goods or in discharge of other kinds of business obligations." —*Robertson.*

2. "The use of the term money is restricted to those instruments of general acceptability which pass freely from hand to hand as a medium of exchange and are generally received in discharge of final debts as money."
—*Ely.*

3. "Money is one thing that possesses general acceptability." —*Seligman.*

4. "All those things which are generally current without doubt or special enquiry as a means of purchasing commodities and services and of defraying expenses." —*Marshall.*

5. "Anything that is generally acceptable as a means of exchange and at the same time acts as a measure and as a store of value."
—*Crowther.*

6. "Money is purchasing power. Some thing which buys things, but it is most expedient to exclude Bills of Exchange as well as Cheques from our conception of money."
—*G. D. H. Cole.*

7. "Money is that by the delivery of which debt contracts and price contracts are dis-charged and in the shape of which general purchasing power is held." —*Lord Keynes.*

8. "A third commodity, chosen by common consent to be a means of Exchange and a measure of value between every other two commoditiees, is money. —*Stephenson.*

9. "A commodity chosen by common consent to be a measure of value and a means of exchange between all other commodities, is money." —*Thomas.*

10. "Money consists of those things which within a society, are of general acceptability, passing from hand to hand as a medium of exchange No commodity is, however, acceptable everywhere, and in this sense: money is always local; it is money in some places and in other places it is not acceptable.
—*Waugh.*

11. "Money is a convenience and an aid to book-keeping, a token by which wealth is exchanged." - Hartley Withers.

12. "Money is what money does."

Hartley Withers.

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि मुद्रा की ठीक से परिभाषा देना कितना कठिन है, और मुद्रा की सर्वोत्तम परिभाषा वही होगी जिसमें मुद्रा द्वारा किये जाने वाले सभी कार्यों का समावेश हो। इसलिए हम कह सकते हैं कि मुद्रा वह सर्वमान्य वस्तु है जो विनिमय के साधन का, मूल्य मापन का तथा मूल्य संचय का कार्य करती है। साधारणतया सर्वमान्य वही वस्तु होती है जिसका मूल्य एक प्रकार सब देशों में हो। और वह है सोना और चाँदी। किन्तु आज कल हम देखते हैं कि पत्र मुद्रा भी क्रय-विक्रय का कार्य करती है, बावजूद इसके कि उसमें वास्तविक मूल्य (Intrinsic Value) कुछ भी नहीं है। यह वास्तविक मूल्य की कमी-पूर्ति सरकार पत्र मुद्रा को विधि ग्राह्य (Legal Tender) बना कर करती है अतः आधुनिक युग में किसी वस्तु के सर्वमान्य होने के लिए यह आवश्यक नहीं कि उसमें कुछ वास्तविक मूल्य हो ही।

मुद्रा के कार्य

यहाँ हमें मुद्रा के क्या २ कार्य हैं यह समझ लेना आवश्यक होगा क्योंकि बिना इसके मुद्रा का स्वरूप और महत्व पूर्णतः समझ लेना दुष्कर है। मुद्रा द्वारा निम्नलिखित कार्य सम्पन्न होते हैं:—
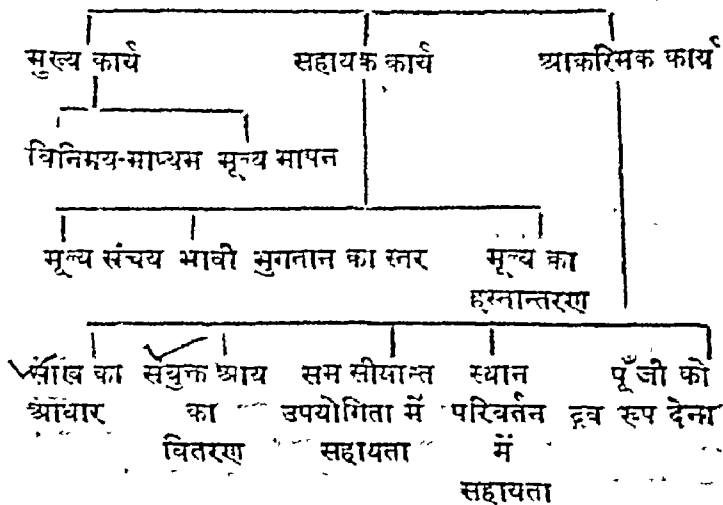
(a) मुख्य कार्य (Primary Functions)

(१) विनिमय-माध्यम (Medium of Exchange) वस्तु विनिमय में हम एक वस्तु को सीधा दूसरी वस्तु से बदलते थे किन्तु अब प्रत्येक वस्तु को, पहिले मुद्रा में बदलना पड़ता है और फिर उस मुद्रा की सहायता से हम अन्य वस्तुयें अपनी इच्छानुसार खरीदते हैं। उदाहरणार्थ. किसान जब गेहूँ बेचने के लिये शहर में आता है तो वह गेहूँ को सीधा अन्य आवश्यक वस्तुओं से नहीं बदलता बल्कि पहिले गेहूँ को बेचकर रुपया प्राप्त करता है और फिर उस रुपये से जो चाहे खरीद सकता है। अर्थात् वस्तुओं के क्रय विक्रय में मुद्रा माध्यम का कार्य करती है। इसकी सहायता से विनिमय में सरलता

जाती है। इसमें सर्व मान्यता तथा क्रय शक्ति होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपनी वस्तु अथवा सेवायें इससे बदलने को तत्पर रहता है। यह मुद्रा का सबसे प्रमुख कार्य है।

(२) मूल्य-मापन (Measure of Value) जिस प्रकार कपड़ा नापने के लिये गज को, तथा तौल या वजन नापने के लिये मन, सेर, छटांक की आवश्यकता पड़ती है ठीक इसी प्रकार वस्तुओं के मूल्य को नापने के लिये भी किसी साधन का होना आवश्यक है। वह साधन है मुद्रा। आजकल हम देखते हैं कि प्रत्येक वस्तु का मूल्य मुद्रा में आंका जाता है वस्तु ही नहीं वल्कि सेवाओं का मूल्यांकन भी मुद्रा द्वारा ही किया जाता है। उदाहरणार्थ, जब हम बाजार में जाते हैं तो देखते हैं कि गेहूँ की कीमत क्या—वीस रुपये मन, घी की कीमत क्या—पांच रुपये सेर, कोयले की कीमत क्या—६ रुपये मन, पेल्यूड्रिन की कीमत क्या—एक आना १ टिकिया, बच्चों के झुनझुने की कीमत क्या—दो आने, हजामत बनाने के कितने पैसे—आठ आने आदि। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वस्तुओं का प्रश्न हो अथवा सेवाओं का, मूल्यांकन का कार्य मुद्रा ही करती है। मुद्रा के इस कार्य द्वारा वस्तुओं के परस्पर मूल्यों की तुलना करना तथा उनका मूल्य निश्चित करना सुगम हो जाता है और वस्तु विनिमय की एक बड़ी कठिनाई दूर हो जाती है।

(b) सहायक कार्य (Secondary functions)

(१) मूल्य संचय (Store of Value)—प्रत्येक व्यक्ति अपने नित्य प्रति के खर्चों से निवृत होने के बाद यह चाहता है कि आपत्तिकाल के लिये वह कुछ बचाये या संग्रह करे। अधिकांश वस्तुओं के शीघ्र नाशकारी (Perisahble) होने

से मूल्य संचय के लिये वह वस्तुओं का संग्रह नहीं कर सकता। मूल्य संचय या विनिमय शक्ति के संग्रह करने के लिये वह मुद्रा को सबसे उपयुक्त पाता है क्योंकि प्रथम तो, उसकी सब जगह माँग रहती है, दूसरे उसके मूल्य में साधारणतया उतार चढ़ाव नहीं होता, तीसरे, वह शीघ्र नाशकारी नहीं है, अन्त में, उसका संचय सुविधाजनक, लाभदायक तथा सरल है इसके अतिरिक्त यदि हम मुद्रा का संचय अपने पास न कर बैंक में जमा करावें तो उत्पादन में वृद्धि होने से राष्ट्र का भी हित होता है।

(२) भावी भुगतान का स्तर (Standard for deferred payments)—आज के युग में साख (credit) का तथा ऋण का महत्व अत्यधिक हो गया है व्यापारिक क्षेत्र में भी अधिकांश क्रय विक्रय साख के आधार पर ही होता है। दूसरे शब्दों में आज जो हम ऋण लेते हैं अथवा माल खरीदते हैं जिसका भुगतान अभी न कर भविष्य के लिये छोड़ देते हैं। ऐसी दशा में यह न्याय संगत होगा कि ऋण दाता को ऋणी उतना ही मूल्य दे जितना उसने लिया है, दोनों ही पक्ष को हानि नहीं होनी चाहिये यह मुद्रा द्वारा ही सम्भव है, वस्तुओं द्वारा नहीं। क्योंकि मुद्रा के मूल्य में स्थिरता रहती है जबकि वस्तुओं के मूल्य में नहीं। वस्तुओं का मूल्य प्रायः घटता बढ़ता रहता है, आज जो गेहूँ का भाव है वह कल नहीं किन्तु आज जिस रुपये की कीमत सोलह आने है वह कल भी सोलह आने ही रहेगी। अतः मुद्रा भावी भुगतान का सर्वोत्तम साधन है।

(३) मूल्य का हस्तान्तरण (Transfer of Value)—ऊपर कहा जा चुका है कि मुद्रा मूल्य संचय का सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसी कारण इसके द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तथा एक काल से दूसरे काल में मूल्य का हस्तान्तरण होना सरल है।

(c) आकस्मिक कार्य (Contingent Functions)

(१) साख का आधार (Basis of Credit)—मुद्रा साख के लिये एक आधार का कार्य करती है। मुद्रा के रूप में पूँजी के पर्याप्त संचय के आधार पर ही साख का विशाल कार्य ढाँचा (Payment of Credit) खड़ा किया जाता है बैंक जो पत्र मुद्रा अथवा चैक चलन लाते हैं उनकी साख बनाये रखने के लिए अपने कोष में निर्धारित मात्रा में रोकडीनिधि (Cash Reserve) अवश्य रखते हैं। यह रोकडी निधि प्रायः धात्विक निधि के रूप में रक्खी जाती है। इस निधि के कारण ही वे जनता का विश्वास प्राप्त करने में समर्थ होते हैं और उनके चैक तथा पत्र मुद्रा का विनिमय माध्यम के रूप में सुचारु रूप से प्रचलन होता रहता है।

(२) संयुक्त आय के वितरण का कार्य करती है (Distribution of joint Products)—आजकल के विशाल उद्योग धन्धों से यह स्पष्ट है कि उत्पादन ने एक वृहद् रूप ग्रहण कर लिया है। यह उत्पादन भूमि श्रम, पूँजी तथा संगठन आदि के सहयोग तथा सामंजस्य का परिणाम है। मुद्रा के मूल्य मापक होने के कारण प्रत्येक वस्तु की कीमत मुद्रा में निश्चित कर ली जाती है। और सम्मिलित आय जो कि मुद्रा के रूप में ही होती है, उसको इस प्रकार बाँट दी जाती है—भूमि का लगान, श्रम की मजदूरी, पूँजी पर ब्याज तथा संगठनकर्त्ता को लाभ। यह स्पष्ट है कि यह वितरण मुद्रा के अभाव में असंभव था।

(३) सम सीमान्त उपयोगिता (Equimarginal utility), प्राप्त करने में सहायता—चूँकि प्रत्येक वस्तु का मूल्य मुद्रा में निश्चित किया जाता है, इससे

विभिन्न वस्तुओं की उपयोगिता की तुलना हम उस पर खर्च होनेवाली मुद्रा द्वारा आसानीसे कर सकते हैं। हम यह शीघ्रजान लेते हैं कि किस वस्तु के प्राप्त करने से कम व्यय पर अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है और किससे नहीं। इस प्रकार मुद्रा हमको वस्तुओं की समसीमान्त उपयोगिता बता कर अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने में समर्थ होती है।

(४) पूँजी के स्थान परिवर्त्तन में सहायता—(Mobility of Capital) मुद्रा की सहायता से पूँजी का एक स्थान से दूसरे स्थान तथा एक व्यापार से दूसरे व्यापार में हस्तान्तरण सम्भव है। इस प्रकार जिस उद्योग अथवा व्यापार में पूँजी की अधिक आवश्यकता होती है पूँजी सुगमता से हस्तान्तर की जा सकती है जिससे देश के व्यापार व उत्पादन में वृद्धि होना अवश्यंभावी है।

(५) पूँजी को द्रव रूप देने में सहायक होती है (Liquid form) मुद्रा इसकी सर्व मान्यता के कारण पूँजी को अत्यधिक अस्थिर या द्रव रूप देनेमें समर्थ होती है। इसकेद्वारा सर्व प्रकार की सम्पत्ति अथवा पूँजी एक सर्व मान्य मूल्य का रूप धारण कर लेती है। दूसरे शब्दों में भिन्न भिन्न प्रकार की वस्तुओं को जो भिन्न भिन्न रूप में होती हैं एक सामान्य रूप मिल जाता है, अर्थात सबकी कीमत एक ही वस्तु याने मुद्रा में आंकी जा सकती है। आधुनिक विद्वान विशेषकर लार्ड कीन्स मुद्रा के इस कार्य पर बहुत जोर देते हैं। कीन्स का व्याज का सिद्धान्त (Keynes' Theory of Interest) भी मुद्रा की इसी विशेषता पर आधारित है।

मुद्रा के मुख्य तथा सहायक कार्य तो प्रायः सभी अवस्थाओं में सम्पन्न होते हैं किन्तु आकस्मिक कार्य केवल आधुनिक अर्थ

व्यवस्था में ही सम्भव हैं। प्राचीन अर्थ व्यवस्था में नहीं होते थे और न आगामी अर्थ व्यवस्था में होंगे. ऐसा निश्चित रूप से कहा जा सकता है। मुद्रा के मुख्य तथा सहायक कार्यों को याद रखने के लिए नीचे की दो पंक्तियाँ सहायक सिद्ध होंगी—

Money is a matter of functions four,
A medium, a measure, a standard, a store.

But if this does not complete the function
we may add the Transferability more.

हिन्दी में—

मुद्रा करती है चार काय,
माध्यम, माप, स्तर और संचय।

अभ्यास-प्रश्न

१—मुद्रा की परिभाषा लिखिये।

२—संसार में मुद्रा का आगमन क्यों और कैसे हुआ? विस्तार पूर्वक लिखिये।

३—मुद्रा की सर्वोत्तम परिभाषा यह है—मुद्रा वह है जो मुद्रा का कार्य करे। सिद्ध कीजिये क्यों?

४—आज के युग में मुद्रा क्या क्या कार्य संपन्न करती है? इनको सक्षेप में समझाइये।

५—'मुद्रा के अभाव में आधुनिक सभ्यता असम्भव थी' सिद्ध कीजिये।

६—मुद्रा के मुख्य कार्य क्या हैं? इन कार्यों का समावेष करते हुये मुद्रा की कोई उपयुक्त परिभाषा लिखिये।

अध्याय ३

मुद्रा वस्तु की विशेषताएं, लाभ तथा हानि

विशेषताएं

मुद्रावस्तु की विशेषतायें (Characteristics of Good Money)—अब तक अनेक वस्तुयें मुद्रा के रूप में उपयोग में लाई गई हैं, किन्तु उन सबका इसलिये परित्याग करना पड़ा कि वे मुद्रा के सारे कार्य कर सकने में असमर्थ सिद्ध हुईं। वे केवल मुद्रा के प्रारम्भिक कार्य करने में ही समर्थ थी। इसलिये यह कहना उपयुक्त होगा कि जो वस्तुयें पूर्णतः मुद्रा के कार्य सम्पन्न करती हैं, वे ही मुद्रा वस्तु के आवश्यक लक्षणों की पूर्ति करती हैं। अर्थात् उनमें ही मुद्रा वस्तु का सब विशेषतायें विद्यमान रहती हैं। सोने और चाँदी में ये सब विशेषतायें हैं और उनमें प्रामाणिक मुद्रा को कार्य क्षमता है: इस बात को प्राय. संसार के सभी देशों ने मान्यता दी है। प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्री जेवन्स के अनुसार मुद्रा में निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहियें:—

मूल्य (Value) सहज में ले जाने योग्य (Portability) विभाजकता (Diuisinility), अक्षय शीलता (Indestrncti bility एक समता (Homogeneity), मूल्य की स्थिरता (Stability of Value), सुज्ञेयता (Cognisability)

इनके अतिरिक्त तीन बातों का और होना आवश्यक है और वे इस प्रकार हैं—सर्वमान्यता (General Acceptability)

छाप ग्रहण कर लेने की क्षमता (Impressionability). आघात-वर्धन शीलता (Malleability). इनको सुगमतापूर्वक याद करने के लिये हमको (Aim Cup and Dish) याद रखना हितकर होगा, क्योंकि इनमें से प्रत्येक अक्षर से प्रत्येक विशेषता का प्रारम्भ होता है, जेसा नीचे स्पष्ट है:—

(१) सर्वमान्यता (Acceptability)—मुद्रा वस्तु ऐसी होनी चाहिये जिसको लेने में किसी को हिचकिचाहट न हो, अर्थात् जो पारस्परिक लेन देन तथा ऋणों के भुगतान में विनिमय माध्यम के रूप में सबके द्वारा स्वीकार कर ली जाय। मुद्रा वस्तु की यह अत्यन्त आवश्यक विशेषता है। इसके अभाव में बड़े दुष्परिणाम होते हैं। सरकार मुद्रा की सर्वमान्यता बनाये रखने को बाध्य है और इसके लिये उसको मुख्यतया इन बातों को अपनाना पड़ता है। पहिले तो मुद्रा सदेव बहुमूल्य धातुओं, जैसे सोना और चाँदी की बनाई जाती हैं जिससे मुद्रा के बाह्य मूल्य (Face value) और वास्तविक मूल्य (Intrinsic value) में सामंजस्य स्थापित हो जाय और प्रत्येक व्यक्ति इसको लेने को तत्पर रहे। दूसरे, मुद्रा को विधि ग्राह्य (Legal tender) बना दिया जाता है, जिससे मुद्रा को स्वीकार करनेके लिये प्रत्येक व्यक्ति कानून द्वारा बाध्य हो जाता है। स्वीकार न करने पर उसको दण्ड या कारावास अथवा दोनों भोगने पड़ते हैं। सरकार के हाथ में मुद्रा को सर्वमान्य (Generally acceptable) बनाने के लिये यह बहुत बड़ा शस्त्र है। इससे मुद्रा में वास्तविक मूल्य का होना भी आवश्यक नहीं रहता और इसीलिये पत्रमुद्रा (Paper Money) तक का बिना किसी अड़चन के चलना होता है।

(२) छाप ग्रहण करने की क्षमता (Impressionability)—मुद्रावस्तु इस प्रकार की हो, जिस पर किसी प्रकार की छाप

Impression) अंकित की जा सके। हम देखते हैं कि मुद्रा सबके द्वारा आसानी से पहिचानी ली जाने के लिये सरकार चाहे धातु मुद्रा हो या पत्र मुद्रा सब पर कोई चिन्ह, जैसे अशोक स्तम्भ, सिंह, पेड़ तथा सन अथवा संख्या व मुद्रा का नाम अवश्य अंकित करती है। इन चीजों का मुद्रा पर अंकित किया जाना आवश्यक है जिससे उसमें सुज्ञेयता आ जाय।

(३) आघातवर्धन शीलता (Malleability)—मुद्रा वस्तु ऐसी हो जिसको गलाया जा सके और पीटकर चद्दरों (Sheets) में बदला जा सके क्योंकि इन्हीं में से बराबर नाप के सिक्के मशीन द्वारा काटे जाते है और उन पर सरकारी छाप अंकित कर मुद्रा में परिवर्तित कर दिया जाता है। यह वस्तु न तो अधिक कठोर और न अधिक कोमल होनी चाहिए। यह विशेषता केवल धातु मुद्रा के लिये आवश्यक है पत्र मुद्रा के लिए नहीं।

(४) सुज्ञेयता (Cogni-ability)—मुद्रा ऐसी वस्तु की बनी हुई होनी चाहिए जिसको शिक्षित या अशिक्षित, मूर्ख या पंडित छोटा या बड़ा सभी आसानी से पहिचान सकें और जिसकी विशेष परीक्षा करने, तौलने अथवा जाँचने की आवश्यकता न पड़े। यह गुण सोने और चाँदी में पाया जाता है। इनका एक विशेष रंग व ध्वनि होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति पहिचान लेता है। इस सुज्ञेयता को लाने के लिए ही मुद्रा में एक विशेष छाप अंकित कर दी जाती है।

(५) उपयोगिता (Utility)—मुद्रा वस्तु में उपयोगिता का होना भी अनिवार्य है और जहाँ उपयोगिता होगी वहाँ मूल्य तो होगा ही। मूल्य उसी वस्तु का होगा जिसकी माँग अधिक हो और पूर्ति कम। सोना और चाँदी की मुद्रा के अतिरिक्त और

भी उपयोगिता है और वह है आभूषणों आदि के लिये काम में लाया जाना। इन दोनों में वास्तविक मूल्य भी अधिकांश में मिलता है। वास्तविक मूल्य होने से कोई भी व्यक्ति ऐसी मुद्रा को लेने से इनकार नहीं करेगा।

(६) सहज में ले जाने योग्य (Partability)—मुद्रा वस्तु ऐसी होनी चाहिए, जिसको एक स्थान से दूसरे स्थान को लाना ले जाना सुगम हो। यह तभी सम्भव हो सकता है जब छोटे आकार में बड़ा मूल्य (Great value in small bulk) मौजूद हो। इस दृष्टिकोण से भी बहुमूल्य धातुयें, जैसे सोना और चाँदी ही सर्वोत्तम सिद्ध होते हैं। हाँ आजकल जबकि पत्र-मुद्राका अधिक चलन है इन धातुओं को उपयोगिता भी जाती रही। इसे लाने ले जाने की सुविधा के कारण ही हम लोग आज कल सिक्के की अपेक्षा पत्र मुद्रा या नोट लेना अधिक पसन्द करते हैं।

(७) विभाजकता (Divisibility)—मुद्रा वस्तु ऐसी होनी चाहिए कि उसके विभाजन करने से उसका मूल्य कम अथवा नष्ट न हो, अर्थात् पहिले जितना ही बना रहे। हमारी आवश्यकतायें विभिन्न वस्तुओं के लिये विभिन्न इकाइयों में होने के कारण हमको एक रुपये से लेकर एक पैसे तक की मुद्रा की आवश्यकता पड़ती है। यह गुण धातुओं में ही हो सकता है, अन्य किसी पदार्थ में नहीं।

(८) अक्षय शीलता (Indestructibility)—चूँकि मुद्रा मूल्य संचय का भी कार्य करती है, इसका भविष्य के लिये संग्रह किया जाना स्वाभाविक है। इसके लिये यह आवश्यक है कि मुद्रा वस्तु शीघ्र नष्ट होने वाली न हो और अग्नि, जल तथा वायु आदि के विनाशकारी प्रभावों से परे हो। उदाहरण के लिए, यदि गेहूँ को कुछ समय के लिए संग्रह किया जाय तो

वह सड़ने और घिसने लगेगा तथा इसका मूल्य भी कम हो जायगा। किन्तु धातुऐं जैसे सोना, चांदी, तांबा आदि सैकड़ों वर्षों तक खराब नहीं होती।

(९) मूल्य की स्थिरता (Stability of value)—मुद्रा वस्तु ऐसी होनी चाहिए जिसके मूल्य में उतार चढ़ाव कम से कम होते हों। उतार-चढ़ाव होने से कोई व्यक्ति न तो मुद्रा का संचय ही कर सकता है और न इसको भावी-भुगतान के स्तर के रूप में काम में ला सकता है क्योंकि इससे कभी ऋणदाता को हानि होगी और कभी ऋणी को। इसके अतिरिक्त यह कितना घातक व अन्याय संगत होगा कि एक व्यक्ति दिन भर के कड़े परिश्रम के बाद एक रुपया कमावे और दूसरे दिन बिना उसके किसी अपराध के रुपये की कीमत आधी रह जाय। इसलिये मुद्रा के मूल्य में स्थिरता बनाये रखना सरकार का परम पुनीत कर्त्तव्य है और उसका इसके लिये बाध्य होना स्वाभाविक है।

(१०) एक रूपता (Homogeniety)—मुद्रा वस्तु के छोटे छोटे भागों में बांटने पर सब टुकड़े एक ही प्रकार के तथा एक ही किस्म के हों, यह आवश्यक है। मुद्रा की समान इकाई का समान मूल्य होना चाहिये, जैसे उदाहरण के लिये एक अठन्नी में जितना वास्तविक मूल्य हो उतना ही दूसरी में। सोने और चाँदी में बनावट समान होने के कारण तौल और मूल्य एक ही अनुपात में होता है। इसीलिये ये मुद्रा वस्तु के लिये सबसे उपयुक्त हैं। इनके लेन देन के समय जाँच पड़ताल में व्यर्थ समय नहीं गँवना पड़ता।

मुद्रा का स्वरूप (Nature of Money)

प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी इच्छायें रखता है। इन

इच्छाओं की पूर्ति वस्तुओं के उपभोग द्वारा की जाती है। मुद्रा में वस्तुओं की क्रय शक्ति होने के कारण यह हमको वस्तुओं के उपभोग में सहायता करती है। मुद्रा का हम इसलिये संचय नहीं करते कि वह मुद्रा है, किन्तु इसलिये कि उसमें क्रय शक्ति है और वह वस्तुओं के क्रय विक्रय में एक साधन का कार्य करती है। मुद्रा को साधन से बढ़कर मानना असंगत होगा। इसलिये हम यह कह सकते हैं कि मुद्रा हमारे साध्य के लिये एक साधन है न कि स्वयँ साध्य (Money is a means to an end and not an end in itself). क्रय शक्ति का मुद्रा में होना अथवा मुद्रा के अस्तित्व से किसी भी वस्तु पर अधिकार की प्राप्ति का होना ही मुद्रा का वास्तविक स्वरूप है। इसके अतिरिक्त मुद्रा मूल्य मापन का साधन होने के कारण विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों की तुलना करने में सहायक होती है। इसलिये संक्षेप में कहा जा सकता है कि क्रय-शक्ति तथा मूल्य मापकता ही मुद्रा के वास्तविक स्वरूप के द्योतक हैं।

मुद्रा का महत्त्व (Importance of Money)

मुद्रा अत्यन्त महत्त्वशाली पदार्थ है। आज के युग की यह एक सामाजिक आवश्यकता है। इसके बिना हमारा काम चलना दुष्कर है। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जो इसके प्रभाव से परे हो। मुद्रा ही के बल पर वस्तुयें खरीदी और बेची जाती हैं, सेवायें ली और दी जाती हैं, ऋण लिये और दिये जाते हैं। मुद्रा के बिना श्रम-विभाजन तथा बड़े परिमाण में वस्तुओं का उत्पादन असम्भव था। संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियाँ स्थापित नहीं की जा सकती थी, विदेशी विनिमय तथा वाणिज्य का विकास नहीं हो सकता था। मुद्रा उत्पादन बढ़ाती है, व्यापार और उद्योग को विकसित करती है, खर्चों

(Consumption) को संयत और वितरण को सुगम बनाती है।

आज की सभ्यता के स्तम्भ— ये विशाल बैंक, बीमा कम्पनियाँ, स्टाक व शेयर बाजार, बड़े बड़े कल कारखाने, वायुयान व जलयान उद्योग, बल्कि मैं तो यह कह सकता हूँ ये स्कूल व कालेज, चलचित्र गृह (Cinemas) आदि क्या मुद्रा की अनुपस्थिति में सम्भव थे ? उत्तर निश्चित है, कभी नहीं।

विचारिये इस अवस्था को जब मुद्रा नहीं होती और कालेज का प्रत्येक विद्यार्थी अपनी फीस चुकाने के लिये भिन्न भिन्न वस्तुयें लाता। एक विद्यार्थी गाय, दूसरा घोड़ा, तीसरा गेहूँ, चौथा गुड़ और पाँचवा घास इत्यादि। ऐसी अवस्था में कालेज का रोकड़िया क्या करता ? शायद कालेज में इन सब वस्तुओं को रखने के लिये स्थान भी नहीं मिलता। मुद्रा ने वस्तु-विनिमय की कठिनाइयों को दूर कर इन सब कठिनाइयों का अन्त कर दिया।

मुद्रा वास्तव में मानव की आर्थिक उन्नति का दर्पण है और सभ्यता के इतिहास का सार है। मुद्रा का इतिहास सभ्यता का इतिहास है और सभ्यता का इतिहास मुद्रा का इतिहास है। मार्शल के शब्दों में "यह वह धुरी है जिसके चारों ओर आर्थिक विज्ञान चक्कर काटता है" मानवीय आविष्कारों में यह सर्वोपरि, है जैसा क्राउथर ने कहा है— 'ज्ञान की प्रत्येक शाखा स्वयं की एक विशेष खोज है। यन्त्र ज्ञान में यह पहिया है, विज्ञान में अग्नि तथा राजनीति में मत। इसी प्रकार अर्थशास्त्र में तथा मानव की सामाजिक [illegible]थति के सारे वाणिज्य क्षेत्र में, मुद्रा वह आवश्यक आविष्कार [illegible] पर सब कुछ आधारित है। [illegible] इन

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि यह मुद्रा ही का प्रताप है जिसके सहारे हम समाज सुधार, आर्थिक स्वतंत्रता, राजनैतिक स्वतंत्रता, औद्योगिक विकास तथा व्यापारिक उन्नति प्राप्त करने में सफल हुये हैं। अर्थशास्त्र के ही नहीं वल्कि जीवन के अन्य पहलुओं की दृष्टि से भी मुद्रा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है।

(1) Money is the pivot around which economic science clusters —*Marshall*.

(2) Every branch of knowledge has its fundamental discovery. In mechanics it is the wheel, in Science fire, in politics the vote. Similarly, in Economics, in the whole commercial side of man's existence, money is the essential invention, on which all the rest is based. —*Corwther*.

मुद्रा के लाभ (Advantages of Money)

आज के युग में मुद्रा से हम इतने घुलमिल गये हैं कि उस हम को क्या क्या लाभ हैं, इस का हमें तनिक भी ध्यान नहीं [illegible]। 'जेवन्स' के शब्दों में—'अति प्राचीन काल से मुद्रा के [illegible] से आदि हो जाने के कारण मुद्रा से होने वाले अपरिमित [illegible] का हमें ध्यान भी नहीं रहता।' इसकी अनुपस्थिति में होने [illegible] कठिनाइयों का हम तव अनुभव कर सकते हैं जबकि हम

आज से बिलकुल भिन्न सामाजिक दशाओं में चले जायें मुद्रा से हमको अनेक लाभ हैं। उन की व्याख्या इस प्रकार की गई है :—

(१) मुद्रा का सबसे बड़ा लाभ यह है कि वह उपभोक्ता को उसकी क्रयशक्ति को सामान्य रूप देने में सहायता करती है तथा समाज पर उस के अधिकारों को ऐसे रूप में रखने देती है जो उसके लिये सबसे सुविधाजनक हों।

(२) मुद्रा पद्धति का होना समाज को यह ज्ञात करने में सहायक होता है कि कौन क्या और कितना चाहता है, जिससे उत्पादक को यह मालूम हो सके कि क्या वस्तु कितनी मात्रा में पैदा करनी है। इसके द्वारा हम हमारी सीमित उत्पादन शक्ति का भी पूरा पूरा लाभ उठा पाते हैं।

(३) यह समाज के प्रत्येक व्यक्ति को यह विश्वास दिलाने में सहायक होती है कि उसके मनोरंजन के साधन जिन तक उस की पहुँच है उस की अधिकतम इच्छा पूर्ति करते हैं।

(४) विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन जिन पर हमारा आज का आर्थिक ढाँचा टिका हुआ है, मुद्रा के अभाव में सम्भव न थे।

(५) मुद्रा केवल ऋण देने और ऋण लेने में ही सहायक नहीं होती बल्कि इसके द्वारा हम सब प्रकार के आगामी भुगतान पहिले से करने में समर्थ होते है।

(६) पूँजी में चलन शक्ति (Mobility) लाती है और इस प्रकार पूँजी के उन व्यक्तियों के हाथ में इकट्ठा होने में सहायक होती है जो उस का सर्वोत्तम उपयोग कर सकते हैं। यह पूँजी के उन स्थानों से जहां यह अनुपयुक्त अथवा कम उपयुक्त है

उन स्थानों पर जहाँ यह लाभपूर्ण दशा में लगाई जा सकती है, जाने में सहायक होती है।

(७) रूढ़ियों—रिवाज के स्थान पर प्रसंविदा की स्वतंत्रता और प्रतिस्पर्धा स्थापित कर मुद्रा ने जनता को सामाजिक तथा राजनैतिक रूप से स्वतंत्र होने में सहायता प्रदान की है।

(८) मुद्रा ने गाँवों व शहरों की दूर दूर रहने की तथा अलगाव की भावना को तोड़ कर हमारी राजनैतिक तथा राष्ट्रीय भावना को दृढ़ बना दिया है।

(९) मुद्रा समाज की सेवा ठीक इसी प्रकार करती है जिस प्रकार सड़कें व अन्य आवागमन के साधन। प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्री एडेम स्मिथ ने इस बात को इस प्रकार व्यक्त किया है—'सोने और चाँदी की मुद्रा की, जो किसी देश में चलन में होती है तुलना ठीक ठीक रूप से एक विशाल सड़क से की जा सकती है जो देश के समस्त घास और अनाज को बाजार में ले जाती है किंतु स्वयं इनका अंश भी पैदा नहीं कर सकती।

मुद्रा से हानियाँ (Disadvantages of Money)

जिस प्रकार मुद्रा को समाज के लिये एक आवश्यक देन माना गया है उसी प्रकार कभी कभी इसको इसके घातक परिणामों के कारण एक अभिशाप भी माना जाता है।

हम देखते हैं कि प्राय: मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन होते रहते हैं। कभी इसकी क्रय शक्ति अधिक हो जाती है और कभी कम

इस प्रकार के उतार चढ़ाव से समाज पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिये एक व्यक्ति अपनी सारी शक्ति लगाकर अथवा खून को पसीना बनाकर पैसा कमाता है और इसमें से कुछ भविष्यकाल के लिये बचाता है। अब यदि दो वर्ष बाद इस संचित मुद्रा की क्रय शक्ति आधी रह जाती है, तो वह कहीं का न रहेगा। उसकी संचय करने की सारी प्रवृत्ति लुप्त हो जायगी। प्रकट है, इस प्रकार के विषम उतार चढ़ाव से देश का व्यवसाय तथा उद्योग धन्धे नष्ट हो जाते हैं, उत्पादन रुक जाता है, बेरोजगारी फैल जाती है।

दूसरे, इस क्रय शक्ति के न्यूनाधिक होने का प्रभाव समाज पर उस समय देखने में आते हैं जब कोई व्यक्ति हमारे सामने ऋणदाता अथवा ऋणी के रूप में आता है। मुद्रा के मूल्य में कमी हो जाने पर ऋणदाता को और वृद्धि हो जाने पर ऋणी को हानि होती है।

तीसरे, जैसा हम कह आये हैं कि मुद्रा लेने व देने में सहायक होती है। इससे अनावश्यक ऋण प्रसंविदे बढ़ जाते हैं। ऐसी दशा में मनुष्य अकारण ऋण लेने को लालयित होता है उसमें अकर्मण्यता और सुस्ती आ जाती है। वह सोचता है कि जब कभी आवश्यकता होगी ऋण मिल जायगा। यह भी मुद्रा की बुराई है।

यह मुद्रा ही राष्ट्रीय आय के वितरण में असमानता (Inequality) लाती है, और इस प्रकार धन के कुछ पूंजीपतियों के हाथ में इकट्ठा होने के लिये उत्तरदायी होती है मैं तो यह भी कहूँगा कि पूँजीवाद का पोषण ही इस मुद्रा द्वारा होता है।

मुद्रा ही के कारण मानव दिन प्रति दिन भौतिकवाद (Materialism) की ओर जा रहा है, उसमें स्वार्थ परायणता बढ़ रही है। मुद्रा से दूर की बात उसके लिये सोचना मुश्किल हो गया है। वह अपने प्रत्येक कार्य में मुद्रा के दर्शन चाहता है। कुछ लोग तो इसको इस प्रकार भी कहते हैं—

पैसा माई, पैसा बाप, पैसे बिना [illegible] खराब।

कहने का तात्पर्य है कि आज की दुनिया अधिकतर मुद्रा अभिप्रायी (Money minded) हो गई है। भाई भाई के गले पर छूरी चलाता है, बेटा बाप का अन्त कर देना चाहता है, मित्र मित्र को मारने को तत्पर हो जाता है' यह सब किस लिये? केवल पैसे के लिये। किसी अंश तक यह कहना अनुचित न होगा कि आज की अधिकांश बुराइयों का कारण मुद्रा है। एक विद्वान ने तो इस बात को व्यक्त किया है—धोखा जालसाजी हत्या और चोरी का कारण मुद्रा को माना जाता है।' एक वेश्या के अपने आप को बेच डालने तथा एक न्यायाधीश के घूस खा कर न्याय विरुद्ध कार्य करने का कारण भी मुद्रा ही को माना जाता है। यह मुद्रा ही है जिसके विरुद्ध सुधारक को अत्याधिक भौतिकवाद को रोकने के लिये खूब प्रलाप करना पड़ता है मुद्रा से मोह का नाम ही लालच है और लालच ही सब बुराइयों की जड़ है।

यह सत्य है कि इनमें से कुछ दोष मुद्रा के उपयोग मे स्वयं मेव आ जाते हैं। इनको किसी प्रकार सहन करना चाहिये जैसे मुद्रा से अनेक लाभों के बदले में चुका रहे हो। प्रथम तो मुद्रा पद्धति के कई दोष वस्तु विनिमय की पद्धति में भी मौजूद हैं। दूसरे ये दोष समाज सुधार द्वारा दूर भी किये जा सकते

हैं। कुछ भी हो एक सुव्यवस्थित मुद्रा पद्धति उस पद्धति से कहीं अच्छी है जहाँ विनिमय का माध्यम ही न हो।

अभ्यास-प्रश्न

१—मुद्रा वस्तु की क्या क्या विशेषतायें हैं, लिखिये।

२—क्या मुद्रा हमारे लिये आवश्यक है? यदि हाँ, तो कैसे?

३—'आज का युग मुद्रा का युग है। मुद्रा के बिना आधुनिक सभ्यता असम्भव है।' सिद्ध कीजिये।

४—मुद्रा के स्वभाव व उस के महत्व से क्या समझते हो? लिखिये।

५—मुद्रा एक साधन है न कि साध्य' सिद्ध कीजिये कैसे?

६—मुद्रा के लाभ व हानि लिखिये।

७—क्या यह सच है कि आज की सारी बुराइयों का कारण मुद्रा है, इस मुद्रा ने ही हम को अधिकाधिक भौतिकवादी (Materialist) बना दिया है?

८—स्वर्ण में मुद्रा वस्तु के कौनसे गुण और दोष हैं? आधुनिक युग में स्वर्ण को मुद्रा के लिये एक आवश्यक वस्तु क्यों नहीं माना जाता?

अध्याय ४

मुद्रा का वर्गीकरण-धात्विक मुद्रा

मुद्रा का वर्गीकरण (Classification of Money)

मुद्रा का वर्गीकरण भिन्न भिन्न प्रकार से किया है। इस वर्गीकरण के कारण मुख्य रूप निम्न लिखित हैं:—

(१) धात्विक मुद्रा और कागजी मुद्रा (Metallic Money and Paper Money)—धात्विक मुद्रा से हमारा अभिप्राय उन भिन्न भिन्न प्रकार के सिक्कों से है जो भिन्न भिन्न प्रकार की धातुओं से बने होते हैं। उदाहरण के तौर पर रुपया, अठन्नी, चुवन्नी, दुअन्नी, एकन्नी और पैसा। ये सब धातु मुद्रा में आते हैं। इनमें इनके बाह्य मूल्य (Face value) के अतिरिक्त कुछ धातु का मूल्य अर्थात् आंतरिक मूल्य (Intrinsic value) भी होती है। यह इनकी विशेषता है।

कागजी मुद्रा तो जैसा नाम से ही स्पष्ट है कागज की बनी होती है। इसका आंतरिक मूल्य कुछ नहीं होता। इसके मुख्य उदाहरण आज के एक रुपए, दो रुपए, पाँच रुपए, दस रुपए और सौ रुपए के नोट हैं, जिनका चलन केवल सरकारी आज्ञा के कारण होता है।

(२) वास्तविक मुद्रा और हिसाबी मुद्रा (Money proper and Money of Account)—वास्तविक मुद्रा का आशय

उस मुद्रा से है जो चलन में रहती है चाहे वह धातु की हो अथवा कागज की, हल्की हो अथवा भारी। हिसाबी मुद्रा वह है जिसमें सारे हिसाब लिखे जाते हैं। इनका भेद ठीक इसी प्रकार का है जैसा 'भारत के राष्ट्रपति' (वह चाहे कोई भी व्यक्ति हों) और डा० राजेन्द्र प्रसाद में 'भारत का राष्ट्रपति' एक वर्णनात्मक चीज है जबकि डा० राजेन्द्र प्रसाद वास्तविक राष्ट्रपति हैं पहिले का उत्तर दूसरे में निहित है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि हिसाबी मुद्रा (वह चाहे कैसी भी हो) एक वर्णनात्मक चीज है जबकि वास्तविक मुद्रा वह मुद्रा है जिस में इस वर्णन का उत्तर निहित है।

३) विधि ग्राह्य मुद्रा तथा ऐच्छिक मुद्रा (Legal Tender money & Optional money)—विधि ग्राह्य मुद्रा वह मुद्रा है जो सरकारी कानून या आज्ञा के द्वारा चलन में आती है और जिसके स्वीकार करने को प्रत्येक व्यक्ति बाध्य होता है। इसको लेने से इनकार करने पर दंड भोगना पड़ता है। यह दो प्रकार की हो सकती है सीमित विधि ग्राह्य (Limited Legal Tender) और असीमित विधि ग्राह्य (Unlimited Legal Tender)—सीमित विधि ग्राह्य मुद्रा किसी खास सीमा तक ही स्वीकार की जाती है, जैसे हमारे देश में चवन्नी, दुअन्नी, एकन्नी पैसा आदि सीमित विधि ग्राह्य मुद्रायें हैं। इनको एक सीमा तक ही लेने को हम लोग बाध्य हैं उसके बाद हम लेने से इनकार कर सकते हैं। किंतु असीमित विधि ग्राह्य मुद्रा जैसे रुपया, अठन्नी, नोट आदि के लिये कोई सीमा निश्चित नहीं होती। ये हमको भुगतान के समय किसी भी तादाद तक दिये जा सकते हैं।

ऐच्छिक मुद्रा वह मुद्रा है जिसके स्वीकार करनेको हम बाध्य नहीं होते। इसका मुख्य उदाहरण, बैंकों के नोट और चेक हैं

जिनका लेन देन उन बैंकों की साख पर निर्भर करता है। यदि किसी बैंक की साख अच्छी और दृढ़ है तो उसके नोट सब कोई लेने को तैयार रहेगा, और दूसरे बैंक के नोट जिसकी साख कमजोर है, लेने से इनकार भी किया जा सकता है। इन पर कोई वैधानिक प्रतिबन्ध नहीं है।

(४) प्रामाणिक मुद्रा और प्रतीक मुद्रा (Standard money and Token money) ये वास्तव में धातु मुद्रा के ही भेद हैं।

प्रामाणिक मुद्रा (Standard Money)

प्रामाणिक मुद्रा वह मुद्रा है, जिसके साथ दूसरी सब प्रकार की मुद्राओं के मूल्य का समायोजन (Adjustment) किया जाता है इसमें निम्नलिखित विशेषतायें पाई जाती हैं:—

(क) ढलाई की स्वतंत्रता (Free coinage)—इसमें कोई भी व्यक्ति टकसाल में जाकर अपनी आवश्यकतानुसार मुद्रा ढलवा सकता है। जितनी मुद्रा को उसको आवश्यकता हो उतने ही तौल की शुद्ध धातु उसको टकसाल में जमा करानी होगी। सरकार किसी भी परिमाण में मुद्रा ढालने को बाध्य होती है। यह दूसरी बात है कि ढलाई खर्च वह ले अथवा न ले।

(ख) आन्तरिक एवं वाह्य मूल्य में समानता (Equality in the face value and intrinsic value)—प्रामाणिक मुद्रा की यह विशेषता है कि उसका वाह्य मूल्य और आन्तरिक मूल्य समान होता है। उदाहरण के तौर पर रुपये का वाह्य मूल्य सोलह आने है तो उसकी धातु का मूल्य अथवा दूसरे शब्दों में उसका वास्तविक मूल्य भी सोलह आने होना आवश्यक है।

है। इसीलिये इसको पूर्ण काम सिक्का (Full bodied coins) भी कहते हैं।

(ग) आयात निर्यात का साधन (Means of Import and Export)—यह देश के अन्दर और बाहर भुगतान का मूल्य साधन होती है। इसका वास्तविक मूल्य होने के कारण सब लोग इसे लेने को तैयार रहते हैं। इसलिये इसका स्वतंत्रता पूर्वक आयात व निर्यात होता रहता है। देश की समस्त प्रतीक मुद्राओं का मूल्य इसी से सम्बद्ध होता है।

(घ) असीमित विधि ग्राह्यता (Unlimited Legal Tender)—प्रत्येक व्यक्ति अपने मूल्य प्रसंविदों तथा ऋण प्रसंविदों के भुगतान में इनको असीमित रूप से लेने को बाध्य होता है। इनके लेन देन की कोई सीमा निर्धारित नहीं होती।

प्रतीक मुद्रा

प्रतीक मुद्रा में उपर्युक्त बहुत सी बातों का अभाव होता है बल्कि यों कहना अधिक उपयुक्त होगा कि इस में प्रामाणिक मुद्रा की सब विरोधी बातें पाई जाती हैं जैसा नीचे के विवरण से स्पष्ट हो जायगा।

(क) ढलाई की रोक (Restricted coinage)—इस में धातु को टकसाल में ले जाकर मुद्रा ढलवाने की अथवा मुद्रा में परिवर्तन कराने की छूट नहीं होती। इस की मुद्रा ढलाई सीमित और नियन्त्रित होती है।

(ख) आन्तरिक मूल्य से बाह्य मूल्य का आधिक्य (Excess of Face value over Intransic value)—जैसा नाम से ही स्पष्ट है यह प्रतीक मुद्रा है। इस कारण इस का बाह्य मूल्य

आन्तरिक मूल्य से हमेशा अधिक होता है। इसी लिये इस को कभी कभी कानूनी सिक्कों (Fiat coins) के नाम से भी पुकारा जाता है, क्योंकि इसका मूल्य उस के वास्तविक मूल्य पर निर्भर नहीं होता। हमारे देश में चवन्नी, दुवन्नी आदि इसी श्रेणी में आती हैं।

(ग) सीमित विधि ग्राह्यता (Limited legal tender)—प्रतीक मुद्रा एक सीमा तक ही स्वीकार की जाती है; उस के बाद इस को लेने से इनकार किया जा सकता है। इस का कारण यह है कि यह एक प्रकार की सहायक मुद्रा है; जिस से छोटे मोटे लेन देन में सुविधा पड़ती है।

(घ) आंशिक ग्राह्यता (Partial acceptability)—ये सिक्के केवल देश के भीतर ही चलन में आते हैं। विदेशों में नहीं; क्योंकि इन में बाह्य मूल्य और आन्तरिक मूल्य में समानता नहीं होती।

भारतीय रुपया—अब प्रश्न यह है कि भारतीय रुपया प्रामाणिक मुद्रा है या नहीं ? वास्तव में देखा जाय तो भारतीय रुपये को प्रामाणिक मुद्रा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि न तो इस में ढलाई की स्वतंत्रता ही है और न आन्तरिक और बाह्य मूल्य की समानता ही। हाँ केवल इस में एक विशेषता मौजूद है और वह है असीमित ग्राह्यता। इस लिये इस में प्रामाणिक और प्रतीक दोनों मुद्राओं के लक्षण मिलने के कारण, इस को प्रतीक या संकेतात्मक प्रामाणिक मुद्रा (Token standard coin) कहना अधिक उपयुक्त होगा। किन्तु इसे असीमित विधि ग्राह्यता के कारण इस को प्रामाणिक मुद्रा ही माना जाता है।

धातु मुद्रा

धातु मुद्रा का विकास—पहिले पहल जब धातु मुद्रा प्रयोग में लाई गई, उस समय उस का यह रूप न था जो आज हम

सिक्कों के रूप में पाते हैं। इस समय बहुमूल्य धातुओं जैसे सोने और चाँदी के टुकड़े और छड़ियें काम में लाई जाती थीं। प्रत्येक व्यक्ति को इन का लेते समय तौलना और शुद्धता की जाच करना पड़ता था। तौलने के लिये बाट और जाँच करने के लिये कसौटी आदि रखना आवश्यक था। इतनी असुविधा और कठिनाई का सामना करते हुये भी, धोखेबाज और जाल-साज व्यक्तियों द्वारा ठगे जाने का भय बना रहता था। इससे व्यापार को ठेस लगना स्वाभाविक था।

इस कठिनाई को दूर करने के लिये कुछ प्रतिष्ठित शर्राफों व साहूकारों, जैसे जगत सेठों ने जिन की समाज में पूरी इज्जत और साख थी शुद्ध सोने और चांदी के टुकड़ों पर अपना निशान या मोहर अंकित करना प्रारम्भ किया। किन्तु ये भी अलग अलग सेठों द्वारा अलग अलग तौल के निकाले जाते थे। इसलिये इनका तौलना आवश्यक बना रहा। इस कठिनाई को भी दूर किया गया और एक ही नाप तौल के और एक ही शुद्धता के चांदी के टुकड़ों पर मोहर अंकित की जाने लगी। यही से सिक्के ढालने की पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ। वैसे तो नियमित ढंग के सिक्कों का प्रारम्भ ईसा के लगभग ७०० वर्ष पूर्व यूनान और मध्य एशिया के देशों में माना जाता है। किन्तु हमारे देश में भी सिक्कों का चलन बड़ा प्राचीन है। गौतम बुद्ध के समय में कई राजनैतिक एवं आर्थिक दृष्टि से प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा समकोणचतुर्भुज के आकार (Rectangular) के सिक्के जारी किये जाते थे। परन्तु सरकार द्वारा प्रमाणित सिक्के तो ईसा के लगभग ४०० वर्ष पूर्व से ही चलन में आये। भारत में शेरशाह सूरी ने पहिले पहल चाँदी, सोने और तांबेके सिक्के निकाले और रुपये को प्रधान सिक्के की संज्ञा दी। अकबर और

जहाँगीर के समय के सिक्के उस समय के बहुत से अग्रशील देशों के सिक्कों की अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर, कलापूर्ण एवं शुद्ध धातु के थे। मुगल अशर्फी अथवा मोहर तो अपनी सुन्दरता और शुद्धता के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध रह चुकी है।

इन सिक्कों में तौलने और जाँच पड़ताल करने की असुविधा तो न रही किन्तु फिर भी इनके किनारों को बारीकी से काट काट कर (Clipping) उनको तेजाब या अन्य तीव्र रासायनिक पदार्थों में डाल डाल कर तथा कुछ अन्य तरीकों से भी इनका वजन कम करने की काफी गुँजाइश बनी रही। इस जालसाजी व धोखा बाजी को दूर करने, उनके नाप तौल और आकार में पूरी पूरी समानता (Uniformity) लाने के उद्देश्य से ही आधुनिक सिक्के गोलाकार, किनारों पर कटे हुये (Milled) होते हैं और साथ ही उनके दोनों तरफ बड़े ही कलापूर्ण ढंग से कुछ चिह्न जैसे अशोक स्तम्भ, सिंह आदि अंकित होते हैं। इनके भिन्न भिन्न आकार के और भिन्न भिन्न धातु के बने होनेके अतिरिक्त इनपर देश की प्रचलित भाषाओं में इनका नाम (Denomination) जैसे एक रूपया, आठ आने, चार आने आदि दिया रहता है जिससे प्रत्येक व्यक्ति आसानी से पहिचान लेवे।

धातु मुद्रा की ढलाई (Coinage)

किसी धातु के समान नाप तौल व शुद्धता के प्रमाणित टुकड़ों को सिक्का कहते हैं। टासिग‡ के शब्दों में सिक्के धातु के अंकित व प्रमाणित टुकड़े हैं। जेवन्स* के अनुसार सिक्के धातु

‡ "Coins are stamped and certified pieces of metal. —Taussig

* "Ingots of which the weight and fineness are certified by the integrity of design impressed upon the surface of the metal." - Jevons.

के वे टुकड़े हैं जिनका तोल और शुद्धता इन पर अंकित मोहर को सचाई द्वारा प्रमाणित होते हैं। इसे धातु मुद्रा निर्माण की क्रिया को मुद्रा ढलाई (Coinage) कहते हैं।

प्राचीन काल तथा मध्यकाल में सिक्का ढलाई का सारा कार्य हाथ से होता था और इसी कारण सिक्कों की संख्या भी सीमित होती थी। साधारण मनुष्य को अपनी नित्य प्रति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वस्तु विनिमय पद्धति पर निर्भर रहना पड़ता था। मशीन निर्मितसिक्कों का प्रादुर्भाव १६ वीं शताब्दि में हुआ जबकि बकिंघम के बोल्टन (Boulton) नामक एक व्यक्ति ने प्रसिद्ध वैज्ञानिक जेम्सवाट की सहायता से मुद्रा निर्माण मशीन में भाप का प्रयोग किया

टकसाल

वह स्थान जहाँ धातु मुद्रा ढलाई का कार्य होता है टकसाल (Mint) कहलाती है। सन् १७५७ ई० में ईस्ट इन्डिया कम्पनी और नवाब सिराजुद्दौला के बीच संधि के आधार पर कम्पनी को कलकत्ते में एक टकसाल स्थापित करने की अनुमति दी गई और २६ अगस्त सन् १७५७, ई० को भारत का प्रथम रुपया निकाला गया। किंतु इस समय न तो धातु पिघलाने की ही क्रिया ठीक ढंग की थी और न सिक्के ढालने की क्रिया ही सन् १८२४ ई० में भारत सरकार ने बम्बई और कलकत्ते में दो टकसाल स्थापित करने का निश्चय किया। कलकत्ता की टकसाल का कार्य १८२६ से शुरू हुआ और बम्बई का १८२८ से। टकसाल निर्माण कार्य प्रसिद्ध टकसाल कार [Mint Master] मेजर जनरल फोर्बेस की देख रेख में हुआ जिनका कार्य बड़ा प्रशंसनीय है। ये दोनों टकसालें अमरीका में फिलाडेल्फिया की टकसाल को छोड़ कर संसार की सबसे बड़ी टकसालों में गिनी

जाती हैं। अभी १६ मार्च सन १६५२ को अलीपुर कलकत्ता में जो नई टकसाल खुली है और जिसका उद्घाटन भारत सरकार के वित्त मंत्री. श्री चिन्ता मणि देशमुख द्वारा हुआ है उसने हमारे देश को न केवल पूर्णतः आत्म निर्भर बना दिया बल्कि विदेशों की मुद्रा ढालने में भी समर्थ बना दिया है। यह टकसाल प्रति घन्टे १५६२५० सिक्के ढालने की क्षमता रखती है।

मुद्रा ढलाई दो प्रकार की होती है—स्वतंत्र मुद्रा ढलाई (Free coinage) तथा सीमित मुद्रा ढलाई (Limited coinage)—स्वतंत्र मुद्रा ढलाई वह पद्धति है, जिसमें जनता को टकसाल में जाकर अपनी धातु के बदले में कुछ शुल्क देकर अथवा न देकर मुद्रा ढलवाने की छूट रहती है। किन्तु सीमित मुद्रा ढलाई में यह छूट नहीं होती। मुद्रा ढालने का अधिकार केवल सरकार को ही होता है। वह जब चाहे अपनी इच्छानुसार मुद्रा ढाल सकती है; जनता की टकसाल तक स्वतंत्र पहुँच नहीं होती। हमारे देश में सन १८६३ ई० तक स्वतंत्र मुद्रा ढलाई होती थी, किन्तु उसके बाद सीमित मुद्राई ढलाई का नियम लागू कर दिया गया। आज कल प्रायः संसार के सभी देशों में सीमित मुद्रा ढलाई होती है।

सरकार मुद्रा ढलाई का खर्च वसूल करे अथवा न करे यह उसकी इच्छा पर निर्भर रहता है। जब सरकार जनता से ढलाई के बदले में कोई शुल्क या खर्चा नहीं लेती तो यह निःशुल्क मुद्रा ढलाई (Gratuitous or Free Coinage) कहलाती है। यदि सरकार मुद्रा ढलाई के लिये कोई शुल्क लेती है और यह शुल्क सिक्का बनाने में जो खर्च होता है उसी के बराबर होता है तो उसे टांका या मुद्रा ढलाई व्यय [Brassage] कहते हैं। इस प्रकार की ढलाई सशुल्क मुद्रा ढलाई कहलाती है।

किन्तु यदि सरकार जनता से ढलाई व्यय के अतिरिक्त कुछ रकम लाभ के रूप में वसूल करती है उसे मुद्रा ढलाई लाभ (Seigniorage) कहते हैं। दूसरे शब्दों में मुद्रा ढलाई लाभ वह रकम है जो वसूल की गई मुद्रा ढलाई में से वास्तविक मुद्रा ढलाई व्यय कम करने से बच रहता है। यह लाभ दो तरह से प्राप्त किया जा सकता है अर्थात् या तो सिक्का ढलवाने वाले से निश्चित रकम के रूप में, या उसकी कीमत की धातु सिक्के में निकाल कर। सरकार द्वारा सिक्के के तौल या शुद्धता के कम कर देने का नाम ही हीनता अथवा निकृष्टता (Debasement) है। आजकल का पूरे गिलट (Pure Nickel) का रुपया निकृष्टता का अनुपम उदाहरण है।

धातु मुद्रा से लाभ

(१) धातु मुद्रा में मुद्रा का प्रमुख गुण अक्षयशीलता (Indestructibility) बना रहता है। यह तो प्रकट है कि कागजी मुद्रा की अपेक्षा इसकी आयु अधिक और लम्बी होती है।

(२) धातु मुद्रा में आन्तरिक मूल्य (Intrinsic Value) होने से जनता का विश्वास बना रहता है। सब कोई इसको लेने को तत्पर रहता है।

(३) धातु मुद्रा ढालने का एकाधिकार सरकार के पास होने से सिक्कों में एक समता (Uniformity) होती है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को पहिचानने में आसानी रहती है। इसके अतिरिक्त इससे जाली सिक्के बनाना भी कठिन हो जाता है। इसी कारण आजकल का भारतीय रुपया शुद्ध गिलट (Pure Nickle) का जिसके लिये बड़ी ताप 1452° Centigrade की आवश्य-

कता होती है) बनाया जाता है. जो केवल अलीपुर वाली टकसाल में ही सम्भव है।

(४) अन्त में हम यह कह सकते हैं कि मुद्रा की अधिकांश विशेषतायें धातु मुद्रा में विद्यमान हैं।

धातु मुद्रा से हानियां

(१) धातु मुद्रा से धातु का अपव्यय होता है। यही धातु राष्ट्र के अन्य आवश्यक कार्यों के लिए उपयोग में लाई जा सकती है।

(२) धातु मुद्रा चलन में होने की दशा में उस की मात्रा आसानी से नहीं बढ़ाई जा सकती क्योंकि यह उस देश में कितनी धातु है इस पर निर्भर रहता है।

(३) धातु मुद्रा ढालने में व्यय भी अधिक होता है क्योंकि धातु के पिघलाने व शुद्ध करने में विशेष खर्चा पड़ता है।

अभ्यास-प्रश्न

१—मुद्रा की विधि ग्राह्यता से क्या समझते हो? सीमित विधि ग्राह्य और असीमित विधिग्राह्य मुद्रा में क्या अन्तर है? उदाहरण सहित लिखिये।

२—सिक्का किसे कहते हैं? सीमित मुद्रा ढलाई और स्वतत्र मुद्रा ढलाई से क्या समझते हो? विस्तार से लिखिये।

३—निम्नांकित अन्तर लिखिये—

१—प्रामाणिक मुद्रा और सांकेतिक मुद्रा,

२—विधि ग्राह्य मुद्रा और ऐच्छिक मुद्रा,

३—आन्तरिक मूल्य और वाह्य मूल्य:

४—इनको समझाइये—निकृष्टता, सलाभ मुद्रा ढलाई, सशुल्कमुद्रा ढलाई, पूर्णकाम सिक्का, निःशुल्क मुद्रा ढलाई।

अध्याय ५

कागजी मुद्रा

कागजी मुद्रा का आशय उस मुद्रा से है जिस में कागज पर किसी सरकार अथवा सरकार द्वारा अधिकृत बैंक (भारत में रिजर्व बैंक) के विशेष प्रकार के चिह्नों द्वारा, मांगने पर निश्चित प्रधान मुद्रा देने का लिखित वायदा किया गया हो। हमारे देश में ५, १० और १०० रुपये के नोटों में रिजर्व बैंक की ओर से उस का प्रधान (Governor) इन नोटों के बदले में निश्चित प्रधान मुद्रा देने का वायदा करता है, जैसा आप ने देखा होगा कि १०० रुपये के नोट में यह शब्द लिखे रहते हैं :—

I promise to pay the bearer the sum of
HUNDRED RUPEES.

कागजी मुद्रा का आविष्कार बहुमूल्य धातुओं की घिसावट से बचत करने तथा मुद्रा पद्धति को अधिक लोचदार (Elastic) बनाने के उद्देश्य को लेकर किया गया है। इस का प्रयोग अति प्राचीन है। किनले के शब्दों में कागजी मुद्रा हमारे पड़ोसी देश चीन में नवीं शताब्दी में भी प्रयोग में लाई जाती थी। बाद में, १७ वीं शताब्दी में, फ्रांस में, कागजी मुद्रा चौकोर ताश के पत्तों के रूप में मिलती है। अब तो संसार के प्रायः सभी देशों में कागजी मुद्रा का प्रयोग होता है। बल्कि आज तो किसी देश में कागजी मुद्रा का होना एक सभ्यता की निशानी माना

जाता है। अब हम कागजी मुद्रा किस किसी प्रकार की होती है इसका विवेचन करेंगे।

कागजी मुद्रा के भेद

(१) प्रतिनिधिक कागजी मुद्रा (Representative Paper Money)— यह वह कागजी मुद्रा है जो राष्ट्रीय खजाने अथवा बैंक में अनुपात (Equivalent Amount) में रखी गई धातु या धात्विक मुद्रा का प्रतिनिधित्व करती है। अर्थात इस पद्धति में सरकार या बैंक जितनी रकम के नोट निकालती है उतनी ही कीमत का सोना, चाँदी अथवा सोने या चाँदी की बनी मुद्रा अपने कोष में अवश्य रखती है। इस की कीमत जिस कागज पर यह छापी जाती है उस से न आंकी जाकर उन प्रधान सिक्कों से आंकी जाती है जिन में यह परिवर्त्तित की जा सकती है। अमरीका के सोने और चाँदी के प्रमाण-पत्र (American gold & silver certificates) इस के ज्वलन्त उदाहरण हैं। आजकल इस प्रकार की कागजी मुद्रा का प्रयोग कुछ ही देशों में होता है क्योंकि इस में कागजी मुद्रा के समस्त लाभ उपलब्ध नहीं होते।

२) परिवर्त्तनीय कागजी मुद्रा (Converiable paper money)—यह वह कागजी मुद्रा है जिस के बदले में आवश्यक्ता पड़ने पर बहुमूल्य धातु (Specie) प्राप्त की जा सकती है। इस को जारी करने वाले अधिकारी (Issuing authority) की ओर से यह प्रतिज्ञा होती है कि जब कभी इस को भुनाने के लिये प्रस्तुत किया जायगा इस के बदले में बहुमूल्य धातु (Bullion) अथवा सिक्के दे दिये जायेंगे। किन्तु इस के लिये कोष में शत प्रति शत कीमत की धातु या धात्विक मुद्रा नहीं रखी

जाती। चूँकि सब कागजी मुद्रा धारकों (Note-holders) द्वारा, मुद्रा को एक साथ एक ही समय बदलवाने को प्रस्तुत करने की सम्भावना नहीं होती। इस लिये कोष में रखी जाने वाली धातु की मात्रा बहुत कम होती है, जैसे ४० प्रति शत। जिस प्रति शत तक धातु या धात्विक मुद्रा रखी जाती है वह भाग रक्षित भाग (Covered portion) कहलाता है जैसे ४० प्रति शत। शेष ६० प्रति शत जिस के लिये कोई धातु नहीं रखी जाती, अरक्षित भाग (Uncovered portion) अथवा फिड्यूशरी (Fiduciary) भाग कहलाता है। यह ६० प्रति शत विनियोगों (Securities) द्वारा सुरक्षित होता है। परिवर्तनीय कागजी मुद्रा एक अच्छी मुद्रा प्रणाली है क्योंकि इस में धातु की बचत भी हो जाती है। समयानुसार इस में वृद्धि भी की जा सकती है और जनता का विश्वास भी बना रहता है।

अपरिवर्तनीय कागजी मुद्रा (Inconvertible paper money) - यह वह मुद्रा है जो न तो किसी वस्तु का प्रतिनिधित्व करती है और न किसी वस्तु पर कोई अधिकार देती है। प्रकाशित करने वाली सरकार या बैंक इस के बदले में कोई धातु अथवा प्रामाणिक मुद्रा देने को बाध्य नहीं होती। इसी लिये इस के लिये कोष में कोई धातु नहीं रखी जाती। यह ऐसे समय में जारी की जाती है जब सरकार को मुद्रा की तीव्र आवश्यकता होती है और सरकार को जनता से ऋण नहीं मिल पाता, जैसे युद्ध आदि के दिनों में। इस प्रकार सरकार जनता से बिना किसी प्रकार का व्याज दिये और बिना उन की इच्छा के (बल पूर्वक) ऋण लेने में समर्थ हो जाती है। जनता इस प्रणाली को जबर्दस्ती प्रत्यक्ष कर लेने की प्रणाली के रूप में मानती है। इसी लिये ये अपरिवर्त्तनीय नोट जनता में अप्रिय

होते हैं और प्राय: बट्टे Discount) से चलते हैं। इसके मुख्य उदाहरण अमरीका के ग्रीन बेक्स (Greenbacks) फ्रांस के असायनेंट्स (Assignants) और हमारे देश के एक एक रुपये के नोट है।

ये नोट यदि देश की व्यापारिक और औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति के परिचायक हों तो इस प्रकार के नोटों से भी हमारा कोई विरोध न होगा। किन्तु दुख तो इस बात का है कि सरकार प्राय: स्वार्थी होती है और वे समाज की आवश्यकताओं को कोई महत्व न देकर अपनी आवश्यकताओं पर अधिक ध्यान देती है। इसी कारण देश में चलनाधिक्य (Over-issue) हो जाता है जो अपने बुरे परिणामों के कारण बड़ा घातक सिद्ध होता है जैसा हमें आगे के पृष्ठों से स्पष्ट हो जायगा।

कागजी मुद्रा प्रकाशन के सिद्धान्त

(१) चलित मुद्रा बनाम बैंकिंग सिद्धान्त Currency v/s Banking Principle)

(क) चलित मुद्रा सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के अनुसार चलन में लाये गये सब नोट धात्विक निधि द्वारा सुरक्षित होने आवश्यक हैं; अर्थात जितनी रकम के नोट निकाले जायें उतने ही मूल्य की धात्विक निधि सोने या चाँदी के रूप में होनी चाहिये। यदि धात्विक निधि में कमी की जाती है तो साथ के साथ चलन में लाये गये नोट भी कम कर दिये जाने चाहियें। उदाहरण के लिये यदि १० करोड़ के नोट प्रकाशित किये जाते हैं तो १० करोड़ के मूल्य का सोना या चाँदी निधि में अवश्य होना चाहिये। यहाँ मुद्रा का प्रसार व्यापारिक और औद्योगिक आवश्यकताओं पर निर्भर न होकर धात्विक निधि पर निर्भर

करती चली आई है। दूसरे सरकार में लोगों का विश्वास अब बना हुआ है। क्योंकि देश की सारी सम्पत्ति निधि के रूप में रहती है। इसके अतिरिक्त कागजी मुद्रा प्रकाशन से होने वाला अपार लाभ एक सार्वजनिक लाभ है, सरकार के हाथ में मुद्रा प्रकाशन का सर्वाधिकार होने से यह लाभ बैंक के कुछ सदस्यों की जेब में न जाकर जन-हित के कार्यों में आ सकता है। इसलिये नोट-प्रकाशन का कार्य सरकार के हाथ में रहना चाहिये।

इसके विरोधियों का कहना है कि सरकार का व्यापारी वर्ग से सीधा सम्पर्क नहीं होता। अतः यह वित्तीय तथा वाणिज्य संसार (Financial and commercial world में होने वाले उथल पुथल से प्रायः अनभिज्ञ रहती है। सरकार के अधिक से अधिक सूचना प्राप्त विभागों के लिये भी यह जानना अत्यन्त कठिन है कि मुद्रा की कहाँ, कब और कितनी आवश्यकता है अथवा कब और कहाँ कितनी अनावश्यक मुद्रा है जिसको निकाल लिया जाना चाहिये। दूसरे सरकार के सब कार्य बड़ी ढिलाई से और बड़े सोच-विचार के बाद किये जाते हैं इसलिये मुद्रा की अधिक आवश्यकता होते ही उसकी शीघ्र पूर्ति किया जाना असम्भव है जिसका यह प्रभाव होता है कि कभी मुद्रा आवश्यकता से अधिक अर्थात चलनाधिक्य और कभी मुद्रा आवश्यकता से कम अर्थात चलनाभाव हो जाता है। तीसरे सरकार प्रायः आर्थिक कारणों को भूलकर राजनैतिक परिस्थितियों की शिकार हो जाती है। जिस दल के हाथ में सत्ता होती है वह अपने हितों की पूर्ति के लिए अनाप सनाप नोटों का प्रकाशन कर देती है।

(ख) बैंक द्वारा नोट प्रकाशन—बैंक द्वारा नोट प्रकाशन में उपर्युक्त बुराइयां नहीं होतीं। बैंक का उत्पादकों तथा व्यव-

साथियों से निरंतर सम्पर्क बना रहने से समय पर बाजार की मुद्रा के लिये आवश्यकता समझने में कठिनाई नहीं होती; दूसरे, साख मुद्रा पर इसका पूर्ण अधिकार होता है जिसकी सहायता से उद्योग और व्यवसाय की अल्पकालीन सामयिक आवश्यकताओं में और मुद्रा की पूर्ति में समायोजन (adjust-ment) करने में समर्थ होता है। तीसरे, न तो इसका दलगत राजनीति ही से भी सम्बन्ध होता है और न इसकी नीति घाटे के बजट या फौजी खर्चे से प्रभावित होती है। इन्हीं कारणों से आजकल अधिकांश व्यक्ति बैंक द्वारा नोट प्रकाशन के पक्ष में हैं। इस पद्धति से लोच का होना इसे सर्वोत्तम बना देता है। जहाँ तक सुरक्षा और परिवर्तनशीलता का प्रश्न है, इसके लिये सरकार बैंक को, कागजी मुद्रा चलन का कुछ भाग सोना या चाँदी में रखने को कानून द्वारा बाध्य कर सकती है। अब रहा केवल कागजी मुद्रा प्रकाशन से होने वाले लाभ का प्रश्न, सो बैंक को कुछ निश्चित मात्रा में लाभांश देकर शेष सारा लाभ सरकारी खजाने में लिया जा सकता है, जैसा हमारे देश में अब तक किया जाता था।

एक बनाम अनेक बैंकों द्वारा नोट प्रकाशन (Single v/s multiple Note Issue)—यह तय हो जाने पर कि नोट प्रकाशन का कार्य सरकार को न दिया जाकर बैंक को दिया जाना चाहिये, यह प्रश्न सामने आता है कि उक्त कार्य एक ही बैंक को दिया जाना उचित है अथवा अनेक बैंकों को। वास्तव में यदि हम चलन (Currency) और साख (Credit) पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण चाहते हैं तो स्पष्टतया केन्द्रीयकरण ही सर्वोत्तम होगा। क्योंकि, अनेक बैंकों द्वारा नोट प्रकाशित होने पर

निम्नलिखित त्रुटियों का होना अवश्यम्भावी है :—

(१) भिन्न भिन्न बैंकों द्वारा प्रकाशित नोट भिन्न भिन्न प्रकार के होंगे। उनमें एक रूपता (Uniformity) लाना अत्यन्त कठिन है।

(२) एक रूपता के न होने से एक तो उन में सहज में पहिचान लिये जाने की क्षमता (Cognisability) का अभाव हो जाता है, दूसरे जाली (Counterfeit) नोटों का चलन में आना सहज हो जाता है।

(३) प्रत्येक बैंक के यह चाहने से कि उस की मुद्रा की दूसरों की अपेक्षा अधिक मांग रहे, उनमें पारस्परिक स्पर्धा चलती है जो प्रायः जनता के लिये घातक सिद्ध होती है।

(४) इस पद्धति में प्रत्येक बैंक को अलग अलग सुरक्षित निधि रखनी पड़ती है जिस से बहुमूल्य धातु की बचत नहीं होने पाती।

(५) साधारणतया व्यापारिक बैंकों का मुख्य उद्देश्य लाभप्राप्ति होता है। उनमें इस स्रोत से लाभ बढ़ाने की पारस्परिक स्पर्धा से धात्विक निधि गिर जाती है और कागजी मुद्रा का अत्यधिक प्रसार हो जाता है।

(६) भिन्न भिन्न बैंकों की भिन्न भिन्न मुद्रा संचालन नीति होने से उन पर पूर्ण नियन्त्रण कठिन हो जाता है।

उपर्युक्त कठिनाइयों पर काबू पाने के लिये कागजी मुद्रा प्रकाशन का कार्य केवल एक बैंक को देना आवश्यक है और इस एक बैंक का आशय है केन्द्रीय बैंक। केन्द्रीय बैंक मुद्रा में उचित मात्रा में, एक रूपता, लोच, तथा गति सामर्थ्य लाने में समर्थ होता है। केन्द्रीय बैंक को मुद्रा प्रकाशन का एकाधिकार

(Monopoly) होने से, अनावश्यक मात्रा में नोट बढ़ाने की प्रवृति, जो पारस्परिक स्पर्धा से विशेषकर आ जाती है, दूर हो जाती है। इस की नीति लाभ-प्रेरित न होने से यह जनहित पर अधिक ध्यान दे, सकता है। इस के अतिरिक्त केन्द्रीय बैंक ही एक ऐसी संस्था है जिस का देश के सारे बैंकों तथा प्रान्तीय व केन्द्रीय सरकारों से सम्बन्ध होता है और इस लिये समाज की मुद्रा की आवश्यकता को ठीक ठीक आंकने और उसके अनुसार मुद्रा प्रसार व मुद्रा संकोच करने में समर्थ होता है।

नोट प्रकाशन की आधुनिक पद्धतियां

नोट प्रकाशन की अच्छी पद्धति के लिये लोच को आवश्यक तत्व मानते हुये भी, विभिन्न अर्थ शास्त्री किस मात्रा तक लोच आवश्यक है, इस पर सहमत नहीं हैं। इस लिये आगे के पृष्ठों में, विभिन्न देशों में प्रचलित कागजी मुद्रा पद्धतियों का सामान्य दिग्दर्शन कराया गया है, जिस से मुद्रा प्रकाशन पद्धति के बारे में विभिन्न विचार धारायें स्पष्टतया जानी जा सकें। ये पद्धतियां इस प्रकार हैं :—

(१) निश्चित अधिकतम नोट प्रकाशन पद्धति (Fixed maximum Note issue)—यहां कानून द्वारा कागजी मुद्रा की अधिकतम राशि निश्चित कर दी जाती है, जिस से अधिक रकम के नोट नहीं छापे जाते, चाहे कितनी ही धात्विक निधि क्यों न रख ली जाय। यह अधिकतम राशि प्रायः मुद्रा की सामान्य आवश्यकताओं से ऊँची ही स्थिर की जाती है और समयानुकूल बदली भी जा सकती है। इस में धात्विक निधि और कागजी मुद्रा कितनी चलन में है इस से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस प्रकार की कागजी मुद्रा फ्रान्स में सन् १८७० से

१६२६ तक प्रचलित थी और इंगलैंड में १६३६ से अब तक प्रचलित है। इस मुद्रा पद्धति में लोच नहीं रहती क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर यह अधिकतम मात्रा शीघ्र नहीं बढ़ाई जा सकती। इस के अतिरिक्त यहाँ मुद्रा प्रसार न हो ऐसा भी कोई बन्धन (Guaranty) नहीं है क्योंकि संसद (Parliament) जब चाहे नोटों में कानून द्वारा वृद्धि कर सकती है। हाँ यहाँ धातु की बचत अवश्य हो जाती है क्योंकि इस अधिकतम राशि तक कोई धात्विक निधि रखना आवश्यक नहीं होता।

(२) निश्चित अरक्षित नोट प्रकाशन पद्धति (Fixed fiduciary note issue)—इस पद्धति के अनुसार केन्द्रीय बैंक एक निश्चित रकम तक के नोट बिना किसी धात्विक निधि के रखे छाप सकता है। यह भाग अरक्षित भाग (Fiduciary Portion) कहलाता है जो केवल सरकारी ऋण पत्रों के आधार पर छापा जाता है। इस निश्चित रकम से अधिक नोट प्रकाशित करने की दशा में इस अधिक रकम के लिये शत प्रतिशत धात्विक निधि रखना आवश्यक है। इस पद्धति को बैंक आफ इंगलैंड ने सन् १८४४ ई० में बैंक चार्टर एक्ट १८४४ के अन्तर्गत पहले पहल अपनाया था। सन् १६२६ ई० के पहिले यह निश्चित राकि १४०,००,००० पौंड थी, १६२६ में इसको बदल कर २६ करोड़ और बाद में इसको भी बढ़ाकर २७ करोड़ ५० लाख पौंड कर दी गई। जापान और नार्वे में भी इसी पद्धति का अनुसरण किया जाता है।

इस पद्धति का मुख्य उद्देश्य धात्विक निधि (स्वर्ण) की सहायता से मुद्रा प्रसार को रोके रखना तथा किसी अंश तक परिवर्तन शीलता को बनाये रखना है। इसमें लोच और मितव्ययिता का नितान्त अभाव है। क्यों कि, इसमें मुद्रा का

गठबन्धन व्यापारिक आवश्यकताओं से न कर धात्विक निधि से किया गया है और यह धात्विक निधि अनावश्यक रूप से ताले में बन्द रखी जाती है। इसकी सफलता के लिये वह आवश्यक होजाता है कि यह निश्चित राशि पहिले से ही काफी ऊंची रखी जाये।

(३) आनुपातिक सुरक्षित निधि पद्धति (Proportional Reserve Method) इस पद्धति में कागजी मुद्रा चलन तथा धात्विक निधि का अनुपात पहिले से निश्चित करदिया जाता है। उदाहरणार्थ १०० रुपये के नोटों के लिये ४० रुपये के मूल्य का सोना। यह अनुपात सरकार द्वारा समय समय बदला भी जा सकता है। ऊपर के उदाहरण में ४० प्रतिशत भाग जो सोने, चाँदी अथवा सोने, चाँदी की मुद्रा में रखना पड़ता है, सुरक्षित भाग कहलाता है, इसी लिये इस पद्धति का नाम आनुपातिक सुरक्षित निधिपद्धति रखागया है। शेष भाग सोने, चाँदी में न रखकर सरकारी साख पत्रों (Giltedged Securities) अथवा प्रतिष्टित हुँडियों में रखा जाता है। संयुक्तराष्ट्र अमरीका, फ्रांस, जर्मनी तथा हमारे देश में इसी पद्धति का अनुसरण किया जाता है। अमरीका, जर्मनी तथा भारत में ४० प्रतिशत, फ्रांस में ३५ प्रतिशत तथा आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टाइना, कैनाडा वन्यूजीलैंड में २५ प्रतिशत निधि रखना आवश्यक है। हमारे यहाँ रिजर्व बैंक के नोट प्रकाशन विभाग की सारी सम्पत्ति का ४० प्रतिशत भाग स्वर्ण-मुद्रा अथवा (कम से कम ५ प्रतिशत देश में ही होना अनिवार्य है) और स्टर्लिंग साख पत्रों (Sterling Securities) में होना आवश्यक है. शेष रुपयों, साख पत्रों तथा हुंडियों आदि में रखा जा सकता है। इस पद्धति में लोच, मितव्ययिता तथा चलनाधिक्य से सुरक्षा

रहती है। साथ ही किसी हद तक परिवर्तनशीलता भी बनी रहती है। इसीलिये यह पद्धति संसार के अधिकांश देशों में पाई जाती है।

(४) प्रतिशत पद्धति (Percentage method)—यह एक प्रकार से तीसरी पद्धति का ही अनुरूप है। इसके अनुसार निधि का कुछ अंश तो देश में सोना, चाँदी के रूप में रखा जाता है तथा कुछ विदेशी बैंकों में नकद अथवा हुँडियों के रूप में रखा जा सकता है। इससे सोने. चाँदी की बचत भी हो जाती है और तीसरी पद्धति के सब लाभ भी उपलब्ध हो जाते हैं।

(५) न्यूनतम विधि पद्धति (Minimum reserve method)—यह भी एक प्रकार से तीसरी पद्धति का ही अनुरूप है क्योंकि यहां निधि का कम से कम कितना भाग सोने, चाँदी में रखा जाय, यह कानून द्वारा नियत होता है जैसे, हमारे देश में ४० प्रतिशत भाग में ४० करोड़ का सोना रखना अनिवार्य है। यहाँ भी हमको अच्छी मुद्रा पद्धति की बहुत बातें मिल जाती है। यह मुद्रा पद्धति आजकल बहुत कम प्रयोग में लाई जाती है।

(६) साधारण निधि पद्धति (Simple deposit method) यह एक प्रतिनिधिक कागजी मुद्रा का ज्वलन्त उदाहरण है। यहाँ कागजी मुद्रा चलन का शत प्रतिशत भाग सोने चाँदी में रखा जाता है इसमें लोच और मितव्ययिता का नितांत अभाव है

अच्छी कागज़ी मुद्रा पद्धति के लक्षण (Characteristics of good paper money)—किस देश को कौन सी मुद्रा पद्धति अपनानी चाहिये, यह

अधिकतर उस देश की स्वर्ण की मात्रा, मनुष्यों के स्वभाव, मुद्रा बाजार की परिस्थितियों आदि पर निर्भर करता है। किन्तु सैद्धांतिक दृष्टि से प्रत्येक सभ्य देश में कोई एक मुद्रा का रूप होना चाहिये और वह केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रचारित हो। यहाँ यह है कि एक अच्छी कागजी मुद्रा पद्धति के लिये क्या क्या बातें आवश्यक हैं। इन सब का विवेचन नीचे किया गया है।

(१) लोच (Elasticity)—अच्छी मुद्रा पद्धति के लिये यह आवश्यक है कि सामाजिक आवश्यकताओं के साथ मुद्रा बढ़ाई और घटाई जा सके। इस बढ़ने और घटने की क्षमता को ही मुद्रा की लोच कहते हैं।

(२) मितव्ययिता (Economy)—कागजी मुद्रा का मुख्य उद्देश्य ही बहुमूल्य धातु की बचत करना है। इसलिये अच्छी कागजी मुद्रा पद्धति ही वह होगी जिसमें सोने और चाँदी का कम से कम उपयोग हो।

(३) परिवर्त्तनशीलता (Convertibility)—ऊपर जो सोने और चाँदी के कम से कम उपयोग के बारे में कहा गया है उसका यह अर्थ नहीं कि धात्विक निधि बिलकुल ही न रखी जाये। कुछ मात्रा में तो धात्विक निधि रखना आवश्यक है ही, क्योंकि इसके बिना परिवर्तनशीलता, जो जनता का विश्वास करने और नोट प्रकाशित करने वाली संस्था की साख बनाये रखने के अत्यन्त आवश्यक है, नहीं रह सकती। इसलिये कागजी मुद्रा चलन का कुछ प्रतिशत धात्विक निधि के रूप में रखा जाता है, ताकि जनता की इच्छा पर नोटों को धातु में या धात्विक मुद्रा में बदला जा सके।

(४) चलनाधिक्य से बचाव (Safety against over issue)—कागजी मुद्रा का सबसे बड़ा दोष ही चलनाधिक्य या

मुद्रा का अनावश्यक व अत्याधिक प्रसार है। इस अत्याधिक प्रसार का समाज पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है, जैसा आगे के अध्याय में बताता गया है। इसलिये अच्छी मुद्रा पद्धति वही है जिसमें चलनाधिक्य की बिलकुल गुँजाइश ही न हो। यह तभी हो सकता है जबकि सरकारी नियन्त्रण द्वारा कुछ अनुपात धात्विक निधि अनिवार्य कर दी गई हो।

(५) सरलता (Simplicity)—कागजी मुद्रा पद्धति ऐसी हो जिसको जन साधारण समझ सके। इसका सरल होना भी एक आवश्यक गुण है।

भारत में कागजी मुद्रा का चलन (Paper currency in India)—यहाँ यह जानकर आश्चर्य होगा कि भारतीय कागजी मुद्रा कई करवटें बदल चुकी है। सर्व प्रथम यह कागजी मुद्रा प्रकाशन का कार्य बंगाल, मद्रास और बम्बई के तीनों प्रेसीडेन्सी बैंक किया करते थे। किंतु सन् १८६१ ई० में यह कार्य भारत सरकार ने अपने हाथ में ले लिया जिससे मुद्रा की लोच का अभाव हो गया। यह पद्धति दोषपूर्ण होने पर भी बहुत दिनों तक चलती रही। अन्त में सन १९२१ ई० में इन दोषों को दूर करने के हेतु यह कार्य इम्पीरियल बैंक आफ़ इन्डिया को दे दिया गया, जिसको व्यस्त काल (Busy season) में प्रमाणित देशी हुँडियों के आधार पर १२ करोड़ रूपये तक के नोट निकालने की अनुमति दी गई। इसे उत्साह-हीन प्रयास (Half hearted attempt) कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा, क्योंकि इसमें बैंक कागजी मुद्रा सम्बन्धी पूर्ण स्वतंत्रता न थी। सब कुछ यियन्त्रण सरकार के हाथ में था। सच्चा और सही प्रयास तो १९३५ ई० का है जब रिजर्व बैंक की स्थापना होने पर उसको भारतीय कागजी मुद्रा के संचालन व नियन्त्रण का पूर्ण उत्तर

दायित्त्व दे दिया गया। तबसे अब तक ५), १०) और १००) के नोट रिजर्व वैंक ही निकालता है। पहिले १०००) रूपये के नोट भी प्रेचलित थे किंतु १९४६ में ये चलन से खींच लिये गये अर्थात इनकी विधि ग्राह्यता छीन ली गई।

सन १९४२ ई० से वैंक ने आधुनिक दो रुपये वाले गुलाबी रंग के नोट भी निकालना प्रारम्भ कर दिया है। फिर युद्ध के कारण भारत सरकार ने कागजी मुद्रा प्रकाशन का कुछ कार्य अपने हाथ में लिया अर्थात जुलाई सन १९४० ई० में एक एक रुपये के अपरिवर्त्तनीय नोट भी निकाले जो अब तक चलन में हैं।

कागजी मुद्रा से लाभ

(१) कागजी मुद्रा का सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि कागज की बनी होने के कारण इसमें बहुत कम वजन में अधिक से अधिक मूल्य (Great value in small bulk) आ सकता है, जैसा हम देखते हैं कि एक साधारण से कागज के टुकड़े पर एक रुपए से लेकर अधिक से अधिक मूल्य के जैसे एक हजार रुपए तक के नोट आसानी से छापे जा सकते हैं। इससे हमको मुद्रा के लाने ले जाने; लेन देन करने तथा दूरस्थ स्थानों में भुगतान करने में बड़ी सुविधा रहती है।

(२) कागजी मुद्रा से हमको दो प्रकार की बचत होती है— प्रथम तो धात्विक मुद्रा ढलाई में होने वाला खर्चा नहीं करना पड़ता। धातु कारखाने से निकालने, उसको शुद्ध करने और फिर उसकी मुद्रायें अथवा सिक्के ढालने में काफी खर्चा करना पड़ता है। कागजी मुद्रा से इस सबकी बचत हो जाती है।

दूसरे, कागजी मुद्रा के कारण धातु मुद्रा का कम उपयोग होने से धातु की घिसावट (Wear and tear of metal) कम हो जाती है, वल्कि बिलकुल नहीं होती। यह बची हुई बहुमूल्य धातु राष्ट्र के अन्य निर्माणकारी कार्यों में लगाई जा सकती है।

(३) कागजी मुद्रा व्यापार और उद्योग में वृद्धि के साथ साथ आसानी से बढ़ाई जा सकती है, जबकि धातु मुद्रा हमारी मुद्रा के लिए आवश्यकता में बढ़ जाने पर भी नहीं बढ़ाई जासकती। क्योंकि इसका बढ़ना वो धातु की पूर्ति पर, जो केवल अधिक उत्पादन अथवा अधिक आयात पर निर्भर करती है, निर्भर करता हैं। दूसरे शब्दों लोच होती है।

(४) संकट कालीन दशा, जैसे युद्ध आदि के दिनों में जब सरकार की मुद्रा के लिये आवश्यकता अत्याधिक रूप से बढ़ जाती है और उस को ऋण मिलना भी दुश्कर होता है तो, सरकार इस विकल्प (alternative) को अपनाती है, अर्थात कागजी मुद्रा का प्रसार कर अपना काम चला सकती है।

(५) कागजी मुद्रा बड़ी सस्ती पड़ती है। इस में सिर्फ कागज और छपाई का खर्च करना पड़ता है, जो बहुत साधारण होता है। इस से सरकार को बड़ा भारी लाभ होता है जिसको जनहित के कार्यों में लगाने से जनता को भी लाभ पहुंचता है।

(६) कागजी मुद्रा का किसी देश में होना आधुनिक युग में एक सभ्यता की निशानी माना जाता है, वल्कि कागजी मुद्रा इस बात का सजीव प्रमाण है कि उस देश की जनता का सरकार में पूर्ण विश्वास है।

(७) धातु मुद्रा की अपेक्षा इस पर नियन्त्रण रखना अधिक सुगम है, क्यों कि धातु की पूर्ति तो मनुष्य के हाथ में न हो कर

प्रकृति के हाथ में है। किसी देश में धातु का उत्पादन बढ़ाना इतना आसान नहीं जितना कागज का।

कागजी मुद्रा से हानियाँ—दोष

(१) कागजी मुद्रा शीघ्र नाश हो जाने वाली है। यह आग, पानी, तेल इत्यादि से शीघ्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। मुद्रा के एक आवश्यक गुण अक्षय शीलता (Indestructibility) के अभाव होने के कारण इस को एक अच्छी मुद्रा नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि देहाती व्यक्ति नोट रखने के बजाय सिक्का रखना अधिक पसन्द करते हैं।

(२) कागजी मुद्रा में केवल बाह्य मूल्य होता है, आन्तरिक मूल्य बिलकुल नहीं। इस के चलन का क्षेत्र सीमित (केवल देश के अन्दर) होता है और वह अन्तर-राष्ट्रीय रूप ग्रहण नहीं कर सकती। यह तो पूर्णतः राष्ट्रीय मुद्रा है।

(३) कागजी मुद्रा का मूल्य सदैव अनिश्चित होता है, क्योंकि इसका मूल्य सरकार पर निर्भर करता है, जो कभी भी इस से इस के मूल्य को छीन सकती है। इसी लिये इस को धात्विक मुद्रा का सा विश्वास प्राप्त नहीं होता।

(४) कागजी मुद्रा विशेषकर इस लिये अप्रिय होती है कि इसमें हमेशा मुद्रा प्रसार अथवा चलनाधिक्य का भय बना रहता है। कागजी मुद्रा का प्रसार धातु मुद्रा से अधिक सुगम है। उदाहरण के लिये, गत युद्ध में कई देशों ने नोट इतनी अधिक मात्रा में छापे कि इस का मूल्य उस कागज के मूल्य के बराबर भी नहीं रहा जिस पर वह छापा गया था। मुद्रा प्रसार का समाज पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है, विशेषकर स्थायी

आय वाले व्यक्ति, मजदूर, मध्यम श्रेणी व निम्न श्रेणी के व्यक्ति तो चौपट हो जाते हैं। राष्ट्र का आर्थिक ढाँचा हिल उठता है। इसी कारण इस को कुछ अर्थ शास्त्रियों ने राष्ट्रों के लिये अत्यन्त भयंकर प्लेग माना है और यह कि यह समाज के लिये एक व्यक्ति की भयानक बीमारी से भी अधिक हानिप्रद बीमारी है। मुद्रा प्रसार कागजी मुद्रा का सब से बड़ा दोष है।

उपर्युक्त कागजी मुद्रा के दोषों से यह स्पष्ट है कि ये सब बुरे परिणाम सरकार की अथवा बैंक की विवेक शून्यता के कारण प्रकट होते हैं न कि इस लिये कि यह कागजी मुद्रा है। हमें सरकारी नीति का विरोध करना चाहिये न कि कागजी मुद्रा पद्धति का। कागजी मुद्रा से हम को अनेक लाभ हैं, इस का दोषारोपण करना वृथा है।

अभ्यास-प्रश्न

१—कागजी मुद्रा के भेद बतलाते हुये उस से लाभ व हानि लिखिये।

२—नोट प्रकाशन की कौन कौन सी पद्धतियां हैं? आज के युग में कौन सी पद्धति सर्व श्रेष्ट मानी जाती है और क्यों?

३—नोट प्रकाशन की भारत में कौनसी पद्धति उपयोग में लाई जाती है? इस पद्धति की विशेषतायें, लाभ व हानि लिखिये।

४—नोट प्रकाशन का कार्य करने वाली संस्थायें कौन सी हैं? किसी भी देश में नोट प्रकाशन का अधिकार अनेक बैंकों के हाथ में न होकर एक ही बैंक के हाथ में होना क्यों अधिक हितकर है?

५—एक सर्व श्रेष्ट कागजी मुद्रा पद्धति में किन बातों का होना आवश्यक है? क्या ये बातें भारतीय मुद्रा में पाई जाती हैं?

६—इन का अन्तर लिखिये :—

(१) परिवर्तनीय कागजी मुद्रा और अपरिवर्तनीय कागजी मुद्रा :

(२) बैंकिंग सिद्धान्त और करेन्सी सिद्धान्त :

(३) निश्चित असुरक्षित नोट प्रकाशन पद्धति और अनुपातिक सुरक्षित कोष पद्धति।

अध्याय ६

मुद्रा का मूल्य व उसका निर्धारण
[मुद्रा परिमाण सिद्धान्त]

मुद्रा का मूल्य (Value of money)

मुद्रा का मूल्य शब्दार्थ भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है। प्रथम तो इसका प्रयोग व्याज की दर अथवा काटे की दर (Rate of inrerest or rate of dis-count) के रूप में किया जाता है, जो कि दीर्घकालीन व अल्पकालीन ऋणों के वदले में एक पारितोषिक के रूप में दी जाती है। दूसरे, प्रयोग विनिमय दर-एक देश की मौद्रिक इकाई के वदले में दूसरे देश की मौद्रिक इकाई, के अर्थ में होता है, जिसका विस्तारपूर्वक विवेचन आगे 'विदेशी विनिमय' के अध्याय में किया गया है। तीसरे, मुद्रा के मूल्य का आशय है मुद्रा की क्रय शक्ति से, जो हमेशा परिवर्तनशील है। इस अध्याय में हमारा अभिप्राय इस तीसरे अर्थ से ही है और यहाँ इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया जायगा।

जिस प्रकार एक वस्तु के मूल्य से हम यह समझते हैं कि उस वस्तु के वदले में हमको कितनी मुद्रा अथवा कितनी अन्य कोई वस्तु मिल सकती है, उसी प्रकार मुद्रा के मूल्य से भी हमारा यही आशय है कि विनिमय में हम एक मुद्रा देकर

कितनी वस्तुओं पर अधिकार प्राप्त कर सकते हैं, अर्थात मुद्रा का मूल्य है, उसकी क्रय शक्ति—विनिमय में अन्य वस्तुओं तथा सेवाओं पर उसका प्रभुत्व। यह मुद्रा की क्रय शक्ति स्थिर नहीं रहती। आपने देखा होगा अथवा सुना होगा कि गत युद्ध से पहिले हमको एक रुपये के १२ सेर गेहूं मिल जाते थे, किन्तु आज हम एक रुपये के दो सेर गेहूँ भी नहीं खरीद सकते, इसका क्या कारण है? उत्तर स्पष्ट है कि मुद्रा का मूल्य गिर गया है अथवा उसकी क्रय शक्ति कम हो गई है। इसका यह अर्थ हुआ कि जब वस्तुओं का मूल्य बढ़ता है, मुद्रा का मूल्य घटता है और जब वस्तुओं का मूल्य घटता है, तो मुद्रा का मूल्य बढ़ता है। इन दोनों में चुम्बक के उत्तरी ध्रुव का सा विरोधी सम्बन्ध है।

मुद्रा के मूल्य का निर्धारण (Determination of the Value of money)—अन्य वस्तुओं के मूल्य की भांति मुद्रा का मूल्य भी मुद्रा की मांग और उसकी पूर्ति पर निर्भर करता है। यदि मुद्रा की मांग स्थिर रहे और उसकी पूर्ति अर्थात परिमाण (Quantity) बढ़ा दिया जाय, तो मुद्रा का मूल्य गिर जायगा, और इसके विपरीत यदि परिमाण कम कर दिया जाय तो मुद्रा का मूल्य बढ़ जायगा। ठीक इसी प्रकार यदि मुद्रा का परिमाण स्थिर रहे और मुद्रा की मांग कम हो जाय तो मुद्रा का मूल्य गिर जायगा और यदि मुद्रा की मांग बढ़ जाय तो मुद्रा का मूल्य भी बढ़ जायगा।) उदाहरण के लिये, यदि मान लिया जाय कि किसी समय हमारे पास १००० मुद्रायें हैं और इससे विनिमय की जाने वाली वस्तुयें १०० हैं तो एक वस्तु का मूल्य १० मुद्रा हुआ। अब यदि १००० मुद्रा को घटाकर ५०० कर दिया जाय तो एक वस्तु की कीमत ५ मुद्रा हो जायगी अर्थात् घट जायगी

और मुद्रा की कीमत बढ़ जायगी। किन्तु यदि १००० मुद्रा को बढ़ाकर २००० कर दिया जाय तो हम एक वस्तु के बदले में २० मुद्रा दे सकेंगे, अर्थात वस्तु की कीमत बढ़ जायगी जबकि मुद्रा की कीमत गिर जायगी। इससे यह स्पष्ट है कि मुद्रा का मूल्य मुद्रा की माँग के अनुकूल और मुद्रा की पूर्ति के प्रतिकूल बदलता रहता है। इसी से मुद्रा परिमाण सिद्धांत (Quantity theory of money) का जन्म हुआ। अब हम मुद्रा के मूल्य का स्पष्टीकरण करने के लिये मुद्रा की माँग और पूर्ति का विवेचन करेंगे।

मुद्रा की माँग (Demand for money)—मुद्रा को हम इसलिये नहीं चाहते कि वह मुद्रा है, बल्कि इसलिये कि उसमें क्रय शक्ति है, वह वस्तुओं के खरीदने का एक साधन है, उसके द्वारा वस्तुओं का क्रय विक्रय होता है। दूसरे शब्दों में हम मुद्रा की मांग इसलिये करते हैं कि विनिमय-माध्यम का कार्य करती है। मुद्रा की माँग किसी समय मुद्रा के द्वारा किये जाने वाले सब प्रकार के व्यापारिक लेन-देन की मात्रा में निहित है। उदाहरण के लिए, सब चीजें समान रहते हुये, यदि किसी देश में उत्पादन किये जाने वाले पदार्थों की संख्या बढ़ा दी जाये, तो हमें अधिक मुद्रा की आवश्यकता पड़ेगी और यदि कम कर दी जाय, तो कम मुद्रा की। संक्षेप में, मुद्रा की मांग, बाजार में मुद्रा के बदले में बेचे जाने वाली वस्तुओं द्वारा प्रदर्शित होती है। यहाँ यह स्मरण रहे कि मुद्रा की माँग पर लोगों की आदतों; बैंकिंग की सुविधाओं आदि का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

मुद्रा की पूर्ति (Supply of money)—मुद्रा की पूर्ति का आशय ...ा से है जो नित्यप्रति विनिमय माध्यम के रूप में उपयोग

में आती है। इसमें भुगतान के सब साधन, जैसे सिक्के, नोट और जमा राशि (जो कि जनता के पास होती है, न कि चैक द्वारा निकलवाई जाने वाली अथवा न निकलाई जाने वाली बैंक की निधि) सम्मिलित होते हैं। यहां दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। एक तो मुद्रा की पूर्ति में जमीन के नीचे गाड़कर रखी अथवा दबाकर रखी (Hoarded) मुद्रा शामिल नहीं होती। दूसरे मुद्रा एक दिन में कई बार हस्तान्तरित होती है, अर्थात् एक रुपया एक रुपये का ही काम नहीं करता, बल्कि यदि एक रुपया एक दिन में दस रुपये के बराबर है। जितनी बार एक मुद्रा चलन में आती है उसे मुद्रा की गति (Velocity of money) कहते हैं। इस लिये मुद्रा की कुलपूर्ति मालूम करने के लिये चलन में आने वाली मुद्रा को उसकी गति से गुणा करना आवश्यक है।

मुद्रा परिमाण सिद्धान्त (Quantity theory of money)—जॉन स्टुअर्ट मिल के शब्दों में यह सिद्धान्त इस प्रकार व्यक्त किया जाता है—'अन्य बातों के समान रहते हुये मुद्रा का मूल्य इस के परिमाण के विपरीत दिशा में जाता है या परिवर्तित होता है: इस के परिमाण की प्रत्येक वृद्धि इसके मूल्य में ठीक उसी अनुपात में गिरावट लाती है और प्रत्येक कमी इस में वृद्धि। दूसरे शब्दों में मुद्रा परिमाण को यदि दुगुना कर दिया जाय, तो मुद्रा का मूल्य आधा रह जायगा और वस्तुओं का मूल्य दुगुना। इसी प्रकार यदि मुद्रा का परिमाण आधा कर दिया जाय तो मुद्रा का मूल्य दुगुना और वस्तुओं का मूल्य आधा हो जायगा। इस का यह अर्थ हुआ कि मुद्रा के परिमाण का मुद्रा के मूल्य से विरोधी तथा वस्तुओं के मूल्य से सीधा)समानान्तर सम्बन्ध होता है। किन्तु हम पाय जायगी

जायगी

अध्याय ७

निर्देशांक
(INDEX NUMBERS)

वस्तुओं के मूल्य कभी स्थिर नहीं रहते। इनमें हमेशा परिवर्त्तन होता रहता है। इस परिवर्त्तन का ठीक ठीक आँकना असम्भव है, किंतु मूल्यस्तर में किस परिमाण में परिवर्त्तन होते हैं। इसका सामान्य अनुमान निर्देशांक से लगाया जा सकता है। इसलिये निर्देशांक क्या है, यह जानना अत्यन्त आवश्यक है।

निर्देशांक का अर्थ—निर्देशांक वह संख्या है, जो कि किसी एक विशेष समय के मूल्यस्तर को किसी पूर्व काल के मूल्य स्तर की तुलना में निर्देशित करती है। दूसरे शब्दों में निर्देशांक एक समय के मूल्यस्तर की तुलना दूसरे समय के मूल्य स्तर से तुलना करने का एक अनुपम साधन है। जब हम विभिन्न समय के मूल्यस्तर में तुलना करते हैं, तो विदित होता है कि सब वस्तुओं के मूल्य एक ही दिशा में नहीं जाते। कुछ वस्तुओं के मूल्य चढ़ते हैं, तो कुछ वस्तुओं के मूल्य गिरते हैं, और फिर जिन वस्तुओं के मूल्य चढ़ते या गिरते हैं, वे भी समान रूप से नहीं चढ़ते उतरते। किन्तु मूल्यों का सामान्य स्तर सदेव एक ही दिशा को इंगित करता है, ऊँची या नीची। निर्देशांक मूल्यों के उतार चढ़ाव की औसत दिशा मालूम करने का साधन है।

निर्देशांक बनाने की विधियाँ—मूल्य निर्देशांक बनाने की दो विधियाँ हैं: (१) सामान्य निर्देशांक (General Index number) की विधि (२) भारशील निर्देशांक (Weighted Index number) की विधि। पहिले हम सामान्य निर्देशांक मालूम करने की विधि समझायेंगे।

'An Index Number is a number which indicates the level of a certain phenomenon at any given date in comparison with the level of the same phenomenon at some standard date. [See. Statistics by Ghosh & Choudhri page 223]

सामान्य निर्देशांक बनाने की विधि—निर्देशांक तैयार करते समय हमको निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिये।

(१) आधार वर्ष—सर्व प्रथम हमको एक ऐसा वर्ष चुन लेना चाहिये, जिसमें मूल्य स्तर सामान्य स्थिति में रहा हो, अर्थात जिस वर्ष में कोई विशेष घटना, जैसे अकाल, युद्ध आदि की न घटी हो, और इनके कारण वस्तुओं के मूल्य में किसी प्रकार की ऊँच नीच न आई हो। यह वर्ष पूर्व काल में से चुना जाता है और आधार वर्ष कहलाता है।

(२) वस्तुओं का चुनाव—आज के युग में अधिक वस्तुओं का क्रय विक्रय मुद्रा द्वारा ही होता है, अर्थात मुद्रा समस्त वस्तुओं के लिये विनिमय माध्यम का कार्य करती है। अतः निर्देशांक को अधिकतम प्रतिनिधिक अंक बनाने के लिये अधिक से अधिक वस्तुओं का चुनाव आवश्यक है। किन्तु इतनी वस्तुओं का शामिल करना दुर्लभ है, इसलिये हम कुछ प्रतिनिधिक अथवा खास खास वस्तुओं को चुन लेते हैं। यहाँ हम अपनी सुविधा के लिये इन पांच वस्तुओं को चुनते हैं—गेहूँ, कपड़ा, कोयला, शक्कर और तेल।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि १९३९ की अपेक्षा १९५२ के वस्तुओं के मूल्य बढ़े गये, किसी के कम और किसी के अधिक। किन्तु इन सब को औसत निकालने से हमको एक ही अंक ३५० मिल जाता है। यह ३५० ही १९५२ का मूल्य निर्देशांक है और यह निर्देशित करता है कि जिन वस्तुओं के १९३९ में हमको १०० रुपये देने पड़ते थे, उन्हीं वस्तुओं के १९५२ में ३५० रुपये देने होंगे, अर्थात १९३९ की अपेक्षा १९५२ में मूल्य स्तर ३॥ गुणा ऊँचा चला गया अथवा मुद्रा का मूल्य एक तिहाई से भी कम होगया।

भारशील निर्देशांक बनाने की विधि—इसके पहिले कि हम भारशील निर्देशांक बनाने की विधि समझें, हमको यह जान लेना आवश्यक होगा कि भारशील निर्देशांक कहते किसे हैं

ऊपर के उदाहरण में हमने पाँच वस्तुयें चुनी और उन सब को बराबर बराबर महत्त्व दिया। किंतु इन सबको बराबर का महत्व देना अनुचित है, क्योंकि जो बराबर का महत्त्व जैसा हम देखते हैं, कि एक मनुष्य की आय का अधिकांश गेहूँ अथवा अनाज पर, उससे कम कपड़े पर, कपड़े से कम कोयले पर, कोयले से कम शक्कर पर और शक्कर से कम तेल पर खर्च किया जाता है। इसका यह अर्थ हुआ कि गेहूँ हमारे लिये सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु होने के कारण उसके मूल्य में साधारण सा परिवर्तन भी हमारे जीवन स्तर पर प्रभाव लाता है और तेल जिस पर हमें अधिक व्यय नहीं करना पड़ता, उसके

मूल्य में बड़ा परिवर्तन भी कोई विशेष प्रभाव नहीं लाता। इसलिये वस्तुस्थिति का वास्तविक रूप से पता लगाने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वस्तुओं को यह महत्त्व अथवा भार समान रूप से न दिया जाकर उसी परिमाण में दिया जाना चाहिये, जितना उपयोग में उसका महत्त्व हो। निर्देशांक बनाते समय जब प्रत्येक वस्तु को उतना ही भार प्रदान किया जाता है; जितना उसको उसके महत्त्व के अनुसार दिया जाना चाहिये, वह निर्देशांक भारशील निर्देशांक कहलाता है।

भारशील निर्देशांक बनाने के लिये हमें पहिले वाली ही बातों का अनुसरण करना पड़ता है। किन्तु प्रत्येक वस्तु का सापेक्षित भाव मालुम कर लेने के बाद उसको उसके भार से गुणा किया जाता है, और भारशील सापेक्षित भाव [Weighted price relatives] निकाल लिये जाते हैं। उनके जोड़ में भार के जोड़ का भाग देकर औसत निकाल लेते हैं। यह औसत ही भारशील निर्देशांक कहलाती है।

उदाहरण :—

मान लें कि अन्य सब बातें पूर्व उदाहरण के अनुसार ही हैं और गेहूँ, कपड़ा, कोयला, शक्कर और तेल को भार क्रमशः ५, ४, ३, २ और १ दिया जाता है। इस दशा में निर्देशांक निम्न प्रकार निकाला जायगा—

घटने बढ़ने से रोकने में समर्थ होती है। यही कारण है कि फिशर, कीन्स आदि अर्थ शास्त्रियों ने भी वस्तुओं के मूल्य स्तर को स्थिर रखने में निर्देशांक की अत्यन्त आवश्यकता प्रकट की है।

(५) दीर्घ कालीन ऋणों के भुगतान में (Redemption of long term loans) में समता (parity) लाने में निर्देशांक बड़े उपयोगी सिद्ध होते हैं क्योंकि इनके द्वारा क्रय शक्ति की ऊँच नीच मालूम हो जाती है। क्रयशक्ति के उतार चढ़ाव से ऋणदाताओं व ऋणियों, दोनों को हानि उठानी पड़ती है। इसलिए ऋण ली हुई राशि को इस प्रकार बदलते हैं कि उभय पक्ष को हानि न हो।

(६) मुद्रा प्रसार व मुद्रा संकोच का समाज के भिन्न भिन्न समुदायों पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह निर्देशांक (विशेष कर जीवनस्तर सम्बन्धी निर्देशांक) द्वारा मालूम किया जा सकता है।

निर्देशांक की आलोचना

(१) निर्देशांक से हमको मुद्रा के मूल्य में होने वाले परिवर्तन का ठीक ठीक माप नहीं मिलता। इनसे तो केवल हमको यह मालूम होता है कि वस्तुओं का मूल्य अथवा मुद्रा का मूल्य किस ओर जा रहा है। ये तो केवल दिशा को इंगित करते हैं।

(२) इनके बनाने के अलग अलग ढंग होने के कारण विभिन्न देशों के मूल्यस्तर की सही सही तुलना सम्भव नहीं होती।

(३) किसी निश्चित आधार पर बताये गये निर्देशांक किसी एक अभिप्राय के लिये ही उपयोगी हो सकते हैं, दूसरे के लिये नहीं; जैसे मध्यम वर्ग के जीवनस्तर सम्बन्धी बनाए गए निर्देशांक श्रमिक वर्ग के लिये कभी उपयोगी नहीं हो सकते।

इन सब आक्षेपों के होते हुए भी, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि निर्देशांक हमारे लिए अत्यंत उपयोगी है।

व्यवहारिक जीवन में इस बात का कोई महत्व नहीं होता कि अमुक ढंग से निकाला गया निर्देशांक इतना आता है और अमुक ढंग से उतना। यहां किसी संख्या विशेष का कोई महत्त्व नहीं होता। हमारे लिए तो वस्तुओं के मूल्य का रुख (Trend) मालूम हो जाना ही पर्याप्त है, जो निर्देशांक बतलाने में समर्थ है। रावर्टसन के अनुसार निष्कर्ष यह है कि मुद्रा के मूल्य में परिवर्तनों का ठीक ठीक माप लेना, न तो व्यवहार में ही और न शायद सिद्धान्त में ही सम्भव है। कुछ भी हो. इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुद्रा का मूल्य अवश्य परिवर्तित होता है और यदि पूरी सावधानी रखी जाये, तो व्यवहारिक कार्य के लिये उसका काफी सही माप निकाला और उपयोग में लाया जा सकता है। ‡

भारतवर्ष में निर्देशांक

वैसे तो हमारे देश में कलकत्ता, बम्बई, कानपुर आदि स्थानों पर अलग अलग निर्देशकांक निकाले जाते हैं, किन्तु आर्थिक सलाहकार के निर्देशांक, जो कि समस्त भारत के थोक मूल्यों पर आधारित होते हैं अधिक उल्लेखनीय हैं। इसमें २३ वस्तुयें चुनी जाती हैं. और १६३६ को आधार वर्ष माना जाता है। ये एक मासिक पत्रिका मे छापे जाते हैं। इसके अतिरिक्त जीवनस्तर सम्बन्धी निर्देशांक भी एक मासिक पत्रिका (Monthly Survey of Business conditions in India) में लगातार प्रकाशित होते हैं।

‡ "The Conclusion then is that neither in practice nor perhaps in theory is it possible to to measure accurately changes in the value of money. Nevertheless. there is no doubt the value of money does change, and if sufficient care is taken, measures accurate enough for some practical purpose can be found and used"

अभ्यास प्रश्न

१—निर्देशांक क्या हैं और वे किस प्रकार बनाये जाते हैं ?

२—भारशील निर्देशाँक और सामान्य निर्देशाँक में क्या भेद है ? क्या भारशील निर्देशाँक मुद्रा के मूल्य में परिवर्तनों का मापने में अधिक उपयुक्त हैं ? यदि हाँ, तो कैसे ?

३—क्या मूल्य निर्देशांक मुद्रा के मूल्य में, परिवर्तनों को सही सही माप सकते हैं ? यदि नहीं, तो उनकी क्या उपयोगिता है ?

४—किन्हीं ५ वस्तुओं को लेते हुए एक काल्पनिक निर्देशांक तैयार कीजिये।

५—निर्देशांक बनाते समय किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

अध्याय ८

मुद्रा की विनिमय शक्ति के परिवर्तन

मुद्रा के विनिमय माध्यम का कार्य करने के कारण सब वस्तुओं के मूल्य और मुद्रा के मूल्य के बीच निकटतम सम्बन्ध है। वस्तुओं के मूल्य, जो सदैव परिवर्तनशील होते हैं, अपना प्रभाव मुद्रा के मूल्य पर डाले बिना नहीं रहते। जब वस्तुओं के मूल्य चढ़ते हैं, तो मुद्रा का मूल्य गिरता है, और जब वस्तुओं के मूल्य गिरते हैं, तो मुद्रा का मूल्य चढ़ता है। मुद्रा के मूल्य का अर्थ है मुद्रा की क्रय-शक्ति अथवा उसकी विनिमय शक्ति। इससे यह स्पष्ट है कि मुद्रा की विनिमय शक्ति में भी परिवर्तन होते रहते हैं। अब हम मुद्रा के मूल्य में होने वाले परिवर्तनों, उनके कारणों तथा उनके होने वाले समाज के विभिन्न वर्गों पर प्रभावों के बारे में विचार करेंगे।

मूल्य वृद्धि (Appreciation)—जब मुद्रा की क्रय शक्ति बढ़ती है। अर्थात, जब हमको एक रुपये के बदले में पहिले की अपेक्षा अधिक वस्तुयें मिलने लगती हैं तो यह मुद्रा की मूल्य वृद्धि (Appreciation in the value of money) कहलाती है। मुद्रा की मूल्य वृद्धि के समय वस्तुओं का मूल्य घट जाता है।

मूल्यह्रास (Depreciation)—जब मुद्रा की क्रय-शक्ति घटती है, अर्थात, जब हमको एक रुपये के बदले में पहिले की अपेक्षा कम वस्तुयें मिलने लगती हैं, तो यह मुद्रा का मूल्य ह्रास

(Depreciatiers in the value of money) कहलाता है। मुद्रा के मूल्य ह्रास के समय वस्तुओं का मूल्य बढ़ जाता है।

मुद्रा प्रसार (Inflation)

मुद्रा प्रसारका अर्थ (Meaning)—मुद्रा प्रसार का अर्थ है मुद्रा का बढ़ाना। जब समाज की आवश्यकताओं से अधिक मुद्रा चलन में लाई जाती है, तो मुद्रा प्रसार कहलाता है। उदाहरणार्थ मानलें कि हमारे देश के उत्पादन और क्रय-विक्रय को देखते हुए १०० करोड़ रुपये की आवश्यकता है और यदि सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक १०० करोड़ रुपये से अधिक की मुद्रा चलन में लाती है, तो यह मुद्राप्रसार कहलायेगा। दूसरे शब्दों में मुद्रा की पूर्ति का मुद्रा की माँग की अपेक्षा बढ़ा देने का नाम ही मुद्रा प्रसार है। कभी कभी यह मुद्रा प्रसार इतना अधिक कर दिया जाता है, कि मुद्रा का मूल्य जिस कागज पर वह छापी जाती है उसके मूल्य के बराबर भी नहीं रहता। इस दशा में यह अत्याधिक मुद्रा प्रसार (Hyper inflation) कहलाता है। अत्यधिक मुद्रा प्रसार के उदाहरण आस्ट्रिया, चीन और रूस के मुद्रा इतिहास में बहुतायत से मिलते हैं। चीन के लिये यह बात प्रसिद्ध है कि वहाँ मुद्राप्रसार इतना अधिक हुआ कि होटल में एक समय भोजन करने के लिये नोटों का एक थैला भर कर ले जाना पड़ता था।

मुद्रा प्रसार के कारण (Causes of Inflation)—मुद्रा प्रसार के कारण दो भागों में बाँटे जा सकते हैं: (१) प्राकृतिक, (२) बनावटी।

प्राकृतिक (Natural)—कभी कभी मुद्रा प्रसार प्राकृतिक कारणों, से जैसे सोने चाँदी की खानों से अचानक उत्पादन बढ़

जाने, नई खानों के मिल जाने तथा बहुमूल्य धातुओं के अत्यधिक मात्रा में आयात होने से होता है। जैसा १८९६ से १९११ [illegible] अफ्रीका में स्वर्ण की नई खानों के खोज के

बनावटी (Artificial)—आधुनिक युग में जबकि कागजी मुद्रा का बाहुल्य है मुद्रा प्रसार के लिये प्राकृतिक कारणों की अपेक्षा बनावटी कारण अधिक उत्तरदायी हैं। बनावटी कारण निम्नलिखित है—

(१) युद्ध आदि के समय जब सरकार को काफी रुपये की आवश्यकता होती है और यह रुपया उधार अथवा कर द्वारा मिलना कठिन होता है, ऐसे समय सरकार अपने आय-व्यय पत्रक (Budget) को सन्तुलित (Balance) करने के लिये सामाजिक आवश्यकताओं से अधिक मुद्रा चलन में लाती है।

(२) आर्थिक गिरावट (Economic Depression) के समय लगातार गिरते हुये मूल्यों के भयंकर परिणामों से बचने के लिये भी मुद्रा प्रसार किया जाता है, जैसे अमरीका में।

(३) शान्ति काल में भी सरकार अपनी लोक प्रियता को बनाये रखने के लिये नये कर न लगा कर अपनी आवश्यकतायें मुद्रा का प्रसार द्वारा पूरी कर लेती है।

(४) मुद्रा की मात्रा पूर्ववत रहते हुये, जब वस्तुओं का उत्पादन कम हो जाता है, उस समय भी मुद्रा प्रसार हो जाता है, क्योंकि कम वस्तुओं के लिये अधिक मुद्रा विनियोग के लिये होने से वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाते हैं।

(५) कभी कभी मुद्रा प्रसार ऋण दाताओं के विपरीत ऋणियों को अथवा आयात कर्त्ताओं के विपरीत निर्यात कर्त्ताओं को लाभ पहुँचाने के लिये किया जाता है।

मुद्रा प्रसार के प्रभाव (Effects of inflation)

मुद्रा प्रसार का सब से बड़ा और शीघ्रगामी प्रभाव वस्तुओं के मूल्य पर पड़ता है। मुद्रा प्रसार से वस्तुओं के मूल्य शीघ्र ऊँचे चले जाते हैं अथवा यों कहना चाहिये मुद्रा की क्रय शक्ति शीघ्र गिर जाती है। उदाहरण के लिये, १९३९ में जब चलित नोट (Notes in circulation) १७२ करोड़ के थे, तो गेहूँ का भाव १) रुपये का १० सेर था किन्तु १९५२ में जब चलित नोट बढ़ा कर १०७८ करोड़ कर दिये गये, तो गेहूँ का भाव १) रुपये का केवल २ सेर रह गया। इस से स्पष्ट है कि जैसे ही मुद्रा की संख्या बढ़ा कर लगभग ६ गुनी अधिक कर दी गई, एक रुपये की क्रय शक्ति भी लगभग ३ आने के बराबर रह गई। चूँकि समाज व्यक्तियों के भिन्न भिन्न वर्गों से बना है, उन में से किसी भी दो वर्गों में मूल्य परिवर्तन का एक सा प्रभाव नहीं पड़ता। इस लिये हम मूल्य परिवर्त्तन से होने वाले प्रभावों का भिन्न भिन्न वर्गों के अनुसार विचार करेंगे।

जिन को मुद्रा प्रसार से लाभ होता है

(१) कृषकगण—कृषक लोगों को मुद्रा प्रसार से लाभ होता है क्योंकि कृषि प्रधान वस्तुओं के मूल्य अन्य वस्तुओं की अपेक्षा अधिक बढ़ते हैं। इन वस्तुओं की पूर्ति का समायोजन (Adjustment) इनकी माँग के अनुसार करना अधिक कठिन होता है, अर्थात, कृषि प्रधान वस्तुओं की मात्रा अन्य औद्योगिक वस्तुओं की भाँति नहीं बढ़ाई जा सकती।

मुद्रा प्रसार के समय किसान मालामाल हो जाते हैं, उनका ऋण सब चुक जाता है और उनका जीवन स्तर (Standard of living) भी बढ़ जाता है। किन्तु चढ़े हुए मूल्यों के कारण उनका जीवन यापन और औजार आदि का खर्च तथा कभी कभी लगान भी बढ़ जाता है।

(२) उद्योगपति—उद्योगपतियों के लिये तो एक प्रकार से लाभों की बाढ़ सी आ जाती है। बढ़ते हुए मूल्यों के कारण उनके लाभ दिन दुगुने और रात चौगुने हो जाते हैं। वे अधिक से अधिक उत्पादन की कोशिश करते हैं और नये नये उद्योग और कारखाने खोलने को प्रोत्साहित होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति शीघ्र लखपती बनने का अवसर देख अधिक से अधिक पूँजी उद्योग-धन्धों में लगाने का प्रयत्न करता है, जिससे देश में औद्योगिक उन्नति की लहर सी दौड़ने लगती है।

(३) व्यापारी—मुद्रा प्रसार से सबसे अधिक लाभ व्यापारियों को पहुँचता है, क्योंकि वस्तुओं के मूल्य ऊँचे चले जाने से पड़े माल के दुगुने और तिगुने हो जाते हैं। यही नहीं बल्कि जो माल साधारण दिनों में बेकार (Dead Stock) होने के कारण नहीं बिक पाता, उसके भी इस समय अच्छे पैसे खड़े हो जाते हैं। हम को जयपुर का एक ऐसा उदाहरण मालूम है, जिसमें खरड (Immitation) की छीलन की कई बोरियाँ जिनको पहिले बेकार समझ कर गड़वा दिया गया था, युद्ध के दिनों में निकलवा कर बेचने से लाखों रुपया प्राप्त हो गये। इस प्रकार मुद्रा प्रसार के कारण व्यापारियों को हवा के झोंके से लाभ (Wind fall profits) मिल जाते हैं।

(४) साधारण तथा विलंबित अंश-पत्र धारक (Ordinary and Deferred Share Holders)—वे व्यक्ति जिनके पास

मुद्रा संकुचन के कारण (Causes of Deflation)—मुद्रा संकुचन के कारण भी, मुद्रा प्रसार की भाँति, प्राकृतिक और बनावटी दोनों हो सकते हैं। प्राकृतिक कारणों में बहुमूल्य धातुओं का उत्पादन कम हो जाना अथवा उसका पहिले की अपेक्षा आयात कम होना है। बनावटी कारणों में सरकार के द्वारा चलित मुद्रा का जान बूझ कर कम कर देना तथा उत्पादन का अत्यधिक बढ़ जाना आते हैं।

मुद्रा संकुचन के प्रभाव (Effects of Deflation)—मुद्रा संकुचन का मुद्रा प्रसार से उलटा प्रभाव पड़ता है। मुद्राप्रसार में वस्तुओं के मूल्य बढ़ते हैं, जबकि मुद्रा संकुचन में वे गिर जाते हैं। मुद्रा संकुचन से मुद्रा की क्रय शक्ति बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ अक्टूबर १९५१ में जब चलित नोटों की संख्या ११२३ करोड़ थी, मूल्य निर्देशांक ४३९ था और अक्टूबर १९५२ में जब नोटों की संख्या १०७२ करोड़ रह गई मूल्य निर्देशांक भी ४३९ से ३९९ रह गया। इससे स्पष्ट है। कि मुद्रा संकुचन का भी मूल्यों पर मुद्रा प्रसार की भाँति शीघ्र प्रभाव पड़ता है। जब चलित मुद्रा की संख्या नीची चली जाती है, वस्तुओं के मूल्य भी नीचे चले आते हैं। अब हम यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि मुद्रा संकुचन का समाज के भिन्न भिन्न वर्गों पर क्या प्रभाव पड़ता है।

जो मुद्रा संकुचन से सुखी होते हैं

(१) वेतन भोगी व्यक्ति—सरकारी तथा अन्य कर्मचारियों को मुद्रा संकुचन के समय बड़ा लाभ होता है, क्योंकि उनकी आय तो ज्यों की त्यों रहती है, जबकि वस्तुओं के मूल्य नीचे चले

जाने के कारण उनको बहुत कम खर्च करना पड़ता है। सीमित व संकुचित भाग होने पर भी वे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं और उनको जीवन कभी अखरता नहीं। किन्तु कभी कभी छटनी (Retrenchment) के कारण कई व्यक्ति अपनी रोजी खो बैठते हैं, जो दुःख का कारण बन जाती है।

(२) मजदूर वर्ग—मजदूरों को पहिले की अपेक्षा वेतन तो कम मिलने लगते हैं, किन्तु चीजों की सस्ताई के कारण उनको यह अनुभव नहीं होता और वे अपने आप को सुखी ही पाते हैं। हाँ यह अवश्य है कि अधिक मन्दी आने पर उद्योग धन्धे नष्ट हो जाने से इनको भी अपने रोजगार से हाथ धोने पड़ते हैं, जो सदैव घातक होता है।

(३) भूमिपति—भूमिपतियों का लगान पूर्ववत रहता है जबकि खर्च बहुत कम हो जाता है। इसलिये वे लोग भी इस सुख समय चैन का अनुभव करते हैं।

(४) पूर्वाधिकार अंश पत्र धारक तथा ऋण पत्र धारक (Pre. share holders and Debenture holders) —इन लोगों का लाभांश अथवा ब्याज निश्चित रहता है, किंतु उसकी क्रय शक्ति बढ़ जाने से इनको लाभ होता है। यदि ये अंश पत्र धारक संचित पूर्वाधिकार अंश पत्र धारक (Cumulative preference share holders) हुये, तब तो ठीक है नहीं तो यह निश्चित लाभ भी कभी कभी नहीं मिलता।

अन्य—

(१) ऋणदाता—इन लोगों को इस समय लाभ होता है, क्योंकि उनके ऋण देते समय मुद्रा की क्रय शक्ति कम थी और अब अधिक।

(२) मुद्रा संकोच से सच्चे सुख का अनुभव तो उपभोक्ता ही करते हैं क्योंकि थोड़े से रुपयों में ढेर सारी चीजें मिलती हैं। वस्तु नियन्त्रण तथा मूल्य नियन्त्रण का नाम नहीं होता। एक रुपये की चीजें माँगो तो दुकानदार दो रुपये की देने को तयार रहता है, बल्कि नकदी न होने पर उधार देने से भी नहीं झिझकता। बाजार में जिधर जाओ क्या चाहिये साहब क्या चाहिये की आवाज पड़ती है। उपभोक्ता गर्व का अनुभव करता है। जिस किसी से सामान खरीदा जाय, वह अपने आप को धन्य मानता है। सच्चे अर्थ में रामराज्य के दर्शन होते हैं।

जो मुद्रा संकुचन के कारण दुखी होते हैं—

कृषकगण—किसानों की दशा बड़ी शोचनीय हो जाती है, क्योंकि अन्य वस्तुओं की अपेक्षा कृषि-प्रधान वस्तुओं के मूल्य अधिक गिरते हैं। जो कुछ पैदा करते हैं उससे इतना रुपया नहीं मिलता जिससे सुख पूर्वक जीवन बिता सकें। दूसरी ओर, उनका लगान उतना ही रहता है। जमींदार पैदा हो या न हो, जैसे तैसे अपना लगान वसूल करने में लगा रहता है। परिणाम यह होता है कि उसको गाँव के महाजन के चंगुल में फंस जाना पड़ता जो उसके लिये बड़ा दुखदायी सिद्ध होता है।

(२) उद्योगपति—मुद्रा संकोच के समय भयंकर मन्दी आ जाती है जिससे उद्योग धन्धे नष्ट हो जाते हैं, व्यापार कुंठित हो जाता है और उत्पादन अत्यधिक गिर जाता है। उद्योगपतियों के लाभ कम हो जाने से उनको व्यापार से अरुचि हो जाती है और वे अपने उद्योग-धन्धे बन्द कर देते हैं। देश में बेकारी के बादल छा जाते हैं।

(३) व्यापारी - व्यापारियों के लिए तो मुद्रा संकोच शनिश्चर बनकर आता है। सुबह से शाम तक दुकान पर बैठे और एक पैसे का व्यापार नहीं। बेचारे लाख मिन्नत करते हैं फिर भी कोई सामान नहीं खरीदता। कोई करे भी तो क्या पैसा ही नहीं। व्यापारी सोचते सोचते हैरान हो जाता है कि दुनिया का सारा पैसा कहाँ खिंच गया, कैसे खिंच गया, देखते देखते यह दशा कैसे हो गई।

(४) साधारण तथा विलंबित अंशपत्र धारक (Ordinary and deferred shareholders) - मुद्रा संकोच के समय ऐसे व्यक्ति जिनके पास साधारण तथा विलंबित अंशपत्र होते हैं बड़े नुकसान में रहते हैं, क्योंकि इस समय तो कम्पनियों के लाभ कि इन व्यक्तियों को तो कुछ लाभांश देना दूर रहा पूर्वाधिकार अंशपत्र धारकों को ही कुछ नहीं मिल पाता। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के अंशों (Shares) की कीमत भी नीचे चली जाती है जिससे भी इनको हानि होती है।

(५) ऋणी (Debtors)—ऋणियों को भी इस समय हानि होती है क्योंकि जिस समय उन्होंने ऋण लिया था, उस समय मुद्रा की क्रय-शक्ति बहुत कम थी, जबकि अब बढ़ी हुई होती है।

(६) सरकार—मुद्रा संकोच के समय भारी मन्दी के कारण सरकार की आय गिर जाती है। बेकारी जिसके कारण चारों तरफ त्राहि-त्राहि मची होती है, सरकार के लिए एक सरदर्द (Headache) बन जाती है। सरकार बेकारी को मिटाने के लिये पूरा पूरा प्रयत्न करती है, किन्तु सब निष्फल। इससे सरकारी बोझा बढ़ जाता है, जिससे इसके आय व्यय का सन्तुलन बिगड़ जाता है।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि जहाँ तक वर्ग विशेष का प्रश्न है: वड़ी विचित्र समस्या है। जो व्यक्ति पहली दशा (मुद्रा प्रसार) में सुखी हैं वे दूसरी में नहीं। यह तो उस व्यक्ति की सी बात हुई, जिसकी एक लड़की माली के यहां व्याही गई थी और जो यह चाहती थी कि खूब वर्षा हो, धूप न हो और दूसरी एक कुम्हार के यहाँ जो यह चाहती थी कि खूब धूप हो वर्षा न हो। इसलिये न केवल इस दृष्टि से वल्कि सारे समाज की दृष्टि से भी न मुद्रा प्रसार ही अच्छा कहा जा सकता है और न मुद्रा संकुचन ही। मुद्रा प्रसार में पैसा है तो चीज नहीं, और चलन उतना ही होना चाहिये जितना समाज के लिये आवश्यक हो।

किन्तु यदि गहराई से देखा जाय, तो विदित होगा कि मुद्रा प्रसार की अपेक्षा मुद्रा संकुचन अधिक हानिकारक है। मानाकि मुद्रा प्रासर में मंहगाई होती है, किन्तु वेरोजगारी तो नहीं, जो मुद्रा संकुचन का सवसे वड़ा अभिशाप है। वह सस्ताई किस मतलव की जहां पैसा ही न हो। कौड़ी के वदले हाथी जाता है लेकिन पैसा होगा वही खरीदेगा। इसलिये मुद्रा प्रसार की वुराइयों के होते हुये भी, उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए तथा समाज को वेकारी के भूत से दूर करने के लिये मुद्रा प्रसार आवश्यक समझा जाता है। किंतु यह मुद्रा प्रसार सीमित मात्रा में होना चाहिये। भारी मात्रा (Heavy dose) होने पर यही घातक वन वैठता है।

मुद्रा प्रसार-संकुचन सुधार

वढ़ते हुए अथवा गिरते हुये मूल्यों को सामान्य स्तर पर लाने के लिये जो मुद्रा संकोच अथवा मुद्रा प्रसार किया जाता है

उसको मुद्राप्रसार-संकुचन सुधार कहते हैं। दूसरे शब्दों में मुद्रा सार को रोकने के लिये मुद्रासंकुचन करना अथवा मुद्रासंकुचन को रोकने के लिये मुद्रा प्रसार करना, मुद्राप्रसार-संकुचन सुधार कहलाता है। मूल्यों की स्थिरता बनाये रखने के लिये, यह एक आवश्यक कार्य है।

अभ्यास प्रश्न

१—मुद्रा प्रसार व मुद्रा संकोच का समाज के विभिन्न अंगों पर क्या प्रभाव पड़ता है?

२—मुद्रा प्रसार पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये?

३—मुद्रा प्रसार व मुद्रा संकोच में क्या भेद है? दोनों में किसका अधिक बुरा प्रभाव पड़ता है और क्यों?

४—मुद्रा की विनिमय शक्ति के परिवर्तन से क्या समझते हो? विस्तार पूर्वक लिखिये।

अध्याय ९

ग्रेशम का सिद्धान्त (Gresham's Law)

यह मानव मनोवृत्ति है कि वह सदैव अपने सुख तथा शान्ति की तृप्ति के लिये अच्छी से अच्छी वस्तु प्राप्त करना चाहता है, चाहे वह सुख क्षणिक व काल्पनिक ही क्यों न हो। यह बात मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चरितार्थ होती है। मुद्रा भी मानव की इस प्रवृत्ति का शिकार बने बिना नहीं रहती। इसका प्रभाव मुद्रा पर अवश्य पड़ता है। हम देखते हैं कि बाजार में खरी, खोटी, नई, पुरानी चाँदी की व कागज की सभी प्रकार की मुद्रायें चलन में हैं; परन्तु प्रत्येक मनुष्य की यह मनोभावना होती है कि वह लेते समय अच्छी मुद्रा ले और देते समय खराब मुद्रा दे। यह भावना तब और भी बलवती हो जाती है, जबकि मनुष्य मुद्रा का केवल विनिमय माध्यम के रूप में ही प्रयोग नहीं करना चाहता, बल्कि इसका संग्रह भी करना चाहता है। स्वाभाविक ही है कि वह संग्रह के लिये हमेशा कागजी मुद्रा की अपेक्षा धातु मुद्रा और धातु मुद्रा में भी वह मुद्रा जो नई हो, अच्छी हो तथा अन्य धातु मुद्राओं की अपेक्षा अधिक मूल्यवान हो लेना चाहेगा। इस प्रकार अच्छी मुद्रा चलन से बाहर निकाल ली जाती है और चलन में केवल खराब मुद्रा बच रहती है।

इस बात की ओर सर्व प्रथम ध्यान आकर्षित करने वाले इंगलैंड के प्रसिद्ध व्यापारी, सर थामस ग्रेशम थे। इंगलैंड की

महारानी एलिजावेथ के शासन काल में सिक्के चलते चलते बहुत अधिक घिस गये थे और जब कभी नये सिक्के चलन में लाये जाते, वे शीघ्र चलन से बाहर निकल जाते थे और चलन में केवल पुराने व घिसे हुए सिक्के बच रह जाते थे। इसलिये महारानी ने सर ग्रेशम को बुला कर इसके बारे में राय देने को कहा। उन्होंने बताया कि खराब मुद्रा अच्छी मुद्रा को सदैव चलन से बाहर कर देती है। इसलिये पहिले समस्त पुराने व घिसे हुए सिक्के चलन से खींच लेने चाहिये और फिर उनके स्थान पर नये सिक्के चलन में लाना चाहिए। चूंकि यह बात कि खराब मुद्रा में अच्छी मुद्रा को चलन से बाहर निकाल देने की प्रवृत्ति होती है, पहले पहल ग्रेशम ने मालूम की थी। ग्रेशम का यह के सिद्धान्त Greshams Law के नाम से प्रसिद्ध है। इसी बात को प्रो० मार्शल ने इस प्रकार व्यक्त की है, "खराब मुद्रायें यदि परिमाण में सीमित नहीं हैं, तो अच्छी मुद्राओं को चलन से बाहर निकाल देंगी।"

उक्त नियम लागू होने के निम्नलिखित तीन कारण हैं:—

(१) संग्रह करना (Hoarding)।

(२) धातु मुद्रा का गलाकर बेचना।

(३) विदेशी भुगतान के लिये निर्यात करना।

नियम लागू होने की परिस्थितियां

(१) एक धातुमान के अन्तर्गत—एक धातु मान में जब पुराने व घिसे हुये सिक्के, जो कुछ कम तौल के होते हैं, नये सिक्कों के साथ, जो तौल में कुछ ही अधिक होते हैं, एक ही मूल्य पर चलते हैं, तो पुराने व घिसे हुये सिक्के नये सिक्कों को चलन से बाहर निकाल देते हैं। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जो मुद्रा को उपर्युक्त

तौल चीजों के लिये उपयोग में लाना चाहता है। नई मुद्रा जो तौल में अधिक है उसी को काम में लेगा। जैसा हम ऊपर पढ़ आये हैं एलिजाबेथ के समय में जब कभी नये सिक्के चलन में लाये गये, वे शीघ्र पुराने सिक्कों द्वारा चलन से बाहर धकेल दिये गए और चलन में केवल पुराने सिक्के ही रह गये।

1. Bad money tends to drive good money out of circulation.

An inferior currency. if not limited in quantity, will drive out the superior currency out of circulation.

(२) द्वि धातुमान के अन्तर्गत—द्वि धातुमान में दो धातुओं मुख्यतया चाँदी और सोने की प्रमाणिक मुद्रायें एक निधि व टकसाली अनुपात (Mint ratio) पर चलती हैं। जब तक टकसाली अनुपात और बाजारू अनुपात (Market Ratio) समान रहता है, कोई कठिनाई नहीं होती। किन्तु बाजारू अनुपात बदलते ही ग्रेशम का नियम लागू होने लगता है। जो मुद्रा बाजार में धातु के भाव चढ़ जाने के कारण अधिक मूल्यवान हो जाती है किन्तु टकसाल में उसी मूल्य पर मिलती है, चलन से खिंच जाती है। लोग इस को गला कर बेचना प्रारम्भ कर देते हैं, जिस से खूब लाभ होता है। इस प्रकार बाजार में अथवा चलन में केवल कम मूल्यवान धातु वाली मुद्रा ही रह जायगी। अमरीका और फ्रांस में १६ वीं शताब्दी में, जब वहां द्वि धातुमान का चलन था यही कठिनाई सामने आई और इस ग्रेशम के नियम लागू होने के कारण ही न केवल वहाँ ही से बल्कि समस्त देशों से द्वि धातुमान का लोप हो गया।

(३) कागजी मुद्रा के अन्तर्गत—यदि किसी देश में धातु मुद्रा के साथ साथ कागजी मुद्रा का चलन है, तो धातु मुद्रा में आन्तरिक मूल्य होने के कारण वह चलन से बाहर चली जायगी और चलन में केवल कागजी मुद्रा जिस में सिर्फ बाह्य मूल्य ही है रह जायगी। इस प्रकार के उदाहरण प्रथम महा युद्ध के समय योरोपियन देशों में, जहाँ कागजी मुद्रा का मूल्य मुद्रा प्रसार के कारण बहुत गिर गया था, देखने में आते हैं।

नियम के अपवाद

(१) जब चलन में केवल इतनी ही मुद्रा हो, जितनी सामाजिक परिस्थितियाँ माँग करती हों, तो यह नियम लागू नहीं होगा। मान लीजिये हमारी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये १०० करोड़ रुपये की आवश्यकता है और यदि चलन में भी केवल १०० करोड़ रुपये की ही मुद्रा है, तो ग्रेशम का नियम लागू नहीं हो सकेगा। क्योंकि इस दशा में सभी सिक्के चाहे वे अच्छे हों अथवा बुरे, चलन के लिये आवश्यक होंगे।

(२) यदि जनता खराब मुद्रा लेने से इनकार ही कर दे, जैसा अमरीका में १९ वीं शताब्दी में किया गया था, तो यह नियम लागू नहीं हो पायेगा।

(३) यदि मुद्रा का ह्रास इतनी धीमी गति से किया जाता है कि लोग जान ही नहीं पायें, तो ग्रेशम का नियम लागू नहीं होगा, जब तक कि वह एक सीमा से अधिक न किया गया हो।

(४) यदि द्वि धातुमान को एक अन्तराष्ट्रीय मान का रूप दे दिया जाय और सब राष्ट्र टकसाली अनुपात एक ही रखें तो नियम लागू न होगा।

अभ्यास-प्रश्न

१—ग्रेशम का सिद्धांत क्या है और यह किस प्रकार लागू होता है ?

२—'खराब मुद्रा अच्छी मुद्रा को चलन से बाहर कर देती है' इस वक्तव्य को पूरी तरह समझाइये। क्या यह हमेशा सत्य होता है ?

३—ग्रेशम के सिद्धांत को समझाइये और इसके अपवाद को भी बतलाइये।

४—ग्रेशम के सिद्धांत पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

अध्याय १०

मुद्रा मान

(मान की समस्या)

गत अध्याय में यह तो स्पष्ट हो ही गया होगा कि समाज की सुख शांति के लिये मुद्रा के मूल्य की स्थिरता बनाये रखना कितना आवश्यक है। यह स्थिरता तभी रह सकती है जब हम किसी उपयुक्त मुद्रा मान को अपनायें और मुद्रा की माँग तथा उसकी पूर्ति के बीच समायोजन बनाये रखें। मान से हमारा आशय उस वस्तु से है जिसके द्वारा तुलना की जा सके। वस्तुओं की लम्बाई की तुलना गज या फुट के द्वारा की जाती है इसलिये लम्बाई के लिये गज या फुट ही उसका मान हुआ। ठीक इसी प्रकार मुद्रा की तुलना उसमें निहित धातु से की जाये के कारण वह धातु ही मुद्रा का मान कहलायेगी। यदि मुद्रा स्वर्ण की बनी हुई है तो मुद्रा का मान स्वर्ण और यदि चाँदी की बनी हुई तो चाँदी होगी। प्रथम दशा में वह मान स्वर्ण मान (Gold Standard) तथा द्वितीय दशा में रौप्यमान (Silver standard) कहलायेगा। अब हम संसार के विभिन्न मुद्रा मानों का अध्ययन करेंगे।

मुद्रा मान
(Monetary Standards)
धात्विक मान
(Metallic Standard)
कागजी मान
(Paper Standard)
एक धातुमान
(Monometallism)
द्विधातु मान
(Bimetallism)
विनिमय मान
(Exchange Standard)
स्वर्ण मुद्रा मान
(Gold Currency Standard)
स्वर्ण धातु मान
(Gold Bullion Standard)
स्वर्ण विनिमय मान
(Gold Exchange Standard)
पूर्ण द्विधातु मान
(Pure Bimetallism)
अपूर्ण द्विधातु मान
(Limping Standard)
मिश्रित द्विधातु मान
(Symmetalism)
डालर विनिमय मान
(Dollar Exchange Standard)
स्टर्लिंग विनिमय मान
(Sterling Exchange Standard)

धात्विक मान (Metallic standard).—मुद्रा के धातु की बने होने पर धातु की [illegible] मान बन जाती है। इसलिये इस मान को धात्विक मान कह कर पुकारा जाता है। धात्विक मान के अन्तर्गत एक धातु मान, द्विधातु मान और विभिन्न धातु मान आते हैं। अब हम इनमें से प्रत्येक का अलग विवेचन करेंगे।

एक धातु मान (Monometallism)

एक धातु मान वह पद्धति है, जिसके अनुसार देश की प्रामाणिक मुद्रा किसी एक बहुमूल्य धातु (सोना या चाँदी) की बनी होती है। इसके अतिरिक्त अन्य और भी मुद्रायें, जो किसी हल्की धातु की अथवा कागज की बनी होती हैं, प्रतीक मुद्रा के रूप में चलन में रह सकती हैं। किन्तु इन सबका सम्बन्ध उस प्रामाणिक मुद्रा से ही रहता है, जो असीमित विधिग्राह्य होती है और जिसकी ढलाई भी वे रोक टोक (स्वतंत्र) होती है। जनता जब कभी चाहे इस प्रतीक मुद्रा के बदले में प्रामाणिक मुद्रा अथवा समान मूल्य का सोना या चाँदी ले सकती है। यह हम पहिले ही कह आये हैं कि जब प्रामाणिक मुद्रा स्वर्ण की होती है। तो वह स्वर्ण मान (Gold standard) और चाँदी की होती है, तो वह रौप्य मान (Silver standrd) कहलाता है। सिद्धांत रूप से दोनों में कोई अन्तर नहीं होता, एक को समझ लेने से दूसरा स्वयमेव समझ में आ जायगा। इसलिये हम यहाँ स्वर्ण मान पर ही विचार करेंगे।

स्वर्णमान (Gold Standard).

स्वर्णमान का आशय उस मुद्रा पद्धति से है, जिसमें मुद्रा या तो सोने की हो या सोने में परिवर्तनीय। स्वर्ण मुद्रा का चलन में होना आवश्यक नहीं है, किन्तु जो भी मुद्रा चलन में हो उसका स्वर्ण की

एक निश्चित मात्रा में परिवर्तित किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। मूल्यमापन का कार्य स्वर्ण ही करता है, अर्थात सब वस्तुओं व सेवाओं का मूल्य, ऋणों का भुगतान आदि सब स्वर्ण में ही व्यक्त किये जाते हैं। स्वर्णमान के विभिन्न रूप इस प्रकार हैं:—

१—स्वर्ण मुद्रा मान (Gold Currency Standard

२—स्वर्ण धातुमान (Gold Bullion Standard),

३—स्वर्ण विनिमय मान (Gold Exchange Standard)

स्वर्ण मुद्रा मान

स्वर्ण मान सर्व प्रथम स्वर्ण मुद्रा मान के रूप में ही प्रयोग में आया था। इसलिये इसको स्वर्ण मान का श्रीगणेश कहना अनुपयुक्त न होगा। इस मान की विशेषतायें इस प्रकार हैं:—

(१) स्वर्ण मुद्रा चलन में रहती है और यही मूल्य मापन और विनिमय माध्यम के रूप में प्रयोग में आती है।

(२) स्वर्ण मुद्रा ही देश की प्रामाणिक मुद्रा होती है, इसलिये यह असीमित विधि ग्राह्य होने के साथ साथ स्वतन्त्र रूप से ढाली जाती है। कोई भी व्यक्ति, कितनी भी मात्रा में टकसाल में सोना ले जाकर उसके बदले में मुद्रा प्राप्त कर सकता है। इस मुद्रा का वाह्य मूल्य और आन्तरिक मूल्य समान होता है।

(३) व्यापार की सुविधा के लिये तथा विनियोग में योग देने के लिये, प्रतीक मुद्राओं का जो कागज की या किसी हल्की धातु की बनी होती हैं, चलन होता है। किन्तु इस मुद्रा के बदलने में स्वर्ण या स्वर्ण मुद्रा देने को सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक बाध्य होता

है, अर्थात इस मुद्रा की परिवर्तन शीलता सुरक्षित (Guaranteed) होती है।

(४) स्वर्ण का आयात व निर्यात बिना रोक टोक होता है। सरकार स्वर्ण के आयात निर्यात पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाती।

स्वर्ण मुद्रामान अति प्राचीन है। इसका विस्तारपूर्वक उल्लेख अगले अध्याय में किया गया है। इसका प्रचलन १९१४ ई० के पूर्व इंगलैंड, अमरीका, फ्रांस आदि देशों में था। किन्तु १९१४ ई० में प्रथम महायुद्ध के छिड़ जाने पर इसका परित्याग करना पड़ा।

लाभ—

(१) मुद्रा की स्वर्ण में अथवा स्वर्ण मुद्रा में पूर्णतः परिवर्तन शीलता के कारण जनता का सरकार में अटूट विश्वास होता है।

(२) स्वर्ण एक सर्वप्रिय वस्तु होने से स्वर्ण मुद्रा के विधि ग्राह्य न होने पर भी लेन-देन में कोई रुकावट नहीं पड़ती। देश में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी लोग इसे सहर्ष लेने को तत्पर रहते हैं।

(३) स्वर्ण मुद्रामान में मुद्रा प्रसार का भय नहीं रहता, क्योंकि मुद्रा तभी बढ़ाई जा सकती है, जब स्वर्ण की निधि बढ़ाने के लिये स्वर्ण हो। इसलिये मूल्यों को स्थिरता बनी रहना स्वाभाविक है।

(४) स्वर्ण का खुला आयात निर्यात होने से इस मान में स्वयं पूर्ण कार्यशीलता (Atomatic working) बनी रहती है, और देशों के बीच पारस्परिक भुगतान में समायोजन हो जाता है। उदाहरणार्थ, क और ख दो देश हैं। क देश में ख देश से

निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक होता है। इस दशा में क देश में ख देश को सोना जाने से, क देश में मुद्रा संकोच होगा और उसके कारण मूल्य स्तर नीचा चला जायगा, जिससे क देश का निर्यात व्यापार बढ़ेगा। निर्यात अधिक होने से क देश में सोना आयेगा और मुद्रा प्रसार होगा। मुद्रा प्रसार से मूल्य स्तर ऊँचा जाकर वहाँ के मूल्य अपने आप दूसरे देशों के स्तर पर आ जायेंगे।

हानि—

(१) इस पद्धति की सबसे बड़ी हानि यह है कि इसमें मुद्रा की पूर्ति मुद्रा की आवश्यकताओं पर निर्भर न कर प्राकृतिक कारणों; जैसे स्वर्ण की खानों के मिल जाने अथवा स्वर्ण के उत्पादन के न्यूनाधिक हो जाने आदि पर निर्भर करता है।

(२) स्वर्ण के मुद्रा के रूप में प्रयोग में लाने से घिसावट आदि के कारण बहुमूल्य धातु का अनावश्यक अपव्यय होता है।

(३) स्वर्ण मुद्रामान एक खर्चीली पद्धति है, क्योंकि स्वर्ण निधि के लिये प्राप्त करना तथा उसका मुद्रा में बदलना काफी मंहगा पड़ता है।

(४) इस पद्धति को केवल धनी देश ही अपना सकते हैं

(५) आधुनिक युग में बहुमूल्य धातु मुद्रा के रूप में प्रयोग में लाना उस देश के पिछड़ा हुआ होने की एक निशानी माना जाता है।

स्वर्ण धातुमान

स्वर्ण मुद्रामान की बुराइयों को दूर करने के लिये ... धातुमान प्रयोग में लाया गया। इसकी विशेषतायें ...ध्यम का पृष्ठ में दी गई हैं।

(१) स्वर्ण मुद्रा न तो काम में लाई जाती है और न वह ढाली ही जाती है; अर्थात, स्वर्ण मुद्रा चलन में नहीं रहती।

(२) स्वर्ण मूल्यमापन का कार्य करता है किन्तु विनिमय माध्यम का नहीं।

(३) विनिमय माध्यम के लिये देश में कागजी मुद्रा प्रयोग में लाई जाती है। देश का सारा व्यापार इसी मुद्रा द्वारा होता है।

(४) यह कागजी मुद्रा स्वर्ण में परिवर्त्तित की जा सकती है किन्तु परिवर्त्तन के लिये न्यूनतम राशि निश्चित कर दी जाती है। उस से कम रकम का सोना नहीं दिया जाता। हमारे देश में १९२७ ई० में हिल्टन यंग कमीशन की सिफारशों के अनुसार स्वर्ण धातु मान अपनाया गया था, जिस के अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति कम से कम ४०० औंस (१०६५ तोले) सोना २१ रु० १३ आ० १० पा० की दर से खरीद सकता था। किन्तु १९३१ ई० में कुछ कारणों से इस पद्धति को भी त्यागना पड़ा।

लाभ—

(१) इस पद्धति में स्वर्ण मुद्रा का प्रयोग न होने से स्वर्ण की घिसावट आदि के कारण अपव्यय नहीं हो पाता और साथ ही मुद्रा ढलाई का खर्च भी बच जाता है।

(२) इस पद्धति में एक प्रकार से बिना स्वर्ण मुद्रा के उपयोग किये, स्वर्ण मुद्रा मान के लाभ, जैसे परिवर्त्तन शीलता, मूल्यों की स्थिरता और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार में पैठ आदि प्राप्त हो जाते हैं।

(३) स्वर्ण की कम आवश्यकता पड़ती है क्योंकि मुद्रा संचालक को उतनी स्वर्ण निधि नहीं रखनी पड़ती जितनी स्वर्ण मुद्रा मान में।

(४) जनता एक निश्चित राशि में निश्चित मूल्य पर कभी भी किसी कार्य के लिये मुद्रा को स्वर्ण में परिवर्तित करा सकती है। इस लिये इस में जनता का विश्वास बना रहना स्वाभाविक है।

हानि—

(१) यह एक प्रत्यक्ष स्वर्ण मान नहीं है। इस में कोई सन्देह नहीं कि इस पद्धति में अविरोध परिवर्त्तन शीलता बनाये रखने का प्रयत्न किया जाता है, किन्तु फिर भी न्यूनतम राशि बड़ी ऊँची होने से जन साधारण उस का लाभ नहीं उठा पाता।

(२) इस पद्धति में मुद्रा संचालक का मुद्रा संचालन में अधिक हस्तक्षेप होने से स्वयं पूर्ण कार्य-शीलता का अभाव होता है।

स्वर्ण विनिमय मान

(१) इस की विशेषतायें इस प्रकार हैं :—

(१) इस पद्धति में स्वर्ण की मुद्रा चलन में नहीं रहती, बल्कि, कागजी मुद्रा अथवा कोई हल्की धातु की मुद्रा चलन में रहती है और यही मुद्रा आन्तरिक कार्यों के लिये विनिमय-माध्यम का कार्य करती है।

(२) यह मुद्रा आन्तरिक कार्यों के लिये स्वर्ण में परिवर्त्तित नहीं होती। स्वर्ण केवल विदेशी विनिमय के लिये ही

प्राप्त किया जा सकता है, जिस के लिये एक दर निर्धारित होती है।

(३) विदेशी भुगतान के लिये सोना देने के लिये मुद्रा संचालक को स्वर्ण निधि रखना आवश्यक है, क्योंकि उक्त कार्य के लिये सोना देने को मुद्रा संचालक बाध्य होता है।

(४) यदि किसी देश में स्वर्ण मान नहीं है, तो उस देश की मुद्रा का मूल्य किसी दूसरे देश की मुद्रा से, जो स्वर्ण मान पर आधारित हो, परिवर्त्तित किया जाता है। यह परिवर्त्तन एक वैधानिक दर पर होता है। भारत का रुपया स्टर्लिंग में १ शि. ६ पे. की दर पर परिवर्त्तनीय था। सरकार अथवा रिजर्व बैंक विदेशी भुगतान करने के वालों को रुपये के बदले में स्टर्लिंग इसी दर पर देती थी।

(५) स्वर्ण के आयात व निर्यात पर सरकारी प्रतिबन्ध होता है और स्वर्ण को केवल अन्तराष्ट्रीय मुद्रा क ख में दिया जाता है।

वैसे तो यह मान कई देशों में अपनाया गया, किन्तु जावा, भारत, फिलिपाइन्स और मैक्सिको ही उल्लेखनीय हैं।

लाभ—

(१) स्वर्ण केवल विदेशी भुगतान के लिये दिया जाने के कारण मुद्रा संचालक को निधि में बहुत कम सोना रखना आवश्यक होता है। इस से सोने की बचत हो जाती है।

(२) आन्तरिक कार्यों के लिये मुद्रा का स्वर्ण में परिवर्त्तनीय न होने से, मुद्रा संचालक को आवश्यकतानुसार मुद्रा

के घटाने या बढ़ाने में कोई कठिनाई नहीं होती, अर्थात, इस पद्धति में मुद्रा की लोच सम्भव है।

(३) इस पद्धति में सरकार मुद्रा का नियन्त्रण इस प्रकार करती है कि प्रामाणिक मुद्रा एक प्रतीक मुद्रा के रूप में होते हुए भी उस का मूल्य स्वर्ण अथवा किसी दूसरे देश की मुद्रा में स्थिर रहता है, अर्थात मुद्रा के मूल्य की स्थिरता बनाये रखना सम्भव है।

(४) निर्धन और अविकसित देशों के लिये तो यह अत्युत्तम पद्धति है क्योंकि इस पद्धति सोने के रूप में रखी जाने वाली निधि की मात्रा बहुत कम होती है। स्पष्ट, इस कारण यह पद्धति अधिक से अधिक देशों में अपनाई जा सकती है।

(५) इस से चाँदी के लिये मार्ग खुल जाता है—अधिकांश देशों में आन्तरिक मुद्रा चाँदी की होने से चाँदी का व्यापार बढ़ जाता है और स्वर्ण के मूल्यों में स्थिरता भी आ जाती है।

हानि—

(१) इस पद्धति में मुद्रा आन्तरिक कार्यों के लिये स्वर्ण में परिवर्त्तनीय न होने से जनता का सरकार से विश्वास उठ जाता है।

(२) स्वर्ण का खुला आयात व निर्यात न होने से, सब देशों के मूल्य समान स्तर पर लाना कठिन हो जाता है, क्योंकि स्वर्ण के आयात निर्यात की रुकावट होने से मुद्रा की स्वयं पूर्ण कार्य-शीलता चली जाती है।

(३) स्वर्ण विनिमय मान के सुचारू रूप से चलने के लिये कोष में स्वर्ण पर्याप्त मात्रा में रखा जाना तथा आन्तरिक मुद्रा

और स्वर्ण के बीच एक निश्चित अनुपात बनाये रखने के लिये एक कठोर नियन्त्रण का होना अत्यन्त आवश्यक है।

द्वि धातु मान (Bimettalism)

जैसा नाम से ही प्रकट है यह वह मान है जहाँ दो धातुओं का एक साथ प्रयोग होता है। ये धातुयें प्रायः सोना और चाँदी ही होती हैं और इन्हीं के बने सिक्के प्रयोग में आते हैं। दोनों सिक्कों के बीच सम्बन्ध निश्चित कर दिया जाता है कि अमुक धातु के सिक्के के बदले में दूसरी धातु के कितने सिक्के मिल सकेंगे। यह टकसाली अनुपात (Mint Ratio) के नाम से पुकारा जाता है।

द्वि धातु मान का संक्षिप्त इतिहास—द्विधातु मान का इतिहास सन् १७६२ से आरम्भ होता है, जब अमरीका ने पहिले पहल द्वि धातु मान को अपनाया और सोने तथा चाँदी के सिक्के चलाये। इन सिक्कों में प्रमाणिक मुद्रा (Standard Money) के समस्त गुण मौजूद थे। दोनों धातुओं के बीच सरकारी अथवा टकसाली अनुपात १५ और १ का रखा गया, अर्थात, १५ चाँदी के सिक्कों के बदले में १ सोने का सिक्का अथवा १५ औंस चाँदी के बदले में १ औंस सोना प्राप्त किया जा सकता था। जब तक इन धातुओं का बाजारू अनुपात (Market Ratio) भी वही बना रहा तब तक कोई कठिनाई नहीं आई। किन्तु ज्यों ही सन १७६५ के बाद चाँदी का मूल्य गिरने लगा, यह अनुपात बिगड़ गया और लोगों ने सोने के सिक्कों को गला कर लाभ कमाना आरम्भ कर दिया। दूसरे शब्दों में ग्रेशम का सिद्धान्त लागू हो गया। अन्त में इस से तंग आकर सन् १८७३ में चांदी की स्वतंत्र मुद्रा ढलाई बन्द कर दी गई।

फ्रांस ने भी १८०३ ई० में द्विधातु मान अपनाया, किंतु यहाँ भी वे ही कठिनाईयाँ सामने आने लगी। सोना मूल्यवान

होने के कारण चलन से निकल गया और केवल चाँदी ही की मुद्रायें चलन में रह गई। कभी कभी इसके विपरीत होने से केवल सोना चलन में रह जाता था। इस समस्या को हल करने के हेतु फ्रांस ने दूसरे पड़ोसी देशों, जैसे इटली, बेल्जियम, स्विटजरलैंड आदि से मिलकर, जहाँ द्विधातुमान का चलन था। एक संघ बनाया, जिसका नाम लेटिन मौद्रिक संघ रखा गया। किन्तु फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय कारणों से यह संघ अधिक दिन तक न चल सका और सन १८७४ ई० में स्वतंत्र मुद्रा ढलाई बन्द कर दी गई।

बाद में कई अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक परिषद (International Monetary Conferences) भी बुलाई गईं, जिससे द्विधातु मान अन्तर्राष्ट्रीय रूप ग्रहण कर सके। किन्तु व्यवहारिक कठिनाइयों तथा इंगलैंड के विरोध के कारण ये सब प्रयत्न असफल रहे और १९ वीं शताब्दी के अन्त के साथ साथ द्विधातु मान का भी सदा के लिये अन्त हो गया। भारत ने भी चाँदी के रुपये की स्वतंत्र ढलाई इसी समय (१८९३) बन्द की थी।

जैसा हम इस अध्याय के प्रारम्भ में पढ़ आये हैं, द्विधातु-मान के निम्नलिखित मुख्य रूप हैं, जिन पर हम यहां विचार करेंगे—

(१) पूर्ण द्विधातुमान (Pure Bimetallism).

(२) अपूर्ण या लंग द्विधातुमान (Limping Standard).

(३) मिश्रित द्विधातुमान (Symmetallism).

पूर्ण द्विधातुमान

पूर्ण द्विधातुमान की विशेषतायें इस प्रकार हैं—

(१) दो धातुओं (चाँदी और सोना) के सिक्के प्रामाणिक मुद्रा के रूप में चलन में रहते हैं।

(२) दोनों प्रकार के सिक्कों की स्वतन्त्र मुद्रा ढलाई होती है।

(३) दोनों ही मुद्रायें असीमित विधिग्राह्य होती हैं।

(४) टकसालके द्वारा दोनों मुद्राओं का परस्पर सम्बन्ध निश्चित कर दिया जाता है। इसको, जैसा ऊपर बता दिया गया है, टकसाली अनुपात (Mint Ratio) कह कर पुकारते हैं।

(५) जैसा प्रामाणिक मुद्रा में होना चाहिए, इन मुद्राओं में वाह्य मूल्य और आन्तरिक मूल्य समान रखा जाता है।

संक्षेप में हम यों कह सकते हैं कि द्विधातुमान वह मान है, जहाँ दो धातुओं के प्रामाणिक सिक्के निश्चित अनुपात में परस्पर बदले जाने की शर्त पर चलते हैं।

लाभ—

(१) द्विधातुमान का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें मुद्रा के मूल्य की स्थिरता बनाये रखना सुगम है। किसी एक ही धातु की मुद्रा होने से धातु के मूल्य में परिवर्तन के साथ मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। किन्तु जब मुद्रायें दो प्रकार की होती है, तो एक मुद्रा का अभाव दूसरी मुद्रा द्वारा पूरा किया जा सकता है। इस प्रकार मुद्रा के मूल्य में स्थिरता बने रहने से वस्तुओं के मूल्य में स्थिरता बनी रहती है, जो समाज के लिए अत्यावश्यक है।

(२) चाँदी और सोने की दोनों प्रकार की प्रामाणिक मुद्रायें चलन में रहने से स्वर्णमान तथा रौप्यमान वाले दोनों प्रकार के देशों से सुगमता पूर्वक व्यापार किया जा सकता है। दूसरे शब्दों

में विदेशी व्यापार के लिये द्विधातुमान बड़ा सुविधा जनक सिद्ध होता है।

(३) द्विधातुमान में मुद्रा कुछ अधिक परिमाण में रहने से वस्तुओं के मूल्य आमतौर पर ऊँचे रहेंगे जिससे, उत्पादन को प्रोत्साहन मिलता रहता है, जो देश की उन्नति के लिये आवश्यक है।

(४) द्विधातुमान में स्वर्ण के साथ साथ चाँदी का उपयोग होने से राष्ट्रों की माँग चाँदी के लिये बढ़ जाती है, जिससे चाँदी का मूल्य अधिक नहीं गिर पाता। यदि ऐसा न हो, तो रौप्यमान वाले देशों को चाँदी के मूल्य में अधिक उतार चढ़ाव होने से बड़ी हानि उठानी पड़े।

(५) इस मान में सरलता होने के अतिरिक्त इसको गरीब व अमीर सभी देश अपना सकते हैं।

हानि—

(१) सबसे बड़ी हानि तो यह है कि दो धातुओं की मुद्रा चलन में होने से खराब धातु की मुद्रा अच्छे धातु की मुद्रा को चलन से बाहर निकाल देती है, अर्थात ग्रेशम का सिद्धान्त लागू हो जाता है।

(२) जब दोनों मुद्राओं के टकसाली अनुपात तथा बाजारू अनुपात में अन्तर हो जाता है, तो लेन देन की कठिनाइयाँ भी सामने आने लगती हैं। क्योंकि भुगतान लेने वाला तो, अच्छी मुद्रा लेना चाहता है और देने वाला खराब अथवा गिरे हुए मूल्य वाली मुद्रा देना चाहता है।

(३) द्विधातुमान; धातुओं की घिसावट व मुद्रा ढलाई के भारी खर्च के कारण बड़ा महंगा पड़ता है।

(४) द्विधातुमान तभी सफल हो सकता है, जब इसे अन्तर्राष्ट्रीय रूप दिया जाय और समस्त देश परस्पर सहयोग से कार्य करें। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, इस ध्येय को प्राप्त करने के लिये अनेक प्रयत्न भी किये गये; किन्तु सब निष्फल रहे।

अपूर्ण या लंग द्विधातुमान—

इस पद्धति में सोने और चाँदी दोनों की मुद्रायें चलन में रहती हैं, किन्तु किसी एक धातु की मुद्रा के लिये ही स्वतंत्र ढलाई होती है, दूसरी के लिये नहीं। इसी लिये इस को लंग मान या लंगड़ी पद्धति के नाम से पुकारा जाता है। इसमें प्रायः स्वर्ण मुद्रा तो स्वतंत्र रूप से ढाली जाती है, किन्तु चाँदी की मुद्रा का ढालना व न ढालना सरकार की इच्छा पर निर्भर रहता है। यह पद्धति कुछ समय के लिये फ्राँस में अपनाई गई थी।

मिश्रित द्विधातुमान—

इस पद्धति के जन्म दाता प्रोफेसर मार्शल हैं और उन के अनुसार सोने और चाँदी को एक निश्चित मात्रा में मिला कर मुद्रा ढालना आवश्यक है, जिस से ग्रेशम का सिद्धान्त लागू ही न हो। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को वह मुद्रा लेते समय दोनों धातुयें एक साथ लेनी होंगी।

द्विधातुमान के अन्तर्गत दो और भी पद्धतियाँ आती हैं जिन का उल्लेख ऊपर नहीं किया गया। वे निम्न लिखित हैं :—

समानान्तर मान (Parallel Standard)—

इस पद्धति में सोने और चाँदी दोनों की प्रामाणिक मुद्रायें चलती हैं। दोनों ही की स्वतंत्र मुद्रा ढलाई भी होती है। किन्तु द्विधातुमान की भाँति दोनों धातुओं के बीच एक निश्चित अनुपात

(Fixed Ratio) स्थापित नहीं होता। बल्कि यह टकसाली अनुपात समय समय पर बाजारू अनुपात के साथ बदलता रहता है। दोनों अनुपात समानान्तर चलते हैं, जिस से ग्रेशम का सिद्धान्त लागू ही न हो। दूसरे शब्दों में यों भी कहा जा सकता है कि इस पद्धति में कोई टकसाली अनुपात होता ही नहीं, मुद्रा परिवर्त्तन बाजार भाव पर ही होता है।

नवीन त्रि धातु मान (Neo-Metallism)—

इस के अनुसार सोने और चाँदी की मुद्रा चलन में न रह कर कागजी मुद्रा चलन में रहती है। यह कागजी मुद्रा आवश्यकतानुसार सोने या चांदी में बाजार भाव पर बदली जा सकती है। यह स्पष्ट है कि इसमें मुद्रा संचालक को निधि में सोना और चांदी दोनों रखने पड़ते हैं।

विनिमय मान (Exchange Standard)—

विनिमय मान वह मान है, जिस के अनुसार एक देश की मुद्राओं का मूल्य दूसरे देश की मुद्राओं के रूप में निश्चित कर दिया जाता है। जिस प्रकार स्वर्ण मान में एक देश की मुद्रा विदेशी भुगतान के लिये स्वर्ण में परिवर्त्तनीय होती है उसी प्रकार विनिमय मान में देश की मुद्रा विदेशी मुद्रा में परिवर्त्तनीय होती है। दूसरे शब्दों में विनिमय मान में दो देशों की मुद्राओं का गठ बन्धन कर दिया जाता है। इन में जो मुद्रा प्रधान होती है और जिस के साथ दूसरी मुद्रा का गठ बन्धन किया जाता है, उसी नाम से इस मान को पुकारा जाता है, जैसे भारतीय रुपये का सम्बन्ध स्टर्लिंग से जुड़े होने के कारण यह स्टर्लिंग विनिमय मान कहलाता है। विनिमय मान की संसार

में दो ही पद्धतियाँ चालू हैं और वे निम्न प्रकार हैं :—

(१) डालर विनिमय मान (Dollar Exchange Standard).

(२) स्टर्लिंग विनिमय मान (Sterling Exchange Standard).

डालर विनिमय मान—

जब किसी देश की मुद्रा का सम्बन्ध संयुक्त राष्ट्र अमरीका की मुद्रा डालर से जोड़ दिया जाता है, तो यह डालर विनिमय मान कहलाता है। इस पद्धति में उस देश की मुद्रा पहिले डालर में परिणित की जायगी और फिर दूसरे देशों से डालर के आधार पर व्यापार किया जायगा। डालर क्षेत्र में अधिकांशतः उत्तरी, दक्षिणी तथा मध्य अमरीका के देश आते हैं।

स्टर्लिंग विनिमय मान—

जब किसी देश की मुद्रा का गठ बन्धन इंगलैंड की मुद्रा स्टर्लिंग से कर दिया जाता है, तो यह स्टर्लिंग मान अथवा स्टर्लिंग विनिमय मान कह कर पुकारा जाता है। स्वाभाविक ही है कि इस पद्धति में उस देश की मुद्रा पहिले स्टर्लिंग में बदली जायगी और फिर स्टर्लिंग के माध्यम से व्यापार किया जायगा। स्टर्लिंग क्षेत्र में अधिकतर राष्ट्र मंडलीय देश (Commonwealth countries) आते हैं। यह पहिले कहा ही जा चुका है कि भारतीय रुपये का गठ बन्धन स्टर्लिंग से १ शि० ६ पेंस की दर से स्थापित है।

विनिमय मान का सब से बड़ा दोष यह है कि इस में एक देश की आर्थिक परिस्थिति का प्रभाव दूसरे देश पर पड़े बिना नहीं रह सकता, जो कभी कभी बड़ा घातक सिद्ध होता है। दूसरे,

दोनों देशों को एक दूसरे की मुद्रायें अपनी अपनी निधि में रखनीं पड़ती हैं।

कागजी मान (Paper Standard)

यहाँ मुद्रा कागज की बनी होने के कारण कागज ही मुद्रा का मान बन जाता है और कागजी मान कहलाता है। इस पद्धति में देश में मूल्य मापक तथा विनिमय माध्यम का कार्य कागजी मुद्रा ही करती, है जिसका मूल्य किसी भी धातु से निश्चित नहीं किया जा सकता है अर्थात, यह अपरिवर्त्तनीय होती है और इस कारण मुद्रा प्रसार का सदैव भय बना रहता है। इस भय से बचने के लिये सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक इसके प्रकाशन पर पूरा पूरा नियन्त्रण रखती है और इसका चलन एक निश्चित योजना के अनुसार करती है। इसीलिये इसको सुसंचालित कागजी मुद्रा (Managed paper currency) के नाम से पुकारते हैं। इस पद्धति की विशेषतायें संक्षेप में निम्न प्रकार समझाई जाती हैं:—

(१) कागजी मुद्रा ही प्रामाणिक मुद्रा का कार्य करती है और असीमित विधि ग्राह्य होती है।

(२) इसका किसी भी धातु से किसी भी कार्य के लिये सम्बन्ध निश्चित नहीं होता, अर्थात, यह अपरिवर्त्तनीय होती है।

(३) मूल्यों की स्थिरता बनाये रखने तथा मुद्रा प्रसार से बचाये रखने के लिये इसका प्रकाशन मुद्रा संचालक द्वारा एक निश्चित योजना के अनुसार होता है। इस योजना का

आधार है मूल्य निर्देशांक, जिसके बढ़ने पर मुद्रा कम कर दी जाती है और अधिक नीचा जाने पर मुद्रा प्रसार।

(४) पहिले विदेशी भुगतान के लिये स्वर्ण निधि रखना आवश्यक था. किन्तु अब अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की स्थापना हो जाने के बाद कोई निधि नहीं रखनी पड़ती और अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान उक्त बैंक द्वारा ही कर दिये जाते हैं।

लाभ—

(१) इसको इसके लिये कोई निधि धातु के रूप में नहीं रखनी पड़ती. जिससे बहुमूल्य धातु की बचत हो जाती है।

(२) समाज की आवश्यकतानुसार इसको सुगमता पूर्वक घटाया और बढ़ाया जा सकता है।

(३) इसके द्वारा एक देश मुद्रा क्षेत्र (Monetary field) में पूर्ण स्वतंत्र बन जाता है, किसी दूसरे देश का सोने चाँदी प्राप्त करने को मुंह नहीं ताकना पड़ता।

हानि—

(१) विदेशी विनिमय की दर स्थायी न रहने से विदेशी व्यापार पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है।

(२) विभिन्न देशों की वाणिज्य सम्बन्धी लाभ प्राप्त करने की पारस्परिक स्पर्धा के कारण मुद्रा का मूल्य ह्रास (Depreciation of currency) एक साधारण सी बात बन जाती है।

अच्छे मान की विशेषतायें
(Characteristics of a good standard)

मुद्रा के विभिन्न मानों का अध्ययन कर लेने के पश्चात यह जान लेना आवश्यक होगा कि एक अच्छे मान में किन किन बातों का समावेश होना चाहिये। ये इस प्रकार हैं;—

१—मूल्य में स्थिरता—गत अध्यायों में हम यह पढ़ आये हैं कि समाज के लिये मूल्यों की स्थिरता कितनी आवश्यक है। इसलिये मुद्रा मान ऐसा होना चाहिये, जिससे देश के मूल्य स्तर तथा विदेशी विनिमय की दर में स्थिरता रखी जा सके।

२—लोच—मुद्रामान ऐसा होना चाहिये, जिसमें समाज की आवश्यकतानुसार मुद्रा बढ़ाने व घटाने की क्षमता हो। मुद्रा के मूल्य की स्थिरता बनाये रखने के लिये मुद्रा मान में लोच होना अत्यंत आवश्यक है।

३—सरलता—मुद्रामान ऐसा होना चाहिय, जिसको जन-साधारण आसानी से समझ सके, जिससे जनता का विश्वास प्राप्त हो सके।

४—मितव्ययिता—मुद्रामान ऐसा होना चाहिये। जिसमें बहुमूल्य धातु की बचत सम्भव हो तथा जिसके ढलवाने अथवा तैयार कराने में अधिक खर्च न पड़ता हो।

५—परिवर्त्तनशीलता—जनता का विश्वास प्राप्त करने के हेतु मुद्रा का किसी हद तक परिवर्त्तनीय होना भी आवश्यक है। मुद्रा के परिवर्त्तनीय बनायें रखने के लिये मुद्रा संचालक को स्वर्ण निधि रखनी होगी, जिससे अत्याधिक मुद्रा प्रसार का भी भय नहीं रहता।

६—स्वयँपूर्ण कार्यशीलता—मुद्रा संचालन सरकारी हस्तक्षेप से परे होना चाहिये, जिससे मुद्रा के परिमाण में कमी अथवा वृद्धि सरकारी नीति के आधार पर न होकर जनता की आवश्यकता के अनुसार हो सके।

यहाँ यह कह देना उचित होगा कि किसी भी मान में उपर्युक्त सभी बातों का समावेश होना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है। इसलिये प्रयास तो इस बात का किया जाता है कि मुद्रा मान ऐसा रखा जाय, जिसमें एक अच्छे मान की अधिक से अधिक विशेषताओं का समावेश हो। हम देखते हैं कि आज के युग में सुसंचालित कागजी मुद्रा सबसे अधिक उपयुक्त है। इसलिये अधिकांश देशों में इसी का प्रचलन है।

अभ्यास-प्रश्न

१—मुद्रा के मान से क्या समझते हो? एक अच्छे मुद्रा मान के लक्षण लिखिये।

२—द्विधातु मान की विशेषतायें, गुण और दोष बतलाइये। क्या इसको आधुनिक युग में अपनाया जा सकता है? यदि नहीं तो क्यों?

३—मुद्रा के विभिन्न मुद्रामान कौन से हैं? आज के युग में कौन सा मुद्रामान सबसे उपयुक्त कहा जा सकता है और क्यो?

४—स्वर्णमान पर एक संक्षिप्त लेख लिखिये।

५—स्वर्णमान का अन्त होने के क्या कारण हैं ? क्या स्वर्ण मान पुनः अपनाया जा सकता है ? यदि, हाँ, तो कैसे ?

६—स्वर्ण मुद्रा मान तथा स्वर्ण धातु मान में क्या अन्तर है ? इनमें से कौन सा मानअच्छा है और क्यों ? क्या आप अपने देश में इन में से किसी को स्थापित करना उचित समझतें हैं ?

७—नियन्त्रित व अनियन्त्रित कागजी मुद्रा मान में क्या अन्तर है ? इन दोनों में कौन अच्छा है, ? और क्यों ?

८—स्वर्ण विनिमय मान की कार्य पद्धति लिखिये। भारत में इसका विरोध क्यों किया गया ?

९—इनको समझाइये:—

१—लंगमान, २—समानान्तर मान: ३—मिश्रत मान, ४—रौप्य मान, ५—स्टर्लिंग विनिमय मान, ६—डालर विनिमय मान

अध्याय ११

स्वर्णमान का इतिहास व उसका भविष्य

संसार के प्रमुख देशों में मुद्रा का प्रादुर्भाव सोने और चाँदी की मुद्राओं के रूप में हुआ। अमरीका, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में पहिले द्विधातुमान का ही चलन था। किन्तु द्विधातुमान में अनेक कठिनाइयां सामने आईं, जिनमें से सोने और चाँदी के टकसाली अनुपात (Mint Ratio) और बाजारू अनुपात (Market Ratio) भिन्नता मुख्य है। इसका मुख्य कारण १९वीं शताब्दि में चाँदी के मूल्य में सोने के मूल्य की अपेक्षा अति शीघ्र परिवर्तन होते रहना था इन दोनों अनुपातों का एक होना द्विधातुमान की सफलता के लिये अत्यन्त आवश्यक है। अनेक प्रयत्न करने पर भी जब यह बाजारू अनुपात टकसाली अनुपात पर स्थिर न रहा, तो इन देशों को द्विधातुमान का परित्याग कर स्वर्णमान को अपनाना पड़ा।

स्वर्णमान को सर्व प्रथम सन १८१६ में इंगलैंड ने अपनाया और उसकी देखा देखी दूसरे देशों ने भी १९ वीं शताब्दी के अन्तिम २० वर्षों में अपना लिया। फ्रांस ने सन १८६५ में द्विधातुमान का परित्याग कर उसी वर्ष स्वर्णमान को अपनाया। इसी प्रकार जर्मनी और अमेरिका ने भी इसको क्रमशः १८७१ और १८७३ ई० में अपना लिया। इस प्रकार स्वर्णमान संसार की सर्वमान्य पद्धति बन गई और सन १९१४ तक निर्विघ्न रू

से चलती रही। वैसे तो सन १८९२ में एक अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक परिषद भी बुलाई गई और उसमें द्विधातुमान को फिरसे अपनाने और उसको एक अन्तर्राष्ट्रीय रूप देने का प्रयत्न भी किया गया। किन्तु यह सब निष्फल रहा।

स्वर्णमान के जो विभिन्न रूप अपनाये गये, वे इस प्रकार हैं—(१) स्वर्णमुद्रामान (२) स्वर्ण विनिमय मान और (३) स्वर्ण धातुमान।

स्वर्णमान के इतिहास को निम्न तीन भागों में बांटा जा सकता है:—

(१) सन १९१४ तक का काल, अर्थात प्रथम महायुद्ध के पहिले का काल।

(२) सन १९१४ से सन १९१९ तक का काल, अर्थात प्रथम महायुद्ध काल।

(३) सन १९१९ के बादका काल अर्थात प्रथम महायुद्धोपरान्त काल।

१९१४ तक—

सन १९१४ के पूर्व स्वर्णमान ने स्वर्ण धातुमान का रूप ग्रहण कर रखा था, अर्थात, या तो स्वर्ण की असीमित विधि ग्राह्य मुद्रायें, जिनकी स्वतन्त्र मुद्रा ढलाई होती थी, चलन में लाई जाती थी, या स्वर्ण में परिवर्तनीय या कागजी मुद्रा का प्रयोग होता था। मुद्रा संचालक को कोष में स्वर्ण रखना आवश्यक था, जिससे कि कोई भी व्यक्ति, किसी भी समय, किसी भी कार्य के लिये कागजी मुद्रा को स्वर्ण में बदला सके। स्वर्ण के आयात निर्यात पर भी किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था।

कहीं कहीं पर स्वर्ण मान स्वर्ण विनिमय मान के रूप में भी प्रयोग में आता था। जिसके अनुसार देश में चाँदी की असीमित विधिग्राह्य मुद्रा या कागजी मुद्रा प्रयोग में लाई जाती थी।

इस मुद्रा का किसी ऐसे देश की मुद्रा से गठबन्धन कर दिया जाता था, जो स्वर्णमान पर आधारित हो। आन्तरिक कार्यों के लिए ये मुद्रायें स्वर्ण में परिवर्तित नहीं होती थी, किन्तु विदेशी भुगतान के लिए सरकार को स्वर्ण अथवा विदेशी मुद्रायें देना अनिवार्य था। यह पद्धति भारत, आस्ट्रिया तथा हंगरी आदि देशों में १९वीं शताब्दि के अन्त में तथा सन १९१९ से सन १९३० तक प्रचलित थी।

१९१४ से १९१९ तक—

सन १९१४ और सन १९१९ के बीच के काल में युद्ध काल होने से मुद्रा की आवश्यकतायें बहुत बढ़ गई थीं। इन युद्ध जन्य आवश्यकताओं को पूरा करने का केवल एक ही उपाय था और वह था अपरिवर्तनीय कागजी मुद्रा का चलन में लाना। मुद्रा को अपरिवर्तनीय बनाने का एक तो यह कारण था कि इतनी अधिक मुद्रा को परिवर्तनीय बनाये रखने के लिये पर्याप्त स्वर्ण निधि का करना कठिन था और दूसरा यह कि सन १९१७ में अमेरिका ने स्वर्ण निर्यात पर रोक लगा दी थी। इस प्रकार संसार के अधिकांश देशों को स्वर्णमान का परित्याग कर अपरिवर्तनीय कागजी मुद्रा चलन में लानी पड़ी। इस अपरिवर्तनीय कागजी मुद्रा के कारण अत्यधिक मुद्रा प्रसार हुआ और मूल्य बहुत ऊँचे चले गये, जिसके कारण जनता का कागजी मुद्रा से विश्वास उठ गया।

समस्त देशों के लोग कोई ठोस मुद्रा चाहते थे, जिसमें जनता का पूर्ण विश्वास हो। यह ठोस मुद्रा केवल स्वर्ण की ही हो सकती थी। इसी उद्देश्य से सन १९२० में बेल्जियम की राजधानी ब्रुसैल्स में एक अन्तर्राष्ट्रीय राजस्व परिषद (International Financial Conference) बुलाई गई, जिसमें तय किया गया कि जिन जिन देशों ने स्वर्णमान का परित्याग किया था, वे फिर से स्वर्णमान को अपना लें। इसके कुछ समय

बाद ही जेनेवा में एक अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ परिषद् (International Economic Conference) और बुलाई गई, जिसमें भी स्वर्णमान को अपनाने पर जोर दिया गया।

१६१६ के बाद

महायुद्ध के समाप्त होने के बाद दो विचार धारायें चल रही थी। एक के समर्थक प्रो० कैसिल थे, जो स्वर्ण मान को फिर से लाने के पक्ष में थे, दूसरे लार्ड कीन्स थे, जो स्वर्णमान को फिर से अपनाने के कट्टर विरोधी थे। कीन्स स्वर्ण को भूत काल की एक असभ्य स्मृति मानते थे। कुछ भी हो, स्वर्ण के स्थान पर कोई स्वर्ण सरीखी प्रिय वस्तु न होने के कारण स्वर्णमान को ही अपनाना पड़ा। सबसे पहिले स्वर्णमान को फिर से अपनाने वाला देश अमरीका था। इसके बाद इंगलैंड, फ्रांस, भारत आदि देशों ने भी अपना लिया। इंगलैंड ने स्वर्ण को दुबारा सन् १६२५ में और भारत ने सन १६२७ में अपनाया। यह स्वर्णमान पहिले के स्वर्णमान से बिल्कुल भिन्न था। अब न तो स्वर्ण मुद्रायें ही चलन में थीं और न स्वर्ण की स्वतंत्र मुद्रा ढलाई ही होती थी। कागजी नोट प्रयोग में आते थे जो स्वर्ण में एक सीमा के ऊपर ही बदले जा सकते थे इंगलैंड में यह सीमा ४०० औंस और भारत में १०६५ तौले थी। इससे कम तौल का सोना प्राप्त नहीं किया जा सकता थ। यह सोना किसी भी कार्य के लिये लिया जा सकता था। इसके लिये यह प्रतिबन्ध नहीं था कि यह केवल विदेशी विनिमय के लिये ही मिले कागजी मुद्रा के स्वर्ण में परिवर्तन के लिये एक दर निश्चत होती थी जिसके अनुसार ही स्वर्ण का लेन देन होता था। भारत में यह दर २१ रु० ३ आ० १० पा० प्रति तोला की थी। संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि युद्ध के बाद के स्वर्णमान ने स्वर्ण धातुमान का रूप ले लिया था।

युद्ध पूर्व स्वर्णमान तथा युद्धोपरान्त स्वर्णमान की तुलना निम्न प्रकार से सरलता पूर्वक की जा सकती :—

युद्ध पूर्व स्वर्णमान	युद्धोपरान्त स्वर्णमान
१—स्वर्ण विनिमय माध्यम एवं मूल्य मापन का कार्य करता था।	१—स्वर्ण केवल मूल्य मापन का कार्य करता था, विनिमय माध्यम का नहीं।
२—स्वर्ण की मुद्रायें जिन की स्वतंत्र मुद्रा ढलाई होती थी चलन में थी।	२—न तो स्वर्ण की मुद्रायें ही चलन में थीं और न उन की ढलाई ही होती थी।
३—स्वर्ण की मुद्रा के अतिरिक्त कागजी मुद्रा भी चलन में थी और इस को स्वर्ण में बदलवाने की पूरी छूट होती थी।	३—कागजी मुद्रा चलन में थी किन्तु इस को स्वर्ण में बदलवाने के लिये एक सीमा (४०० औंस या १०६५ तोले) निश्चित होती थी।
४—स्वर्ण का खुला आयात व निर्यात होने से मुद्रा की स्वयं-पूर्ण-कार्य शीलता (Automatic working) सम्भव थी।	४—यहां नियन्त्रित मुद्रा संचालन होने से स्वयं पूर्ण-कार्य शीलता नहीं होती।
५—यह अतिरिक्त मूल्यों की स्थिरता की अपेक्षा विनिमय की स्थिरता पर अधिक जोर देती थी।	५—यह विनिमय की स्थिरता की अपेक्षा मूल्यों की स्थिरता पर अधिक जोर देती थी।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि युद्ध पूर्व का स्वर्णमान स्वर्ण मुद्रा मान था, जबकि युद्धोपरान्त का स्वर्ण मान स्वर्ण धातु मान।

स्वर्ण मान को छोड़ने के कारण (Causes leading to break-down of Gold Standard)

प्रथम महा युद्ध के बाद, जो स्वर्ण मान ने पुनर्जीवन पाया उस से उस की काया-पलट ही नहीं हो गई थी, बल्कि वह एक छोटी आयु लेकर भी आया था। जैसा कहा जा चुका है कि इंगलैंड ने सन् १९२५ में स्वर्ण मान को अपनाया और सन् १९३१ में ही इस को छोड़ना पड़ा। इंगलैंड के साथ साथ दूसरे देशों ने भी उस का अनुसरण किया और धीरे धीरे स्वर्ण मान संसार से उठ सा गया। स्वर्ण मान इतना जल्दी क्यों नष्ट हो गया इस के निम्न लिखित मुख्य कारण थे :—

(१) महा युद्ध के बाद अमरीका और फ्रांस ही दो देश ऐसे थे जिन को महा युद्ध ने संसार के अन्य देशों का लेनदार (Creditor) बना दिया। इन्हों ने अपना ऋण स्वर्ण में ही लेने पर जोर दिया। इस से संसार के दूसरे देशों का सोना खिंचकर इन दोनों देशों में आ गया। संसार का 2/3 सोना केवल इन दो देशों के पास इकट्ठा हो गया और शेष 1/3 भाग सारे देशों के पास रह गया। इस 1/3 सोने से वे लोग अपनी मुद्रा की आवश्यकतायें पूरी नहीं कर सकते थे। इसलिये इन सब देशों को स्वर्णमान को त्यागना पड़ा।

(२) संयुक्तराष्ट्र अमेरिका तथा फ्रांस ने अपने अपने देश में आयात पर नियंत्रण लगा दिये, जिससे दूसरे देशों के लिये माल भेजकर अपना ऋण चुकाना अथवा स्वर्ण प्राप्त करना कठिन हो गया।

(३) फ्रांस और अमरीका में जब बाहर के देशों से सोना आया, तो इन्हों ने इस के साथ अपनी मुद्रा में वृद्धि नहीं की, जैसा कि स्वर्ण मान के अन्तर्गत देश में स्वर्ण आने पर होना चाहिये था। इस से वहाँ की आन्तरिक कीमतों में इतना अधिक स्वर्ण आ जाने पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यदि ये देश मुद्रा में वृद्धि करते, तो यहां की कीमतें बढ़ जातीं। कीमतें बढ़ जाने से दूसरे देशों से जहाँ कीमतें नीची थीं, खूब आयात होता जिस के फलस्वरूप इन दोनों देशों का व्यापार सन्तुलन इन के विपरीत चला जाता और इन को सोना देना पड़ता। जो इन्हों ने कभी नहीं होने दिया।

(४) स्वर्ण मान के बंद होने का एक कारण आस्ट्रिया के केन्द्रीय बैंक का असफल होना भी था। इस बैंक ने अपनी बहुत सी रकम उद्योग धन्धों में विनियोग (Invest) कर रखी थी, जिस का वसूल होना उस समय की भारी मन्दी के कारण दुर्लभ हो गया। जनता ने अपने धन की एक साथ मांग की, जिस को पूरा करने में यह असमर्थ रहा, और इस को अपने दरवाजे बन्द करने पड़े। यहाँ की देखा देखी दूसरे देशों में भी लोगों ने अपनी रकमें निकलवानी शुरू कर दीं, जिस से दूसरे बैंक भी असफल हो गये और अन्त में स्वर्ण मान भंग हो गया।

(५) वारसेलीज की सन्धि (Treaty of Varsallies) के अनुसार युद्ध में पराजित हुये देशों से हरजाना लेने के बारे में निश्चय किया गया। इस हरजाने के कारण जर्मनी आदि देश ऋण के बोझ से दब गये। विजेता देशों ने यह हरजाना स्वर्ण में ही लेने पर जोर दिया जिस से पराजित देशों का सारा सोना उन के हाथ से चला गया और अन्त में उन को स्वर्ण मान का त्याग करना पड़ा।

(६) अन्त में, स्वर्ण के उत्पादन में कमी और चाँदी के उत्पादन में वृद्धि के कारण भी स्वर्ण मान का लोप हो गया और कई देशों ने स्वर्ण के स्थान पर रौप्यमान (Silver Standard) अपना लिया।

स्वर्ण मान का भविष्य—

स्वर्ण मान के सब देशों द्वारा परित्याग करने के कुछ वर्षों बाद ही दूसरा विश्व युद्ध छिड़ गया। युद्ध के कारण मुद्रा की आवश्यकतायें काफी बढ़ गईं और अपरिवर्त्तनीय कागज़ी मुद्रा का अत्याधिक प्रचार हुवा। वस्तुओं के मूल्य बन बहुत ऊँचे चले गये। अन्तराष्ट्रीय भुगतान एक समस्या बन गई। लोगों का इस कागजी मुद्रा से विश्वास उठ गया।

इन सब कठिनाइयों, विशेषकर अन्तराष्ट्रीय भुगतान की अड़चन को दूर करने के हेतु जुलाई १९४४ में सयुक्त राष्ट्र अमरीका में ब्रेटन-वुडस नामक स्थान पर एक अन्तराष्ट्रीय मुद्रा परिषद बुलाई गई। जिसके फलस्वरूप १९४६ में अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund) और विश्व बैंक (World Bank) की स्थापना हुई। इन दोनों संस्थाओं के संसार के सारे प्रमुख राष्ट्र सदस्य हैं और प्रत्येक ने एक निश्चित मात्रा में स्वर्ण जमा करा रखा है। अब अन्तराष्ट्रीय भुगतान इन्हीं संस्थाओं के सहायता से किये जाते हैं। इस से विदेशी विनिमय की स्थिरता भी प्राप्त हो गई है। जहाँ तक आन्तरिक भुगतानों का प्रश्न है, प्रायः सब देशों में सुसंचालित कागजी मुद्रा प्रयोग में लाई जाती है। देश में विनिमय माध्यम का कार्य सब इसी कागजी मुद्रा द्वारा किया जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अन्तराष्ट्रीय

अध्याय १२

साख तथा साखपुर्जे

वर्तमान युग साख का युग है। आज की दुनिया में अधिकांश लेन देन नकदी में न होकर साख के आधार पर ही होते हैं। हम देखते हैं कि नित्य प्रति के क्रय विक्रय में उत्पादक थोक व्यापारी को, थोक व्यापारी फुटकर व्यापारी को और फुटकर व्यापारी उपभोक्ता को माल बेचते समय भुगतान उसी समय देने को बाध्य नहीं करते, बल्कि आगामी काल में लेने को राजी हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में, ये सब व्यक्ति साख का उपभोग बहुतायत से करते हैं। आज का सारा विशाल-कार्य आर्थिक ढाँचा साख पर ही टिका हुआ है।

साख का अर्थ (Meaning of Credit)—साख को अंग्रेजी में क्रेडिट (Credit) कहते हैं। यह क्रेडिट शब्द लैटिन भाषा के क्रैडियर (Credere) शब्द से बना है, जिसका अर्थ है विश्वास करना। इसी लिये साख का मूलाधार विश्वास माना जाता है। साख का हिन्दी अर्थ है लेन देन का खरापन। जब हम यह कहते हैं कि अमुक व्यक्ति कीसाख बड़ी अच्छी है, तो इसका यह अर्थ होता है कि वह व्यक्ति बड़ा विश्वासनीय है अथवा लेन देन का बड़ा खरा है। इस शब्द का प्रयोग दूसरे अर्थों में भी होता है। इस पर भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न बिचार प्रकट किये हैं।

प्रसिद्ध अर्थ शास्त्री जेवन्स का कहना है कि साख भुगतान कुछ बिलम्ब के पश्चात करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस प्रकार साख को एक प्रकार से बिलम्बित विनमय (Protracted Exchange) की परिभाषा भी दी जा सकती है। अर्थात साख वह विनिमय है, जिसमें यदि समय का तत्व जोड़ दिया जाय, तो साख बन जाता है। एक निश्चत अवधि बीतने के पूर्व यह विनिमय साख नहीं बन पाता। टकर (Tucker) के शब्दों में साख किसी मूल्यवान वस्तु का किसी दूसरे व्यक्ति को उस हस्तांतरण का नाम है, जो इस विश्वास से किया जाता है कि वह व्यक्ति भविष्य में उसको समान मूल्य देने में समर्थ तथा तत्पर होगा। भविष्य में उस वस्तु का मूल्य उसको अवश्य मिल जायगा, यह उसका दृढ़ विश्वास होता है।

साख के मूल भूत तत्व
(Fundamental Elements of Credit)

साख के निम्न तीन मूल भूत तत्व हैं:—

(१) विश्वास—साख के लिये विश्वास वह नीव है जिस पर साख रूपी इमारत खड़ी की जाती है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को माल उधार पर बेचते समय अथवा ऋण देते समय हमेशा यह विश्वास रखता है कि उसका रुपया उसको एक निश्चित अवधि के बाद अवश्य मिल जायगा। यदि उसको यह विश्वास न हो तो वह लेन देन कभी नहीं करेगा। यह विश्वास क्रेता की अथवा ऋणी की इमानदारी, चरित्रशीलता तथा रुपया चुकाने की क्षमता को देख कर किया जाता है। जहाँ इन चीजों में से किसी एक का भी अभाव होगा, विश्वास उत्पन्न नहीं हो सकता, और विश्वास की पूर्ति न होने पर साख पर रुपया भी नहीं मिल सकता।

(२) समय—साख में मुख्य बात यही है कि जिस भुगतान को हम अभी करने जा रहे थे, उसको अभी न कर कुछ समय के बाद करते हैं। यदि यह भुगतान कुछ समय बाद न कर अभी ही कर दें, तो साख का प्रश्न ही नहीं उठेगा। फिर तो यह नकदी व्यवाहर (Cash transaction) समझा जायेगा। इसलिये साख का दूसरा मूलभूत तत्त्व समय है: जैसा हम ऊपर कह चुके है कि विलम्बित विनिमय का नाम ही साख है।

(३) राशि—साख और राशि सापेक्षित शब्द हैं। कोई व्यक्ति अमुक राशि के लिये विश्वसनीय माना जा सकता है किन्तु उससे अधिक के लिये नहीं। इसलिये राशि या रकम भी एक मूलभूत तत्त्व है।

कई बार ऋण दाता ऋण देते समय केवल ऋणी की सदचरित्रता पर ही निर्भर नहीं करता वल्कि वह उससे कुछ धरोहर भी माँगता है। इस दशा में वह धरोहर (Security) भी साख के लिये मूल भूत तत्व बन जाती है।

साख के भेद (Kinds of Credit)

साख के भेद उसके उपयोगानुसार किये जा सकते हैं। साख मुख्यतया दो बातों के लिये उपयोग में लाई जाती है—उपभोग के लिये अथवा उत्पादन के लिये। जब साख का उपभोग सम्बन्धी वस्तुओं। जैसे नित्य प्रति के जीवन निर्वाह के लिये अन्न, वस्त्र आदि खरीदने के लिये किया जाता है, तो इसको उपभोगसाख (Consumption credit) कह कर पुकारते हैं। किन्तु जब इसका उपभोग उत्पादन कार्यों के लिये होता है, तो इसको उत्पादन साख (Production credit) कहते हैं।

उत्पादन साख को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है—(१) व्यापारिक साख (Commercial credit). और (२) औद्योगिक साख (Industrial credit) जब साख का आदान प्रदान किसी भी व्यक्ति की व्यापारिक स्थिति के आधार पर व्यापारिक कार्यों के लिये होता है, तो इसे व्यापारिक साख कहते हैं। किन्तु जब साख का उपयोग औद्योगिक कार्यों के लिये होता हैं। तो इसे औद्योगिक साख कहते हैं।

अन्य भेद

साख के अन्य रूप निम्नलिखित हैं—

(१) नकदी साख (Cash credit)—नकदी साख अपने ग्राहक के पक्ष में खोला गया एक चालू खाता (Drawings account) है, जिसमें रुपया ठीक उसी प्रकार निकाला जा सकता है, जिस प्रकार एक साधारण चालू खाते में से। नकदी साख का उपयोग करते समय बैंक, न तो अपने ग्राहक को सारी रकम एक साथ ही दे देता है और न उसके खाते में सारी रकम एक साथ नाम ही लिख देता है, बल्कि ऋण की एक रकम निश्चित कर ली जाती है और ग्राहक को उसकी सुविधानुसार रकम निकलवाने की छूट दे दी जाती है। इसको ब्याज उतनी ही रकम पर देना पड़ता है, जितनी वह समय समय पर बैंक से निकलवाता है, न कि सारी रकम पर। इसलिये साधारण चालू खाते और इस प्रकार से सृजित चालू खाते में केवल यही अन्तर है कि प्रथम खाते में तो ग्राहक को उसके नित्य प्रति के शेष (Balance) पर ब्याज देना पड़ता है। इस प्रकार से यह एक उल्टा चालू खाता है।

(२) पुस्तकीय साख अथवा खाते की साख (Book credit)— पुस्तकीय साख आजकल की बड़ी लोकप्रिय

व्यापारिक साख पद्धति है। इसका सृजन इस प्रकार होता है। जैसे ही क्रेता माल खरीदता है विक्रेता अपनी पुस्तकों में एक प्रविष्टि (Entry) करता है, जिसमें तारीख, माल की किस्म और दर जिस पर माल खरीदा गया है, उसका भी हवाला दे दिया जाता है। इस प्रविष्टि द्वारा ही क्रेता और विक्रेता के बीच लेनदार और देनदार का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और वैधानिक दृष्टि से भी यह प्रविष्टि साख की पूरी सबूत मानी जाती है। क्रेता भी विक्रेता को भुगतान या तो फिर किसी साख, जैसे चेक आदि का उपयोग कर सकता है या नकद में करता है। उधार पर बेचे गये माल के लिखने का यह तरीका सबसे सुगम और शीघ्रगामी ही नहीं है, बल्कि इससे समय की बचत और नकदी भुगतान में बड़ी रकमों को इधर से उधर ले जाने की कठिनाई भी दूर हो जाती है।

(३) बैंक द्वारा साख निर्माण Bank credit — साख निर्माण बैंक का सबसे प्रमुख कार्य है। बैंक को जो रकम अपने ग्राहकों से प्राप्त होती है, उस पर ग्राहकों को कभी कभी किसी भी तादाद में निकलवाने की छूट होने पर भी वे सारी रकम को एक साथ एक ही समय पर नहीं निकलवाते। जैसे जैसे उनको आवश्यकता पड़ती है, अपनी सुविधानुसार निकलवाते रहते हैं। शेष रकम बैंक के पास पड़ी रखते हैं। बैंक भी यह जानकर कि उसके सारे ग्राहक सारी रकम एक साथ एक ही समय नहीं निकलवायेंगे, अपने पास कुछ ही रकम, जो नकदी कोष (Cash Reserve) कहलाती है, रखता है, और शेष वह साख निर्माण के कार्य में लगा देता है, अर्थात, वह इसे दूसरों को अल्प कालीन ऋणों पर दे देता है। कितनी रकम नकदी कोष में रखी जाय और कितनी साख निर्माण के कार्य में लगाई जाय, यह बात देश की परिस्थितियों, लोगों के स्वभावों तथा चैक आदि के उपयोग

पर निर्भर रहती है। यह साख निर्माण का कार्य ही बैंक को अपने खर्चे पूरे कर लाभ कमाने में सहायक होता है।

अब देखना यह है कि बैंक साख निर्माण के कार्य को किस प्रकार सम्पन्न करता है। मान लीजिये बैंक के पास १ लाख रुपये जमा के रूप में आते हैं, और वह उनमें से केवल २०% यानी २० हजार रुपये ही नकदी कोष में रखता है और शेष ६० हजार रुपये व्यापारियों व उद्योगपतियों को अल्प कालीन ऋण पर दे देता है। ये व्यापारी व उद्योगपति भी सारी रकम की एक साथ आवश्यकता न होने से इस रकम को बैंक में ही जमा रखते हैं, और समय समय पर अपनी आवश्यकतानुसार निकलवाते रहते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि बैंक जो ऋण देता है उसको नकदी में नहीं देता बल्कि उससे अपनी जमा बढ़ा लेता है, जैसा ऊपर के उदाहरण से प्रकट है कि बैंक ने अपनी १ लाख की जमा से १ लाख ६० हजार की जमा उत्पन्न करली। दूसरे शब्दों में जमा से ऋण बढ़ते हैं और ऋणो से जमा। इसी बात को एक विद्वान ने इन शब्दों में व्यक्त किया है-'ऋण जमा के बच्चे हैं और जमा ऋण के बच्चे।

"Loans are the children of deposits and deposits are the children of loans."

हम देखते हैं कि बैंक की जमा दो प्रकार से बढ़ती है। प्रथम तो नकदी जमा (Cash Deposits) द्वारा, द्वितीय, साख जमा (Credit Deposits) द्वारा। साख जमा की अधिकतम राशि नकदी जमा में से नकदी कोष कम कर देने से मालूम होती है। इसका यह अर्थ हुआ कि साख जमा के लिये नकदी जमा एक आधार का कार्य करती है, जिसके बिना साख जमा का सृजन नहीं किया जा सकता, बैंक इस साख जमा का सृजन या तो

अधिनिकास (Over draft) के रूप में या नकदी साख (Cash credit) के रूप में करते हैं।

बैंक साख निर्माण का कार्य चैक पद्धति द्वारा करते हैं। बैंक अपने ग्राहकों को रुपया निकलवाने के लिये चैक की सुविधा देता है। ये चैक विनमय साध्य पुर्जे (Negotiable Instrument) होने के कारण पारस्परिक भुगतान में एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति द्वारा आसानी से लिये दिये जाते हैं। मान लीजिये A एक ५००) रुपये का चैक अपने लेनदार B को देता है, B, C को C, D को, और इस प्रकार वह K के पास पहुंच हैजाता है। इसका यह अर्थ हुआ कि एक ५००) के चैक ने १० व्यक्तियों के भुगतान का कार्य किया अथवा यह ५००) रुपये का चैक ५०००) रुपये की साख मुद्रा के बराबर हुआ। इस प्रकार बैंक साख का अथवा साख मुद्रा का सृजन करते हैं। यही कारण है कि हम मुद्रा परिमाण सिद्धान्त के सभी कारण में मुद्रा पक्ष में न केवल मुद्रा और उसकी गति को ही, बल्कि साख मुद्रा व उसकी गति को भी सम्मिलित करते हैं।

बैंक साख निर्माण का कार्य अपनी कागजी मुद्रा (Bank notes) प्रचलित करके भी करती है। ये बैंक नोट बैंकों की साख पर ही चलते हैं और विनिमय माध्यम का पूरा पूरा कार्य करते हैं। हमारे देश में रिजर्व बैंक के अतरिक्त नोट निकालने का अधिकार और किसी बैंक को नहीं है।

साख मुद्रा की विशेषतायें

साख मुद्रा में दूसरी मुद्राओं की भाँति निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है:—

(१) साख मुद्रा ऐसी संस्था द्वारा प्रचलित की जानी चाहिये जिस में सबका विश्वास हो।

(२) साख मुद्रा ऐसी हो जिसको प्रत्येक व्यक्ति आसानी से पहिचान सके।

(३) साख मुद्रा को जाली रूप दिया जाना कठिन हो।

(४) साख मुद्रा सुविधा जनक अंशों (Denominations) में विभाजित हो।

उपरयुक्त बातों के होते हुये भी, साख मुद्रा का धातु मुद्रा की तरह चलन नहीं होता, क्योंकि साख मुद्रा में कोई वास्तविक मूल्य नहीं होता। साख मुद्रा तो साख मुद्रा निकालने वाली संस्था की आर्थिक स्थित व प्रसिद्धि के आधार पर चलती है। इसका स्वीकार किया जाना ऐच्छिक है, अनिवार्य नहीं। फिर भी हम देखते हैं कि बैंक चैक व बैंक ड्राफ्ट की अपेक्षा बैंक नोट भुगतान में अधिक आसानी से लिये और दिये जाते हैं। अर्थात बैंक नोटों में चेक आदि की अपेक्षा सुग्राह्यता (Acceptability) अधिक मात्रा में पाई जाती है।

साख और पूँजी—अब प्रश्न यह होता है कि क्या साख का सृजन पूँजी का सृजन है। इसके लिये दो विचार धारायें मिलती हैं। मैक्लाइड (Macleod) के विचारानुसार साख पूँजी का सृजन करती है साख और मुद्रा दोनों ही पूँजी हैं। किन्तु जान स्टूअर्ट मिल और रिकार्डो इसके विपरीत हैं। मिल कहता है कि साख को पूँजी नहीं कहा जा सकता। वह तो केवल दूसरों की पूँजी को उपयोग में लाने की अनुमति मात्र है। रिकार्डो भी यही कहता है कि साख पूँजी का सृजन नहीं करती। वह तो केवल यह निश्चय करती है कि पूँजी का उपयोग किसके द्वारा हो। अब देखना यह है कि वस्तु स्थिति क्या है? निस्सन्देह इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता।

साख निर्माण शक्ति की सीमा—

यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि बैंक जो साख निर्माण का कार्य करती है उसकी कोई सीमा भी है अथवा नहीं, और है तो कहाँ तक ? यह हम पहिले बता चुके हैं, कि बैंक के पास जो रकम जमा के रूप में आती है, उसका समय समय पर भुगतान करने के हेतु उसको नकदी कोष (Cash reserve) रखना पड़ता है। एक तो यह नकदी कोष का परिमाण बैंक की साख निर्माण शक्ति को निर्धारित करता है। दूसरे, प्रत्येक अनुसूचित बैंक को अपनी जमा का कुछ प्रतिशत (अवधि जमा का २ प्रतिशत और चालू जमा का ५ प्रतिशत) केन्द्रीय बैंक के पास रखना पड़ता है। यह रकम जमा के समानुपात में घटती बढ़ती है। इसलिये यह प्रतिशत भी साख निर्माण के कार्य को सीमित रखती है। तीसरे केन्द्रीय बैंक की साख नीति, जो बैंक दर, मुद्रा बाजार की क्रियायें आदि से शासित होती हैं, साख निर्माण की सीमा को निर्धारित करती है। चौथे, कागजी मुद्रा को परिवर्तनीय बनाये रखने के लिये, जिस प्रतिशत में धातु निधि रखी जाती है, वह प्रतिशत भी साख निर्माण को निर्धारित करती है। पाँचवें, अधिकांशतः ऋण सदैव किसी न किसी प्रकार की जमानत पर ही दिये जाते हैं और यह जमानत सोना चाँदी या अच्छी प्रतिभूतियों के रूप में ही स्वीकार की जाती है। इसलिये लोग किस प्रकार की जमानत कितने अंश में देने में समर्थ हैं। इस प्रकार भी साख निर्भर रहता है। अंत में यह तो कहा ही जा सकता है कि सब कुछ रकम जमा कराने वालों पर निर्भर रहती है। यदि वे रकम जमा ही न करायें, तो बैंक साख निर्माण किस तरह करे। इसलिये, वास्तव में तो साख के निर्माण करने वाले जमा कराने वाले हुये न कि बैंक। बैंक स्वयमेव कुछ नहीं कर

सकता। यह तो एक प्रकार उस रकम को, जो बेकार तथा अनुपयोगी पड़ी है, उसको उपयोगी कार्यों में लगाने में सहायता करता है। हाँ यह अवश्य है कि यह सहायता भी नितान्त आवश्यक है कि यदि कर्जा इस रकम को, जिसको अन्यथा अनुपयोगी पड़ी रखता है, उत्पादन के उद्योग में लगाता है। तो इस दशा में साख पूँजी का रूप अवश्य ले लेगा। किन्तु साधारणतया यह कहना अनुचित न होगा कि साख ही पूँजी है, अथवा साख का सृजन पूँजी का सृजन है। साख तो केवल एक साधन मात्र है, साध्य नहीं। साख को उत्पादन का एक घटक (Factor of production) नहीं माना जा सकता। क्योंकि यह भूमि श्रम आदि की भाँति स्वयमेव उत्पादन में योग नहीं देती। यह पूँजी को उसी प्रकार अधिक कुशल (Efficient) बना देती है, जिस प्रकार श्रम का विभाजन श्रम को कुशल बना देता है।

साख से लाभ

(१) साख से साखपत्रों का सृजन होता है। ये साख पत्र धात्विक मुद्रा के स्थान पर धात्विक मुद्रा की भाँति ही काम करते हैं। साख पत्रों से हमको कई लाभ हैं, और वे इस प्रकार हैं:—

(क) साख पत्रों के चलन से धातु की बचत होती है और ये साख पत्र धातु मुद्रा की अपेक्षा एक सस्ता विनिमय माध्यम सिद्ध होता है।

(ख) धातु मुद्रा के विपरीत साखपत्र उठाने धरने में बड़े सुविधाजनक होते हैं।

(ग) साखपत्रों से दूरस्थ स्थानों के भुगतान सुगम हो जाते हैं।

(२) साख से मूल्यों का उतार चढ़ाव भी कम हो जाता है। जब कभी मुद्रा की माँग बढ़ती है, बैंक साख के रूप में

इसे उत्पन्न कर देते हैं और जब मुद्रा की माँग कम हो जाती है, तो वे उसे सिमेट लेते हैं।

(३) युद्ध आदि के समय देश की सरकार अपने आर्थिक संकट को टालने के लिए साख का उपयोग करती है और वह ऐसा करने में सफल भी होती है।

(४) साख से पूँजी की उत्पादन शक्ति बढ़ती है। क्योंकि साख द्वारा पूँजी उन व्यक्तियों से, जो इसका समुचित उपयोग नहीं कर सकते, उन व्यक्तियों के पास पहुंच जाती है, जो इसको उत्पादन कार्य में लगाकर इसका सदुपयोग कर लेते हैं।

(५) साख के कारण जब जन समुदाय की बचत (Savings) केन्द्रित हो जाती है तो इससे बचत करने वाले और बचत का उपयोग करने वाले दोनों लाभ उठाते हैं। बचत करने वालों को तो ब्याज के रूप में लाभ होता है और बचत का उपयोग करने वालों को अधिक पूंजी मिल जाती है जिससे वे अधिक उत्पादन कर अधिक लाभ कमाते हैं।

(६) साख निर्माण द्वारा स्थगित भुगतान (Deferredpayment) सरल और सुलभ हो जाते हैं। लेनदार और देनार दोनों को लाभ होता है।

साख से हानि

(१) साख की आवश्यकता से अधिक वृद्धि होने पर सट्टा (Speculation) अधिक होने लगता है, जो समाज और देश के लिए बड़ा घातक सिद्ध होता है।

(२) कभी कभी साख के आधिक्य के कारण उत्पादन का आधिक्य (Over Production) होजाता है, जिससे देशमें भारी मन्दी (depression) आजाने के कारण व्यापारी वर्ग को बड़ी हानि होती है।

(३) जब साख का उपयोग उत्पादन कार्यों के लिए न होकर उपभोग के लिए होता है, तो इस से फिजूल खर्ची बढ़ती है। लोग अनावश्यक ऋण लेकर उसका अपव्यय करने लगते हैं।

(४) साख का उपभोग होने से कभी कभी अच्छे और बुरे व्यापारी का भेद मालूम करना कठिन होजाता है; क्योंकि साख के उपयोग द्वारा कमजोर आर्थिक स्थित वाला व्यक्ति भी अच्छा नजर आने लगता है।

(५) कभी कभी साखपूँजी वाद और उस से उत्पन्न अन्य बुराइयों, जैसे अत्यधिक स्पर्धा तथा श्रम शोषण आदि कारण बन जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जब साख का उपयोग अत्यधिक होता है, तो उस के बड़े घातक परिणाम होते हैं। इस लिए यह आवश्यक हो जाता है कि साख का उपभोग व्यापारिक एवं औद्योगिक आवश्यकताओं के अनुसार ही किया जाय। दूसरे शब्दों में साख के आधिक्य व उस के बुरे परिणामो से बचने के लिए साख का सुनियन्त्रित व सुसंचालित होना आवश्यक है।

साख पुर्जे (C edit Instruments)

वैसे तो साख का मूल आधार विश्वास माना जाता है किन्तु इस विश्वास की कोई सीमा निर्धारित नहीं होती। समाज में अच्छे और बुरे सभी प्रकार के पुरुष होते हैं और रात दिन विश्वासघात के उदाहरण भी देखने में आते हैं। इस लिए

इस साखको कोई ठोस रूप दिय जाना अनावश्यक है, जो इस बात का द्योतक हो कि अमुक व्यक्ति ने अमुक व्यक्ति से इतना ऋण लिया। यह ठोस रूपी तभी दिया जा सकता है जब यह चोज लिखित में हो। इस लिखित प्रमाण को ही जो साख का द्योतक है, हम साख पुर्जा कह कर पुकारते हैं। इस लिए साखपुर्जा वह लिखित पुर्जा हुआ जिस के आधार पर ऋण का आदान प्रदान होता है। और जो ऋण दाता व ऋणी के वोच पारस्परिक झगड़ा होने पर न्यायालय द्वारा साख का एक ठोस प्रमाण माना जाता है। ये साखपुर्जे कई प्रकार के होते हैं किन्तु इस के मुख्य रूप निम्न लिखित हैं.—

१—चैक (Cheques)

२—विनिमय बिल (Bills of Exchange)

३—प्रण-पत्र (Promissory Notes)

४—हुँडियाँ (Hundies)

इन में से चैक, विनिमय विल और प्रण-पत्र तो विनिमय साध्य पुर्जे (Negotiable instruments) की गिनती में आते हैं, किन्तु हुंडियाँ नहीं। अब हमें इस के पूर्व कि हम उपर्युच साख पुर्जों का अलग अलग विस्तृत वर्णन करें, यह समझना आवश्यक है कि विनिमय साध्य पुर्जा किसे कहते हैं और इसकी क्या क्या विशेषतायें होती हैं। विनिमय साध्य पुर्जों के विधान (Indian Negotehle Instruments Act) के अनुसार विनिमय साध्य पुर्जे उन समस्त चैकों, विलों तथा प्रण-पत्रों को कहते हैं, जिन का भुगतान वाहक (Bearer) अथवा जिस को बिल अथवा चैक के भुगतान प्राप्त करने का आदेश दिया गया है,

(५) इस का भुगतान सदैव मांगने पर (On Demand) होता है।

(६) इस का भुगतान इस में लिखित व्यक्ति अथवा उसके आदेशानुसार अन्य किसी को अथवा वाहक को, अर्थात जिस किसी के पास चैक हो उस को दिया जाना आवश्यक है।

प्रत्येक चैक में इन सब बातों का होना आवश्यक है। यदि इन में से कोई एक भी बात का अभाव हुवा, तो यह चैक नहीं कहला सकेगा।

चैक के पक्ष (Parties)

चैक में साधारणतया तीन पक्ष होते हैं, किन्तु यदि चैक स्वयं को भुगतान वाला चैक है, तो केवल दो ही पक्ष रह जाते हैं। चैक के पक्ष निम्न लिखित हैं :—

(१) लिखने वाला (Drawer) चैंक द्वारा वैंक को लिखित आज्ञा देने का अधिकार केवल वैंक के ग्राहक को ही होता है। इस लिये लिखने वाला वह व्यक्ति हुवा जिस का वैंक में खाता हो। यह लिखित आज्ञा प्रायः एक निश्चित फार्म पर ही, जिसे हम चेक कहते हैं, और जो वैंक द्वारा अपने ग्राहक को दिये हुये होते हैं, दी जाती है। लिखने वाले का चैक पर हस्ताक्षर होना स्वाभाविक है।

(२) देनेवाला (Drawee)—चेक को यह विशेशता होती है कि इसमें देयेवाला अथवा वह पक्ष, जिस पर चेक लिखा जाता है, सदैव एक निर्दिष्ट वैंक ही होता है। यह बात इसको विनिमय बिल से अलग करती है। देनेवाले वैंक का नाम चेक पर छपा होता है।

(२) पायन्दा (Payee)—पायन्दा, अर्थात पानेवाला, वह व्यक्ति होता है, जिसका नाम चेक पर लिखा रहता है और जो भुगतान प्राप्त करने का अधिकारी होता है। कभी कभी पायन्दा चेक का लिखने वाला स्वयं ही सकता है। इसमें Pay शब्द के आगे Self लिख दिया जाता है। पायन्दा का नाम सादा ढंग से, बिना किसी प्रकार के विशेषण के लिखा जाना चाहिये।

चेक का नमूना (Specimen of cheque).

Counter Foil
No. S. B 64077
Rs. 500/-
Name Shri P.C. Hada

Last Balance
Deposit
Total
Withdrawl
Balance
Date Aug. 23.1952

A/C No 1764

Seal of the Bank

Enlp... Fol......

S B. 64077

No. Udaipur 11th Aug. 1952

The Bank of Rajsthan Ltd.
(Incorporated In Udaipur)
दी बेंक ओफ राजस्थान लिमिटेड

Pay Shri P. C. Hada *or Bearer*

Rupees Five hundred only

Rs. 500/- H. C. Hada.

ऊपर हमने एक चेक का नमूना दिया है। इस कटी हुई सीधी लकीर का दाहिना भाग ही चेक कहलाता है। इसका बाँया भाग जो ऊपर दिखाया गया है प्रतिरूप (Counter foil) कहलाता है। यह प्रतिरूप लिखने वाले की चेक बुक में उसकी स्मृति के लिये रख लिया जाता है और रूप (Foil) अथवा चेक पायन्दा को दे दिया जाता है। यहाँ यह स्पष्ट है, कि लिखने वाले श्री एस० स० हाडा हैं, जिनके हस्ताक्षर नीचे दाहिनी ओर अंग्रेजी में दिखाये

गये हैं। पायन्दा की पी० सी० शाह है। जिसका नाम बीच में Pay शब्द के आगे लिखा हुआ है। भुगतानवाला बैंक ऑव राजस्थान लिमिटेड उदयपुर है, जिसका नाम मोटे अक्षरों में ऊपर छपा हुआ है। अब हमें यह जानना आवश्यक है कि चेक लिखते समय किन किन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

चेक लिखते समय सावधानियाँ

(१) चेक में सर्व प्रथम खाते की संख्या १०६४ दी हुई है। यह संख्या बैंक की सुविधा के लिये दी जाती है। किन्तु कभी कभी इसका दिया जाना आवश्यक नहीं माना जाता।

(२ दूसरी बात, जो प्रत्येक चेक में सर्व प्रथम दी जाती है, और लिखा दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है, वह है तारीख। तारीख हमेशा वही डालनी चाहिये, जिस दिन चेक लिख दिया जाय। किन्तु कभी कभी चेक पर पहिले की तारीख भी डाल दी जाती है। इस दशा में इस चेक को पिछली तारीख वाला चेक (Ante dated cheque) कहकर पुकारते हैं। जब इस चेक पर आगे की तारीख डाल दी जाती है, तो यह आगामी तारीख वाला चेक Post dated cheque कहलाता है और इसका भुगतान उस तारीख से पूर्व नहीं होता। चेक पर ६ महीने से पहिले की तारीख होने पर, वह चेक पुराना (Stale) हो जाता है और उस का भुगतान, जब तक उस पर लिखने वाले द्वारा पुनः तारीख न डाल दी जाय, नहीं होता।

(३) पायन्दा का नाम स्पष्ट और बिना किसी उपाधि आदि के सरल ढंग से लिखना चाहिये।

(४) चेक पर लिखी गई रकम अंकों में और शब्दों में समान होनी चाहिये। दोनों में अन्तर होने पर भुगतान नहीं दिया जाता।

(५) लिखने वाले के हस्ताक्षर ठीक उसी प्रकार से होना आवश्यक है जिस प्रकार बैंक नमूने के हस्ताक्षर (Specimen Signature) पहिले दिये हुए हैं। हस्ताक्षर का मिलना अत्यन्त आवश्यक है। हस्ताक्षर नहीं मिलने पर भुगतान नहीं दिया जाता।

(६) चेक हमेशा पायन्दा की इच्छानुसार काटा जाना चाहिये यदि वह चाहता है कि चैक का भुगतान किसी भी व्यक्ति को मिल सके, तो पायन्दा के नाम के आगे जो (Bearer;शब्द दिया हुआहै, उसको काटना नहीं चाहिये। काट देने पर उसका भुगतान केवल पायन्दा को और वह भी, उसके बैक से सुपरिचित होने पर ही मिल पाए गा।

(७) अंकों में जो रकम लिखी जाती है वह रुपये शब्द के बिलकुल निकट से प्रारम्भ करनी चाहिये और अंकों की पारस्परिक दूरी भी समान होनी चाहिये, जिस से किसी व्तक्ति को रकम में परिवर्तन कर जाल साजी करने का अवसर ही न मिले।

(८) चैक हमेशा स्याही से लिखा जाना चाहिये पेंसिल से नहीं।

चेक का न सिकारना

ऊपर हमने कुछ वातों की ओर इशारा किया है कि इन वातों के पूरा न होने पर चैक का भुगतान

नहीं किया जाता। चैक का भुगतान न होने का नाम ही चैक का ना सिकारना या चैक का तिरस्कृत (dishonour) होना, है। जिस चेक पर भुगतान देने से इनकार कर दिया जाता है वह चेक नासिकारा गया चेक अथवा तिरस्कृत चैक (dishonoured Chegue) कहलाता है। निम्न लिखित अवस्थाओं में चैक नहीं सिकारा जाता है। बैंक उस पर तत्सम्बन्धी कारण लिख कर लौटा देता है :—

(१) जब चैक लिखने वाले के खाते मेंपर्याप्त रकम नहीं हो इस दशा में बैंक निम्नलिखित बातों में से कोई भी बात लिख कर विना भुगतान लौटा देता है—

(क) रकम यथेष्ट नहीं है (Insufficient Funds), अथवा

(ख) प्रवन्ध नहीं किया गया (Not arranged) अथवा

(ग) लिखने वाले से पूछिये (Refer to drawer).

इनमें से प्रथम बात सीधो ग्राहक की आर्थिक स्थित पर प्रकाश डालती है। इस लिये इसका प्रयोग वहुत कम होता है। अतः अधिकतर तीसरी व दूसरी बात ही लिखी जाती है।

(२) जब लिखने वाले ने अधिनिकासके लिए पहिले से प्रवन्ध नहीं किया हो, अथवा जिस रकम के लिए प्रवन्ध किया हो, उससे अधिक का चैक लिखा गया हो। इस दशा में निम्न दोनों बातें लिखा जाती हैं—

(क) प्रवन्ध नहीं किया गया (Not arranged for), अथवा (ख) प्रवन्ध से अधिक है (Exceeds arrangement),

(३) जब लिखने वाले के द्वारा जमा कराए गए चैकों का रुपया वसूल होकर नहीं आया हो और उसने यह समझा कर कि

कि रकम वसूल हो गई होगी, चेक लिख दिया हो, उस समय बैंक यह लिख देता है—"वसूली अभी तक नहीं हुई है, चैक फिर प्रस्तुत करिए Effeets not yet cleared, pleas present again)."

(४) जब चेक पर किये गए हस्ताक्षर नमूनेके हस्ताक्षरों से नहीं मिलते। इस दशा में यही बात लिख दी जाती है, कि लिखेने वालेके हस्ताक्षर नहीं मिलते (Drawer's Signature differs)

(५) जब चेक पर लिखी गई रकम शब्दों व अंकों में भिन्न हो। इस दशा में भी यही बात स्पष्ट लिख दी जाती है कि शब्दों अंकों में रकम भिन्न है (Amount in worrds and figures ohfter)

(६) जब चेक पर आगामी तिथि अथवा ६ महीने पहिले की तारीख लिखी गई हो। प्रथम दशा में तो उस पर आगामी तारीख फिर से प्रस्तुत करो (Post dated, pleaae present again) लिख दिया जाता है। दूसरी दशा में उस पर पुराना चेक (Stale cheque) लिख दिया जाता है, जिसका यह अर्थ है कि इस पर लिखनेवाले से फिर से हस्ताक्षर नई तारीख के साथ करवाना आवश्यक है।

(७) जब चेक विकृत हो गया हो अथवा बहुत बुरी दशा में हो गया हो उस समय उस पर यह लिख दिया जाता है—'चेक विकृत हो गया है (Cheque is mutilated)' इसका यह अर्थ है कि चेक का नवीनकरण (Renewai) आवश्यक है।

(८) जब चेक पर लिखने वाला हस्ताक्षर करना भूल गया हो अथवा चेक में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये गये हों, किन्तु उनके नीचे लिखेने वाले के पूरे हस्ताक्षर नहीं किये गये

हों, उस समय उस पर यह लिखा जाता है—'लिखने वाले के हस्ताक्षर आवश्यक हैं (Drawer's signature required).'

(९) जब चेक रेखांकित चेक (Crossed cheque) हो और वह बैंक के मारफत प्रस्तुत नहीं किया गया हो, उस समय यह लिख दिया जाता है—'बैंक के मारफत प्रस्तुत करिये (Present through a bank).'

(१०) जब चेक का भुगतान करने के लिये लिखने वाले ने मना कर दिया है। उस समय यह लिखते हैं—

'लिखने वाले ने भुगतान रोक दिया है (Payment stopped by the drawer).'

(११) जब चेक लिखने वाले का स्वर्गवास हो गया हो —"(drawer deceased)."

(१२) जब लिखने दिवालिया घोषित कर दिया गया हो उस समय बैंक लिख देता है—"Drawer declared bankrupt".

(१३) जब न्यायालय द्वारा चेक के भुगतान पर रोक लगा दी गई हो (Garnishi order issued).

महत्वपूर्ण परिवर्त्तन (Material alterations).

ऊपर हमने आठवें शीर्षक के अन्तरगगत महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तनों का उल्लेख करते समय बताया है कि इन पर लिखने वाले के पूरे हस्ताक्षर होना आवश्यक है। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन से हमारा क्या आशय है और वह किस किस दशा में होता है।

वे परिवर्त्तन जिनसे चेक के विभिन्न पक्षों के पारस्परिक सम्बन्ध व दायित्व बदल जावें, महत्व पूर्ण परिवर्तनों की गिनती में आते हैं।

निम्नलिखित परिवर्तन महत्वपूर्ण परिवर्तन कहलायेंगे।

१—तारीख का परिवर्तन।

२—स्थान का परिवर्तन।

३—राशि अथवा विनिमय माध्यम का परिवर्तन।

४—पानेवाले के नाम में परिवर्तन।

५—आदेश चेक का वाहक चेक में बदलना।

६—विशेष रेखांकित चेक का सामान्य रेखांकित चेक में बदलना।

यह प्रकट है कि इन सब परिवर्तनों से चेक का स्वरूप ही बदल जाता है, जिसका प्रभाव चेक के समस्त पक्षों पर पड़ता। इसलिये उक्त परिवर्तनों में सबकी सम्मति होना आवश्यक है। किन्तु वैधानिक दृष्टि से इनपर केवल लिखने वाले हस्ताक्षर ही होने आवश्यक हैं। बैंक को भुगतान करते समय यह देख लेना आवश्यक है कि उसके महत्व परिवर्तन तो नहीं है। यदि हों, तो उन पर लिखने वाले के हस्ताक्षर हैं या नहीं। यदि हस्ताक्षर नहीं हों, तो भुगतान नहीं करना चाहिये।

चेक के भेद

वाहक चेक (Bearer cheque)—वाहक चेक वह चेक होता है, जिसका भुगतान बैंक किसी भी प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति को बिना किसी सोच विचार के कर देता है और जिसका

स्वामित्व वेचान द्वारा हस्तान्तरित न होकर केवल सुपुर्दगी द्वारा हस्तांतरित हो जाता है। इस प्रकार के चेक पर या तो पाने वाले के नाम के आगे 'Bearer' शब्द लिखा रहता है अथवा इसका वेचान सामान्य वेचान (General endorsement) के रूप में होता है। इसकी यही दो पहिचान हैं।

आदेश चेक (Order cheques)—आदेश चेक वह चेक है, जिसका भुगतान उसी व्यक्ति को मिलता है, जिसका नाम उसमें लिखा हो अथवा उसके आदेशानुसार किसी दूसरे व्यक्ति को। जिस व्यक्ति को भुगतान किया जाय उसका बैंक से परिचित होना आवश्यक है। इस प्रकार के चेक में 'Bearer' शब्द कटा रहता है और साथ ही इसके हस्तान्तरण के लिये वेचान होना आवश्यक है।

खुला चेक (Open cheques)— जिस चेक पर कोई रेखाङ्कन नहीं होता, वह चेक खुला चेक कहलाता है। इस चेक में खो जाने व चोरी चले जाने का बड़ा भय रहता है।

रेखांकित चेक (Crossed cheque)—जिसके चेक पर दो टेढ़ी समानान्तर रेखायें खिंची होती हैं वह चेक रेखांकित चेक कहलाता है। इसका भुगतान केवल बैंक की मारफत ही हो सकता है, अन्यथा नहीं।

प्रमाणित चेक (Marked cheque)—कभी कभी जब रकम पाने वाला चेक को बैंक के पास ले जाता है तो बैंक उस पर लाल स्याही से हस्ताक्षर करके लौटा देता है। इस का यह अर्थ है कि बैंक में उस दिन चेक लिखने वाले के खाते में पर्याप्त रकम थी। जब इस में तारीख भी निश्चित कर दी जाय तो, इस का यह अर्थ होगा

कि इस तारीख तक उसका भुगतान निःसंकोच किया जा सकता है। बाद में बैंक अपने ऊपर दायित्व से बच जाता है।

पुराना चेक (Stale Cheque) चेक

यह चेक ६ महीने से पहले की तारीख वाला चेक होता है, इस लिए खारिज चेक माना जाता है। इस के पुनर्जीवन के लिए इस पर लिखने वाले के फिर से नई तारीख व सहित हस्ताक्षर होना आवश्यक है। इस के बिना बैंक इसका भुगतान नहीं करता।

विकृत चेक (Mutilated cheques)—जब चैक फट जाय, सिकुड़ जाय अथवा खराब हो जाय तो इसे इस नाम से पुकारते है। ऐसे चेक का भी भुगतान नहीं होता।

चैक का रेखांकन (Crossing of a Cheques)

ऊपर रेखांकित चेक का उल्लेख कर आए हैं। जब चैक पर दो टेढ़ी समानान्तर रेखायें नीचे से ऊपर की ओर जाती हुई खींच दी जाती हैं, तो यह चेक का रेखांकन कहलाता है। चैक का रेखांकन चेक को सुरक्षित बनाने की दृष्टि से किया जाता है। वैसे तो चेक को सुरक्षित बनाने के लिए हर एक वाहक चेक न लिख कर एक आदेश चेक भी लिख सकते हैं, किन्तु एक आदेश चेक उतना सुरक्षित नहीं माना जा सकता, जितना कि रेखांकित होता है। क्योंकि रेखांकित चेक की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उसका भुगतान बैंक किसी व्यक्ति विशेष को न देकर केवल दूसरे बैंक को ही दे सकता है, अर्थात रेखांकित चैक का भुगतान केवल बैंक की मारफत ही प्राप्त किया जा सकता है रेखांकन दो प्रकार का होता है : (१) समान रेखांकन (Genesrl Crossing); (२) विशेष रेखांकन (Special Coossing)

सामान्य रेखांकन—सामान्य रेखांकन निम्न चार प्रकार का होता है। इस की केवल एक ही विशेषता होती है और वह है बैंक के मारफत भुगतान होना। नीचे प्रथम उदाहरण में कुछ नहीं लिखा है और दूसरे में '& Co.' शब्द लिखे हैं। इन दोनों में कोई अन्तर नहीं होता। दोनों का आशय एक ही है, जो ऊपर बता दिया गया है। तीसरे उदाहरण में हम देखते हैं कि अविनिमय साध्य (Not Negotiable) शब्द लिखे गये हैं। ये शब्द बड़े महत्वपूर्ण होते हैं। इन का अर्थ है कि चैक आदि पुर्जों में जो विनिमय साध्यता होती है उस से उक्त पुर्जे को वंचित कर साधारण वस्तुओं की श्रेणी में रख दिया गया है। साधारण वस्तुओं के सम्बन्ध में यह नियम है कि चोरी की वस्तु जिस व्यक्ति के पास पाई जाती है, वह चोर माना जाता है और उस वस्तु पर उस को अच्छा अधिकार नहीं मिलता, चाहे उस व्यक्ति ने इस को समूल्य और सद् विश्वास में ही क्यों न प्राप्त की हो। जबकि विनिमय साध्य पुर्जों में उक्त प्रकार से प्राप्त करने वाले व्यक्ति को हस्तान्तर कर्त्ता का अधिकार दोष पूर्ण होने पर भी अच्छा अधिकार मिल जाता है। इस के यह अर्थ हुये कि इस प्रकार के रेखांकित चैक प्राप्त करने वाले को आगाह किया जाता है कि उस को हस्तान्तर-कर्त्ता का अधिकार अच्छा है, यह जान कर ही चैक लेना चाहिये, नहीं तो उस का अधिकार हस्तान्तर कर्त्ता के अधिकार जैसा ही होगा। यहाँ इन शब्दों का यह अर्थ कभी न लगाना चाहिये कि उक्त पुर्जा हस्तान्तरित ही नहीं हो सकता, बल्कि

यह हस्तान्तरित होता है, किन्तु सावधानी के साथ। चौथे उदाहरण में जो पाने वाले के खाते में ही (Account Payee only) शब्द लिखे हैं, उस का अर्थ है कि रकम पाने वाले के खाते में ही जमा हो सकती है, नकदी नहीं दी जा सकती। इस प्रकार का रेखांकन तब किया जाता है जब यह निश्चित हो कि पाने वाला बैंक में खाता रखता है। यह खाता किसी भी बैंक में हो सकता है।

सामान्य रेखांकन के उदाहरण

& Co.

अविनिमय साध्य
Not Negotiable

पानेवाले के खाते में ही
A/c Payee only

१ २ ३ ४

विशेष रेखांकन—विशेष रेखांकन में सामान्य रेखांकन की बातों के अतिरिक्त, एक बात का और उल्लेख होता है और वह है किसी खास बैंक का नाम। इस का यह अर्थ होता है कि चैक का भुगतान निर्दिष्ट बैंक की मारफत ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। यह बैंक का उल्लेख तभी किया जाता है, जब यह निश्चित किया हो कि

प्राप्त करने वाले का अमुक बैंक में खाता है। खाता न होने पर ऐसे व्यक्ति को हस्तान्तरण करना आवश्यक है जिस का उस बैंक में खाता हो।

विशेष रेखांकन के उदाहरण

१	२	३	४
राजस्थान बैंक लि०	राजस्थान बैंक लि०	राजस्थान बैंक लि० 'अविनिमय साध्य'	राजस्थान बैंक लि० 'पायन्दा के खाते में ही'

रेखांकन कौन कर सकता है?—चैक पर रेखांकन चैक का लिखने वाला कर सकता है, और यदि लिखने वाले ने चैक को रेखांकित नहीं कर रखा है, तो पाने वाला अथवा कोई भी वेचान कर्ता कर सकता है। यदि पहिले सामान्य रेखाँकन कर दिया गया हो, तो उस को ये व्यक्ति विशेष रेखाँकन में परिवर्त्तित कर सकते हैं। यदि उस पर 'अविनिमय साध्य' अथवा पाने वाले के खाते में ही' ये शब्द न लिखे हुये हों, तो उन पर उक्त व्यक्ति ऐसा लिख सकते हैं। एक विशेष रेखाँकित चैक को कोई भी बैंक दूसरे बैंक के नाम जो उस का संग्राहक प्रतिनिधि (Collecting

Agent) है उस के नाम पुनः विशेष रेखांकित कर सकता है। किन्तु यह स्मरण रहे कि इस प्रकार का रेखांकन एक बैंक द्वारा उस के संग्राहक प्रतिनिधि के नाम ही से पुनः किया जा सकता है।

खोया हुआ चैक (Lost Cheque)

जब चैक किसी व्यक्ति से खो जाता है, तो उस क्षति के लिये वह स्वयं उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है, जैसे लिखने वाला बेचान कर्त्ता आदि अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाते हैं। चैक के खोते ही उसकी सूचना सम्बन्धित बैंक के पास भेज देनी चाहिए, जिससे गलत आदमी को भुगतान न हो सके। किन्तु बैंक को भुगतान रोकने की आज्ञा देने का अधिकार केवल लिखने वाले को होने के कारण चैक खोने वाले को उसकी सूचना लिखने वाले के पास ही भेजनी चाहिये। यह खोया हुआ चैक यदि किसी यथा विधिधारी (Holder in due course) के पास पहुंच जाता है, तो उस व्यक्ति को भुगतान देना अनिवार्य हो जाता है और उक्त सूचना निरर्थक सिद्ध होती है। किन्तु इसके ये अर्थ नहीं कि सूचना दी ही न जाय। इससे कम से कम यथाविधि धारी को छोड़कर अन्य व्यक्ति को तो भुगतान नहीं हो सकता। बैंक का कर्त्तव्य है कि भुगतान लिखने वाले के आदेशानुसार नियमपूर्वक करना चाहिये, नहीं तो खोये हुये चैक की क्षति बैंक को भुगतनी होगी।

बेचान (Endorsements)

हम यह पढ़ आये हैं कि आदेश चैक के हस्तान्तरण के लिये उसके पीछे की ओर अमुक व्यक्ति को चुकाओ

(Pay to..........)', इस प्रकार का आदेश हस्तान्तकर्त्ता द्वारा लिखा जाना अत्यन्त आवश्यक है। इस क्रिया को वेचान के नाम से पुकारते हैं। वैसे तो, ये शब्द आगे या पीछे किधर भी लिखे जा सकते हैं, किन्तु अधिकतर पीछे की ओर ही लिखे जाते हैं। इसलिये इस क्रिया को कुछ लोग पृष्ठाँकन के नाम से भी पुकारते हैं। जो व्यक्ति वेचान लेख लिखता है, उसे वेचान कर्त्ता (Endorser) कहते हैं, और जिस व्यक्ति के पक्ष में यह लेख लिखा जाता है, उसे वेचाँकी (Endorsee) कहते हैं। यह वेचान चैक, बिल और प्रण-पत्र आदि, सब पुर्जों पर हो सकता है। सब के सम्बन्ध में समान नियम लागू होते हैं। कभी कभी पुर्जे का पूरा भाग विभिन्न वेचानों द्वारा भर जाता है। ऐसी दशा में उस के साथ एक कागज का टुकड़ा, जिस को अनुपर्णी (Allonge) कहते हैं, लगा देते हैं। इस समय हस्ताक्षर इस प्रकार से किये जाने चाहियें कि आधे हस्ताक्षर उक्त पुर्जे पर और आधे इस अनुपर्णी पर। वेचान निम्न प्रकार के होते हैं जिनके भेद नीचे दिये जाते हैं:—

(१) साधारण अथवा रिक्त वेचान (General or Blank Endorsement)—जब वेचान कर्त्ता वेचान करते समय केवल अपने हस्ताक्षर करके छोड़ देता है और किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं लिखता, तो यह साधारण वेचान कहलाता है, और इसका प्रभाव यह होता है कि उसका भुगतान किसी भी व्यक्ति को दिया जा सकता है, और बाद में इसके हस्तान्तरण के लिये इस पर कुछ लिखना आवश्यक नहीं रह जाता। दूसरे शब्दों में, एक आदेश पुर्जे को वाहक पुर्जा बनाने का यही तरीका है।

(२) विशेष या पूर्ण बेचान (Special or Full Endorsment—इस प्रकार के बेचान में, बेचान कर्त्ता जिस के पक्ष में बेचान करना चाहता है उस का नाम भी लिख देता है, जिस से यह पुर्जा आदेश पुर्जा बना रहता है। यदि उक्त पुर्जे को फिर हस्तान्तरित करना हो, तो वह विशेष बेचान द्वारा ही सम्भव होगा।

(३) प्रतिबन्धित बेचान (Restrictive Endorsement)—जब बेचान कर्त्ता बेचांकी के नाम के आगे केवल 'only' शब्द लगा देता है, तो फिर इस पुर्जे का भुगतान केवल उक्त व्यक्ति को ही हो सकता है और आगे किसी को इस का बेचान नहीं किया जा सकता।

(४) दायित्व हीन बेचान (Sans Recourse Endorsement)—दायित्व हीन बेचान में बेचान कर्ता चैक के भुगतान न होने की दशा में अपने आप को भुगतान के उत्तर दायित्व से मुक्त होना चाहता है। इस प्रकार के बेचान में वह अन्य शब्दों के अतिरिक्त 'Sans Recourse' शब्द और जोड़ देता है, जिस का अर्थ है कि मेरे पास वापिस न लौटे।

(५ ऐच्छिक बेचान (Facultative Endorsment)—यह वह बेचान है, जिस में बेचान कर्ता चैक के भुगतान न होने पर अपने सूचना पाने के अधिकार को स्वयं छोड़ देता है तथा बिना किसी सूचना के ही अपने आप को चैक के भुगतान के लिये उत्तरदायी बना लेता है। इस प्रकार के उदाहरण बहुत कम देखने में आते हैं।

कभी कभी असम्पूर्ण बेचान (Partial Endorsement) और शर्त पूर्ण बेचान (Conditional Endorsement)

भी सुनने में आते हैं। प्रथम में तो, बेचान कुछ रकम के लिये अथवा सारी रकम को एक से अधिक व्यक्तियों के नाम किया जाता है। दूसरे में, बेचान के साथ कोई शर्त लगा दी जाती है। किन्तु बेचान के ये दोनों तरीके उपयोग में नहीं लाये जाते, क्योंकि ये अनेक झंझटों से परिपूर्ण होते हैं।

बेचान कौन कर सकता है?

किसी भी विनिमय साध्य पुर्जे का बेचान पाने वाला और अधिकारी (Holder) कर ही सकते हैं। इनके अतिरिक्त इन का अधिकृत प्रतिनिधि भी कर सकता है। किन्तु इस प्रतिनिधि को बेचान करते समय 'प्रधान के लिये' (For Principal) अवश्य लिख देना चाहिये, जिस से वह व्यक्तिगत रूप से उत्तर दायी न माना जासके। संस्थाओं की ओर से बेचान सदैव उन के अधिकृत व्यक्तियों के द्वारा ही होना चाहिये। ऐसा न होने पर बेचान अवैधानिक माना जायगा।

बेचान करते समय सावधानियाँ

बेचान कर्ता को बेचान करने समय निम्न सावधानियाँ ध्यान में रखनी चाहिये:—

(१) बेचान कर्ता को हस्ताक्षर करते समय अपना नाम ठीक उसी प्रकार लिखना चाहिये, जैसा पुर्जे में लिखा गया हो। परन्तु, यदि वह चाहे, तो नीचे अपना सही हस्ताक्षर भी कर सकता है।

(२) बेचान उसी पुर्जे पर अथवा अनुपर्णी (Allonge) पर करना चाहिए, किसी दूसरे पर नहीं।

(८) जहाँ वेचान कर्ता अशिक्षित व्यक्ति हो, तो उस के अंगूठे की निशानी के साथ किसी की साक्षी होना आवश्यक है, जैसे—

निशानी मोहन लाल
साक्षी ए. एस. सी. हाडा

(९) जहाँ वेचान कर्ता साख पुर्जे की प्राप्ति के समय तो जीवित था किन्तु अब मर गया है उस समय वेचान निम्न प्रकार से करना चाहिए—

आसफ अली की संपत्ति की उत्तराधिकारी
अरुणा आसफ अली

अधिकारी (Holder)

किसी चैक, बिल अथवा प्रणपत्र का अधिकारी वह व्यक्ति है, जिस को अपने ही नाम में उस पर अधिकार प्राप्त हो और जो उस पुर्जे विशेष के पक्षों से पुर्जे को रकम प्राप्त अथवा वसूल (Recover) कर सकता हो। यहाँ यह स्मरण रहे कि कि उक्त पुर्जे का किसी व्यक्ति के पास होना उसको उस पुर्जे का अधिकारी नहीं बना देता। वह तो उस दशा में उस पुर्जे का रखने वाला (Possesser) कहलाएगा न कि अधिकारी। पुर्जे का रखने वाला चोर भी हो सकता है, किन्तु चोर अधिकारी नहीं हो सकता, क्योंकि उस पर उस का वैधानिक अधिकार नहीं है।

यथा-विधि अधिकारी (Holder in due course):

विनिमय साध्य पुर्जों के भारतीय विधान के अनुसार यदि कोई चैक, प्रण पत्र और विनिमय बिल ग्राहक को देय है

तो उसका यथाविधि अधिकारी वही व्यक्ति होगा, जिसने उसको प्रति फल के बदले में (For consideration) प्राप्त किया हो। यदि वह आदेशानुसार देय है, तो ऊपरी शर्तों के अतिरिक्त उसे या तो स्वयँ पानेवाला अथवा बेचान द्वारा अधिकार प्राप्त व्यक्ति होना चाहिये। इसके अतिरिक्त दो बातें और आवश्यक हैं। एक तो, उस पुर्जे को अवधि समाप्त होने से पहिले प्राप्त करना चाहिये, दूसरे उस पुर्जे को लेते समय बिना किसी सन्देह के और सद्विश्वास में लेना चाहिये।

इसलिये संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि यथाविधि धारी वह व्यक्ति है, जिसने साख पुर्जे को समूल्य, सनियम, सद्विश्वास पूर्वक बिना किसी सन्देह के तथा अवधि के भीतर प्राप्त किया हो। यह हम बता आये हैं कि यथा विधि धारी व्यक्ति का अधिकार पुर्जे को किसी दोषपूर्ण अधिकार वाले व्यक्ति से ले लेने पर भी दोषपूर्ण न होगा और वह भुगतान पाने का पूर्ण अधिकारी रहेगा।

मूल्य के लिये अधिकारी (Holder for value)— जिस पुर्जे का मूल्य किसी ने कभी भी चुका दिया हो किन्तु उस व्यक्ति ने स्वयं न चुकाया हो, जिसके अधिकार में अब यह आ गया है, ऐसे व्यक्ति को मूल्य के लिये अधिकारी कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति को पुर्जा केवल निम्नलिखित कार्यों के लिये ही दिया जाता है—

(१) बेचान करने वाले ने अपने बैंक अथवा किसी अन्य प्रतिनिधि को पुर्जा इस कारण से दिया हो कि वह उसका भुगतान प्राप्त करके उसके हिसाब में जमा कर दे अथवा उसको नकद रुपया दे दे।

(२) बेचान करने वाले ने पुर्जा किसी व्यक्ति को इसलिये दिया हो कि उस का रुपया प्राप्त करके निर्दिष्ट व्यक्ति को दे दे।

(३) जब पुर्जा किसी धार्मिक अथवा परोपकार के कार्य के लिये दिया गया हो; तो पुर्जे को रखनेवाला उसे अपने कार्य में नहीं ला सकता, किन्तु अमुक कार्य के लिये ही उपयोग में ला सकता है।

चेक के उपयोग से लाभ—

आज के युग में चेक एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साख पुर्जा माना ज ता है। संसार के सभी देशों में चेक का प्रयोग नित्य प्रति बढ़ता जा रहा है। किसी देश में अधिक से अधिक चेक का उपयोग में लाना एक सभ्यता का सूचक समझा जाता है।

चेक से हमको अनेक लाभ हैं और वे इस प्रकार हैं:—

(१) यह भुगतान का एक सस्ता और सुलभ माध्यम है। इससे कागजी और धात्विक मुद्रा की आवश्यकता कम हो जाती है।

(२) चेक भुगतान का एक अच्छा और विश्वसनीय प्रमाण है, आवश्यकता पड़ने पर यह न्यायालय में प्रस्तुत किया जा सकता है, अथवा बैंक स्वयँ प्रमाण दे सकता है।

(३ यह एक विनिमय साध्य पुर्जा होने के कारण; इसके द्वारा लेन देन में कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती।

(४ चेक के उपयोग के लिये हमें पहिले एक रकम बैंक के पास जमा करानी होती है। बैंक इस रकम को व्यर्थ न पड़ी रखकर उपयोगी राष्ट्रीय के कार्यों में लगाता है। यही

रकम हमारे पास जब तक उपयोग में न लाई जाय, व्यर्थ पड़ी रहती है।

(५) चेक यदि जल जाय, फट जाय अथवा गल जाय तो वह हानि नहीं समझी जाती, क्योंकि इस दशा में उसकी दूसरी प्रति (Duplicate copy) प्राप्त की जा सकती है।

(६) चेक द्वारा दूरस्थ स्थानों पर बड़ी बड़ी रकमों के भुगतान बिना किसी जोखिम व खर्चे के किये जा सकते हैं।

(७) चेकसे भुगतान करने पर हिसाब किताब रखने से भी मुक्त हो जाते हैं, क्योंकि बैंक सारा भुगतानों का ब्यौरा नित्य तैयार करता है और उसकी प्रति पास बुक के रूप में हमारे पास भेजता रहता है।

(८) चेक द्वारा हम किसी भी रकम का भुगतान कर अपनी इच्छानुसार सकते हैं, किन्तु यह सुविधा नोट व सिक्कों में नहीं होती। इनमें गिनती करने, अच्छा बुरा देखने आदि की असुविधा रहने से बड़ा कठिनाई होती है।

विनिमय बिल

विनिमय बिल बिना शर्त वाला वह लिखित आदेश है, जिस पर लिखने वाले (Maker) के हस्ताक्षर होते हैं और जिसके द्वारा वह किसी विशेष व्यक्ति को रुपये की एक निश्चित रकम किसी अन्य व्यक्ति या उस के आदेशित व्यक्ति (Order) या वाहक (Bearer) को एक निश्चित अवधि के बाद चुकाने की आज्ञा देता है। इस परिभाषा से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं :—

१—यह एक शर्त रहित आदेश है।

२—यह हमेशा लिखित होता है।

३—इस पर लिखने वाले के हस्ताक्षर होते हैं।

४—इसके द्वारा किसी खास व्यक्ति को एक निश्चित रकम चुकाने का आदेश दिया जाता है।

५—इस की एक रकम निश्चित होती है।

६—इस की अवधि भी निश्चित होती है जिस के बाद रुपया चुकाना आवश्यक है।

७—इस का भुगतान आदेशानुसार अथवा वाहक को किया जा सकता है।

नीचे एक विनिमय बिल का नमूना (Specimen) दिया गया है :—

Stamp

Udaipur,
14th March, 1953.

Rs. 5000/-

Three months after date, pay to Shri Motilal Hada or order the sum of Rupees five thousand only, value received.

Kapoor Chand Jain.

To
M/s. Godha Medical Hall,
Johari Bazar,
Jaipur.

बिल के पक्ष (Parties to a Bill)

बिल में भी चैक की भाँति तीन पक्ष होते हैं और वे इस प्रकार हैं :—

(१) लिखने वाला (Drawer)—यह वह व्यक्ति है, जो बिल लिखता है। बिल हमेशा ऋणदाता (Creditor) द्वारा ही लिखा जाता है। यह हम पहिले बता आये हैं कि बिल लिखते समय लिखने वाले को अपने हस्ताक्षर करने आवश्यक होते हैं।

(२) देने वाला (Drawee)—यह वह व्यक्ति है, जिस पर बिल लिखा जाता है। बिल हमेशा ऋणी पर लिखा जाता है। देने वाले का नाम बिल में लिखा रहता है। जब बिल लिखने वाले द्वारा देने वाले के पास भेजा जाता है, तो वह उस पर हस्ताक्षर कर देता है। हस्ताक्षर करने के ये अर्थ हैं कि वह उक्त रकम चुकाने का वायदा करता है। इस हस्ताक्षर करने की क्रिया को बिल की स्वीकृति देना (Acceptance of a Bill) कहते हैं। बिल पर स्वीकृति का होना आवश्यक है। बिना स्वीकृति के यह केवल ड्राफ्ट (Draft) रहता है। यहाँ यह स्मरण रहे कि हस्ताक्षर के साथ स्वीकृत (Accepted) शब्द लिखना आवश्यक नहीं है, हालाँकि यह सामान्यतया लिख दिया जाता है।

(३) पाने वाला (Payee)—यह व्यक्ति है, जिस को रकम मिलेगी। पाने वाले का नाम भी प्रायः बिल में लिखा रहता है।

बिल के भेद (Kinds of Bills).

(१) देशी बिल (Inland Bills)—ये वे बिल हैं, जो

एक ही देश में लिखे और स्वीकृत किये जाते हैं । यही नहीं, बल्कि इन का भुगतान भी देश के भीतर ही होता है। देशी बिल में बिल के सब पक्ष एक ही देश में होते हैं। यह मुख्यतया देशी व्यापार में प्रयोग में आता है।

(२) विदेशी बिल (Foreign Bills)—ये वे बिल हैं, जिन का लिखने वाला, और स्वीकार करने वाला दो भिन्न भिन्न देशों में होते है। इन का प्रयोग विदेशी व्यापार में होता है और इनकी सदैव तीन प्रतियाँ तैयार की जाती हैं और अलग अलग माध्यम से भेजी जाती हैं। जब विदेशी बिल की एक ही प्रति तैयार की जाती है, तो इसे Sola bill कहते हैं। विदेशी बिल का नमूना इस प्रकार है:—

Stamp	Jaipur (India) *April, 11, 1953*

£ 500/-

Ninety days after sight of this First of Exchange (Second and Third of the same tenor and date unpaid) pay to M/s Sydney Carton & Co., or order, the sum of pounds five hundred only. Value received.

Ashok Hada

To

James Watt Esq.,
Setro Square, London.

३) दर्शनी बिल (Sight Bills)—ये वे बिल होते हैं, जिनका भुगतान बिल के दिखाते ही हो जाता है। इनका प्रयोग भी विदेशी व्यापार में होता है।

(४) मुद्दती बिल (Time Bills)—ये वे बिल हैं, जिनका भुगतान कुछ अवधि के पश्चात् किया जाता है। यह अवधि या तो लिखने की तारीख से या स्वीकृति की तारीख से गिनी जा सकती है। यह अवधि दिनों या महीनों में व्यक्त की जाती है। इस अवधि को अंगरेजी में Tenor या Term के नाम से पुकारते हैं। यहाँ यह स्मरण रहे कि सारे मुद्दती बिलों में अवधि के अतिरिक्त तीन दिन अतिरिक्त जोड़े जाते हैं, जिन को रियायती दिन (Days of grace) कहते हैं। यदि तीसरे दिन रविवार या राजपत्र द्वारा घोषित (Gazetted) छुट्टी हो, तो दूसरे ही दिन भुगतान कर देना पड़ता है।

(५) सहायता के बिल (Accommodation Bills)—ये वे बिल हैं, जो एक दूसरे को आर्थिक सहायता पहुँचाने के हेतु लिखे जाते हैं। इस लिए इन को आर्थिक बिल भी कहते हैं, किन्तु यह नाम अनयुक्त है। इन का आधार माल का क्रय—विक्रय नहीं होता। इस में लिखने वाला स्वीकार करने वाले का ऋणी बन जाता है।

बिल का प्रस्तुत करना (Presentation of Bills)

बिल के अधिकारी (Holder) के लिए यह आवश्यक है कि वह बिल का भुगतान प्राप्त करने के लिए देनेवाले को नियत तिथि (Due date) पर अवश्य प्रस्तुत करे। बिल को देने वाले के निवास स्थान या व्यापार गृह व्यापारी के समक्ष

(Businss hours) में यथा विधि प्रस्तुत करना चाहिये। ऐसा नहीं होने पर, अन्य पक्ष अपने उत्तर दायित्व से मुक्त हो जाते हैं।

बिल का ना सिकारना (Dishonour of Bills)

बिल का ना सिकारना तिरस्कृत होना भी कहलाता है। बिल दो प्रकार से तिरस्कृत होता है। प्रथम, जब देने वाला स्वीकार करने से इनकार करदेता है तब यह बिना स्वीकृत का तिरस्कृत होना (Dishonour by non-acceptance) कहलाता है। दूसरे, जब देने वाला स्वीकृति तो देदेता है किन्तु पकने की तारीख (Date of Maturity) पर भुगतान नहीं कर पाता है; तब यह बिना भुगतान के तिरस्कृत होना (Dishonour by non-payment) कहलाता है। जब बिल दर्शनीय है और स्वीकृत के बिना ही हस्तांतरित हो रहा है, तो दोनों तरह का तिरस्कार साथ साथ हो सकता है।

बिल के अधिकारी को बिल के तिरस्कृत होजाने से किसी भी प्रकार की असुविधा न हो तथा लिखने वाले की साख पर भी कोई कुप्रभाव न पड़े, इस लिये बिल लिखने वाला पर एक और नाम लिख देता है, जिस को आवश्यकता पर स्वीकार या भुगतान करने वाला व्यक्ति (Drawee in case of need) कहते हैं। बिल के किसी भी प्रकार तिरस्कृत हो जाने पर यह व्यक्ति देने वाला बन जाता है। कभी कभी जिस पर बिल लिखा जाता है, उसके स्वीकार न करने पर उसका मित्र उसकी इज्जत बचाने की दृष्टि से स्वयं स्वीकार कर लेता है। ऐसी दशा में यह स्वीकृति सम्मान की स्वीकृति (Acceptance for honour) कहलाती है।

जब बिल बिना स्वीकृति के अथवा बिना भुगतान के तिरस्कृत हो जाता है, तो बिल के अधिकारी को एक विशेष अधिकारी से, जो नोटेरी पब्लिक (Notary public) कहलाता है, यह प्रमाणित करा लेना आवश्यक है, कि बिल वास्तव में तिरस्कृत हो गया है। इस प्रमाणित करा लेने की क्रिया को नोटिंग (Noting) कहते हैं। यह प्रमाणित करने वाला व्यक्ति विनिमय साध्य पत्रों के विधान अन्तर्गत सरकार द्वारा अधिकृत व्यक्ति होता है, और अपनी इस सेवा के बदले में फीस प्राप्त करता है, जो नोटिंग चार्जेज (Noting charges) कहलाती है।

विनिमय बिल के लाभ

विनिमय बिलों से अनेक लाभ हैं, जिनका विवेचन नीचे किया गया है—

(१) बिल के द्वारा ऋणी से ऋण का एक लिखित व वैधानिक प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

(२) बिल से भुगतान की तिथि निश्चित हो जाती है इससे ऋणदाता व ऋणी दोनों को बड़ा लाभ होता है। ऋणदाता को तो उस तिथि के अलावा बार बार चक्कर नहीं काटने पड़ते और ऋणी को बार बार तकाजा नहीं भुगतना पड़ता। पहिले से तिथि निश्चित होने से वह रकम का प्रबन्ध भली भाँति कर सकता है।

(३) बिल से सबसे बड़ा लाभ यह है कि निश्चित अवधि के समाप्त होने के पहिले भी यदि लिखने वाला चाहे तो बिल को बैंक को कुछ कटौती (Discount) पर बेचकर रुपया प्राप्त कर सकता है। उसको नियत तिथि तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

(४) बिल एक विनिमय साध्य पुर्जा होने के कारण कई व्यक्तियों द्वारा पारस्परिक भुगतान करने में बिना किसी अड़चन के उपयोग में लाया जा सकता है।

(५) विदेशी व्यापार में तो भुगतान करने का साहस सबसे सस्ता, सुलभ व सुविधाजनक ढंग माना जाता है। स्वर्ण के आयात निर्यात की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

(६) बिल का भुगतान न करने के अर्थ अपनी साख खराब करना है और कोई भी व्यापारी अपनी साख खराब करना नहीं चाहता, अर्थात, अधिकतर बिल का भुगतान हो ही जाया करता है।

(७ बैंकों की दृष्टि से बिल एक अच्छे विनियोग (Instrument) की श्रेणी में गिने जाते हैं। बिल का भुनाना (Discounting of Bills) बैंक का एक मुख्य कार्य माना जाता है।

(८) अन्त में ये रकम के एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने व भुगतान करने के एक सुगम साधन माने जाते हैं।

रुक्का पत्र (Promissory Note)

यह (बैंक नोट व करेन्सी नोट को छोड़कर) वह लिखित पुर्जा है, जिसमें इसका लिखने वाला, उसमें दिये हुये धनी को अथवा उसके आदेशानुसार, अथवा वाहक को उसमें लिखी हुई एक निश्चित रकम बिना किसी शर्त के देने का प्रण करता है। उक्त परिभाषा से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं:—

१—यह एक लिखित पुर्जा है।

२—इसके द्वारा एक निश्चित रकम देने का प्रण किया जाता है।

३—यह प्रण शर्त्त रहित होता है, अर्थात इस में प्रण के साथ किसी प्रकार की शर्त्त नहीं होती।

४—यह ऋणी की ओर से तैयार किया जाता है, और इस पर उसके हस्ताक्षर होते हैं।

५—इसमें एक निश्चत रकम व निश्चित अवधि होती दी होती है।

६—इसका भुगतान इस में लिखे व्यक्ति को अथवा उसके आदेशानुसार, अथवा वाहक को हो सकता है।

७—इस प्रकार के प्रण पत्र में बैंक नोट और करेन्सी नोट सम्मिलित नही होते।

नीचे एक प्रण पत्र का नमूना Specimen) दिया गया है।

Stamp Rs. 500/- Indore. April 24, 1953.

Three months after date, I promise to pay Shri Shyam Mohan Bhargava, or order, the sum of Rupees five hundred only, value received.

Shanti Prashad.

प्रण-पत्र के पक्ष (Parties)— प्रण-पत्र में केवल दो ही पक्ष होते हैं, और वे निम्न प्रकार हैं:—

लिखने वाला (Maker)—लिखने वाला एक या एक से अधिक व्यक्ति भी हो सकते हैं। एक से अधिक व्यक्ति होने पर सब व्यक्ति पृथक पृथक तथा सामूहिक दोनों रूपों से उत्तरदायी होते हैं। लिखने वाला सदा ऋणी ही होता है।

पाने वाला (Payee)

पाने वाला सदा ऋणदाता ही होता है और उसका नाम पहिले से लिखा होता है।

प्रण पत्र के भेद (Kinds of NP)

(१) व्यक्तिगत प्रण-पत्र(Indiviuwal P/N)—व्यक्तिगत प्रण-पत्र में लिखने वाला एक ही व्यक्ति होता है, इसलिये स्वाभाविक है कि भुगतान करने का उत्तरदायित्व केवल उसी व्यक्ति का होता है।

(२) सामूहिक प्रण पत्र (joint P/N)—इसमें लिखने वाले कई व्यक्ति होते हैं और इस कारण भुगतान का उत्तरदायित्व सभी व्यक्तियों पर होता है, किसी एक व्यक्ति पर नहीं, अर्थात सब लोग सामूहिक रूप से उत्तरदायी हैं, पृथक पृथक नहीं।

(३) सामूहिक तथा पृथक पृथक प्रण-पत्र (joint & Several P/N)—यहां लिखने वाले कई व्यक्ति तो होते ही हैं इसके अतिरिक्त सब व्यक्ति सामूहिक तथा पृथक पृथक दोनों रूप से उत्तरदायी होते हैं। इसके स्पष्ट रूप से ये अर्थ होते हैं कि प्रण-पत्र की रकम सबसे या किसी भी व्यक्ति से वसूल की जा सकती है। यह अवश्यक है कि सारी रकम अकेला देने वाला व्यक्ति अपने हिस्से को छोड़ कर शेष रकम अन्य व्यक्तियों से

वसूल करने का अधिकारी होता है। किन्तु इस बात का पायन्दा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

प्रण-पत्र के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें स्मरण रखनी चाहिये —

(१) इसमें कोई स्वीकृति (Acceptance) की आवश्यकता नहीं होती।

(२) इसके तिरस्कृत हो जाने पर इसको नोटिंग (Noting) कराना आवश्यक नहीं है।

(३) इसके तिरस्कृत होने पर, इसके अधिकारी के लिये यह आवश्यक नहीं कि वह अपने पहिले वाले पक्षों को प्रण-पत्र के तिरस्कृत हो जाने की सूचना दे।

(४) प्रण पत्र में रियायती दिन भी नहीं जोड़े जाते।

हुण्डियां (Hundies)

हुंडियां हमारे देश की अपनी देन हैं। साख-पत्र के रूप में इनका प्रयोग अति प्राचीन है। ये प्रायः सभी प्रान्तों में अपनी अपनी भाषाओं में लिखी जाती थीं। आज भी इनका प्रयोग हमारे देश में बहुतायत से होता है। हालांकि हुंडियों के विनिमय साध्य रूप को (Negotiable Instruments) में नहीं गिना जाता, और इनको वे वैधानिक सुविधायें प्राप्त नहीं हैं, जो विनिमय बिल आदि को हैं, फिर भी देश की प्राचीन प्रथा व पद्धति के अनुसार सभी व्यक्ति, इनको लेन देन में बिना किसी रोक टोक के काम में लाते हैं। विनिमय बिल की भांति इनकी भी स्वीकृति और बेचान होते हैं और रियायती दिन भी जोड़े जाते हैं।

हुण्डी का नमूना (Specimen of Hundi).

'सिद्ध श्री खड़गपुर शुभ स्थान श्री पत्री भाई रामानन्द जी हरिकिशन जी महेश्वरी जोग लिखी सवाई जयपुर से गौरीलाल घासीलाल हाडा की जयगोपाल बंचना। अपरंच हुंडी की नी आय ऊपर रुपिया ५०००) अंके पाँच हजार के नीमा दो हजार पाँच सौ के दूने पूरे देना। यहाँ राखे भाई मोहनराम कन्नीराम के मिती वैसाष सुदी पञ्चमी संवत २०१० से पूरे पिछैत्तर दिन पीछे दाम धनी जोग बिना जाव्ता बाजार चलन हुंडी की रीति ठिकाने लगाय चौकस कर देना। मिती वैसाष सुदी पन्चमी संवत २०१० :

दूसरी तरफ

नीमे के नीमे एक हजार दो सौ पचास के चौगुना पूरा रुपिया चौकस कर देना।

| ५०००) |

श्री पत्री भाई रामानन्द जी हरिकिशन जी महेश्वरी खड़गपुर।

हुंडी के भेद (Kinds of Hundies)

हुंडियाँ
- दर्शनी
  - धनी जोग
  - शाह जोग
  - फरमान जोग
- मुद्दती
  - धनी जोग
  - शाह जोग
  - फरमान जोग
  - देखनहार
  - जोखमी
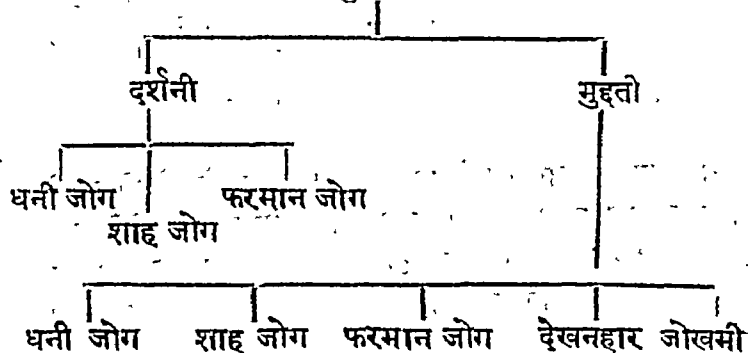
दर्शनी हुंडी—इस प्रकार की हुंडी का भुगतान चैक की भाँति माँगने ही होता है। हुंडी के अधिकारी को इसको उचित समय के भीतर ही भुगतान के लिये प्रस्तुत कर देना चाहिये। अधिक और अनावश्यक विलम्ब हो जाने पर लिखने वाला हुंडी के तिरस्कृत हो जाने की दशा में अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है।

मुद्दती हुंडी—मुद्दत उर्दू का शब्द है, जिस का अर्थ है अवधि अथवा समय। इस लिये मुद्दती हुंडी वह हुंडी हुई, जिस का भुगतान लिखने की मिती के एक निश्चित अवधि के बाद होता हो। यह अवधि हमेशा हुंडी में दी होती है। भुगतान की तिथि निकालने के लिये उसमें कुछ रियायती दिन जोड़ने आवश्यक हैं। ये दिन कितने हों, यह उक्त स्थान की प्रथा पर निर्भर करते हैं।

धनी जोग हुंडी—धनी जोग हुंडी का भुगतान इस में लिखित धनी को ही देना है। इस का बेचान नहीं होता। इसमें ऊपर वाले धनी अर्थात भुगतान देने वाले पक्ष को यह निश्चित कर लेना आवश्यक है कि भुगतान लेने वाला धनी वही है, जिस का नाम हुंडी में दिया हुआ है। नहीं तो गलत व्यक्ति को भुगतान दे देने पर वह स्वयं क्षति के लिये उत्तरदायी हो जायगा। यह एक प्रकार से आदेश पुर्जा (Order Instrument) हुई।

शाह जोग हुंडी—यहां शाह से आशय है किसी नामी अथवा प्रसिद्ध व्यक्ति से। इस लिये शाह जोग हुंडी वह हुंडी हुई, जिस का भुगतान शहर के प्रसिद्ध व्यक्ति को ही हो। इस प्रकार की हुंडी का भुगतान हुंडी का

अधिकारी स्वयं प्राप्त नहीं कर सकता। वह केवल किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के मारफत ही प्राप्त कर सकता है। यह एक प्रकार से रेखांकित पुर्जा (Crossed Instrument) हुई। ऊपर वाले धनी को चाहिये कि भुगतान किसी शाह को मारफत ही करे, नहीं तो जोखिम उस को होगी।

फरमान जोग हुंडी—फरमान उर्दू शब्द है, जिस का अर्थ है आदेश। सम्भव है इस प्रकार को हुंडियाँ मुस्लिम काल में पहिले पहल प्रयोग में आई हों। यह राखे वाले अथवा उसके द्वारा आदेश दिये गये धनी को देय होती है। इस का हस्तान्तरण आदेश पुर्जे की भाँति वेचान द्वारा ही हो सकता है। ऊपर वाले धनी को भुगतान करते समय, इन सब वेचानों की जाँच कर लेनी चाहिये।

देखनहार हुंडी—यह एक प्रकार से वाहक पुर्जा (Bearer Instrument) होती है। क्योंकि इस का भुगतान वाहक को, अर्थात जिस किसी के पास यह हो और जो कोई इस को भुगतान के लिये प्रस्तुत करे उसी को हो सकता है। दर्शनी हुंडी देखनहार नहीं होती।

जोखमी हुंडी—यह मुद्दती हुंडी की ही एक किस्म है। इस का चलन आजकल नहीं होता। प्राचीन काल में जब बीमा आदि की सुविधायें विद्यमान न थी, इस प्रकार की हुंडियों का चलन होता था। पहिले जब एक व्यापारी किसी दूसरी जगह सामान भेजता था, तो कोई एक व्यक्ति सामान को सुरक्षित पहुंचाने की जोखिम (Risk) अपने ऊपर ले लिया करता था व माल का बेचने वाला

उसे जिम्मा लेने वाले के पक्ष में माल खरीदने वाले के नाम हुंडी लिखता था। हुंडी का भुगतान केवल तभी होता था जबकि माल सुरक्षित रूप से खरीदार के पास पहुँच जाता था। यह जिम्मा लेने वाला व्यक्ति माल की कुल कीमत में अपना खर्चा व बट्टा काटकर बेचने वाले को पहिले से रुपया दे दिया करता था और फिर स्वयँ क्रेता से पूरी रकम वसूल कर लेता था। माल सुरक्षित न पहुँचने पर नुकसान उसको स्वयँ को भुगतान करना पड़ता था।

अब इन सब साख पुर्जों का विस्तृत विवरण पढ़ लेने के बाद हमारे लिये इनका पारस्परिक भेद या अन्तर जान लेना आवश्यक होगा। यह अन्तर हम निम्नलिखित क्रम से समझायेंगे—

१—चेक और विनिमय बिल में अन्तर।

२—विनिमय बिल और प्रण पत्र में अन्तर।

३—विनिमय बिल और हुंडी में अन्तर।

४—विनिमय बिल और हुंडी सादृश्य।

१—चेक बनाम विनिमय बिल

चेक	विनिमय बिल
१—चेक सदैव किसी बैंक पर ही लिखा जाता है।	१—विनिमय बिल किसी भी व्यक्ति अथवा बैंक पर लिखा जा सकता है, अधिकतर यह व्यक्ति या व्यक्तियों पर ही लिखा जाता है।

२—यह सदैव दर्शनी होता है, अर्थात इसका भुगतान माँगने पर होता है।	२—यह दर्शनी और मुद्दती दोनों प्रकार का हो सकता है।
३—यह प्रायः देशी होता है।	३—यह देशी और विदेशी दोनों प्रकार का हो सकता है।
४—इसमें स्वीकृति की कोई आवश्यकता नहीं होती।	४—इसमें स्वीकृति अत्यावश्यक है, (दर्शनी में नहीं)।
५—चेक का रेखांकन किया जा सकता है।	५—इसका रेखांकन नहीं होता।
६—बैंक के फेल नहीं होने की दशा में यदि इसको उचित समय के भीतर प्रस्तुत न किया जाय तो भी लिखनेवाले का दायित्व समाप्त नहीं होता।	६—यदि उचित समय के भीतर इसको प्रस्तुत न किया जाय तो लिखने वाला तथा अन्य पहिले वाले पक्ष अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं।
७—इसके तिरस्कृत हो जाने पर पूर्व पक्षों को इस बात की सूचना देना आवश्यक नहीं माना जाता।	७—इसके तिरस्कृत हो जाने पर लिखने वाले तथा अन्य पहिले वाले पक्षों को सूचना देना आवश्यक है।
८—इसके तिरस्कृत हो जाने पर इसको नोटिंग नहीं होता।	८—इसके तिरस्कृत हो जाने पर इसका नोटिंग व कभी कभी प्रोटेस्टि भी कराना आवश्यक होता है।

६—लिखनेवाला धनी बैंक को चेक का भुगतान करने से रोक सकता है।	६—विनिमय बिल में भुगतान रोकने जैसी कोई बात नहीं होती।
१०—चेक प्रायः देशी मुद्रा में ही लिखे जाते हैं।	१०—विनिमय बिल देशी व विदेशी दोनों मुद्राओं में लिखे जा सकते हैं।

२—विनिमय बिल बनाम प्रण-पत्र

विनिमय बिल	प्रण-पत्र
१—विनिमय बिल ऋणदाता (Creditor) लिखता है	१—प्रण-पत्र ऋणी (Debtor) लिखता है।
२—इसमें एक भुगतान करने का आदेश होता है।	२—इसमें भुगतान करने का प्रण होता है।
३—इसमें प्राय तीन और कभी कभी इससे अधिक भी पक्ष होते हैं।	३—इसमें प्राय दो पक्ष होते हैं।
४—इसमें स्वीकृति अत्यावश्यक है (दर्शनी में नहीं)	४—इसको ऋणी स्वयँ लिखता है, इसलिये स्वीकृति की कोई आवश्यकता नहीं होती।
५—बिल में लिखने वाला स्वयं भुगतान पाने वाला भी हो सकता है।	५—प्रण पत्र में लिखने वाला दूसरे को ही भुगतान करने का प्रण कर सकता है, स्वयँ को नहीं।

६—विल का लिखने वाला कभी प्रमुख देनदार नहीं होता।	६—इसमें लिखने वाला हमेशा प्रमुख देनदार होता है।
७—विल के एक विदेशी विल होने पर इसकी कई प्रतियां एक साथ लिखी जाती हैं।	७—इसकी केवल एक ही प्रति लिखी जाती है।
८—इसको किसी को साख रखने के लिए भी सिकारा जा सकता है।	८—प्रण-पत्र में ऐसा कभी नहीं होता।
९—विल के तिरस्कृत हो जाने पर नोटिंग व प्रोटेस्टिंग होना आवश्यक है।	९—यहाँ नोटिंग व प्रोटेस्टिंग अनावश्यक है।

३—बिनिमय विल बनाम हुँडी

विनिमय विल	हुँडी
१—यह एक विनिमय साध्य पुर्जा है।	१—यह विनिमय साध्य पुर्जा नहीं है। इसका चलन तो प्रथा के अनुसार होता है।
२—यह प्रायः अंग्रेजी में लिखा जाता है और इसका चलन विश्व व्यापी है।	२—यह हिंदी तथा प्रान्तीय भाषाओं में लिखा जाता है और इसका चलन केवल भारत में ही है।
३—इसकी भाषा बिलकुल नपी तुली व निश्चित होती है।	३—इसमें कई अनावश्यक बातें भी दी होती हैं।

४—इसमें ऊपर वाले धनी (Drawee) का नाम एक ही बार लिखा जाता है, और वह नीचे बाईं तरफ लिखा रहता है।	४—इसमें ऊपर वाले धनी का नाम दो बार आता है। एक तो प्रारम्भ में और दूसरी तरफ अन्त में।
५—इसमें लिखने वाले धनी का नाम नीचे दाहिनी ओर हस्ताक्षर के रूप में लिखा रहता है।	५—इस में लिखने वाले धनी का नाम प्रारम्भ में ही ऊपर वाले धनी के बाद आ जाता है।
६—यह एक शर्त रहित पुर्जा है।	६—विशेषकर जोखमी हुंडी तो सदैव शर्त पूर्ण होती है।
७—इसमें रकम दो बार, एक बार अंकों में और दूसरी बार शब्दों में सरल ढंग से लिखी जाती है।	७—इसमें रकम तीन बार तो ऊपर की तरफ और दो नीचे की तरफ लिखी जाती है। यहाँ लिखने का ढंग विचित्र यानी रकम की आधी और चौथाई भी लिखी रहती है।
८—इस की स्वीकृति इसी पर हस्ताक्षर करके की जाती है।	८—इस की स्वीकृति के लिये केवल इस की मुख्य मुख्य बातें अलग नोट कर ली जाती हैं।
९—यह देशी और विदेशी दोनों प्रकार का हो सकता है।	९—यह केवल देशी ही होती है।

१०—इस का नोटिंग व प्रोटेस्टिंग आवश्यक है।	१०—हुंडी का नोटिंग व प्रोटेस्टिंग आवश्यक नहीं है।

विनिमय बिल और हुंडी में समानता—

(१) दोनों में एक निश्चित रकम चुकाने का आदेश होता है।

(२) दोनों में कम से कम तीन पक्ष होते हैं।

(३) दोनों दर्शनी व मुद्दती दोनों प्रकार की हो सकती हैं, और मुद्दती होने पर स्टाम्प लगाना आवश्यक है।

(४) दोनों में मिती काट कर धन मिल सकता है, अर्थात अवधि समाप्त होने के पूर्व कटौती काट कर रकम प्राप्त की जा सकती है।

(५) दोनों का बेचान हो सकता है।

(६) दोनों में भुगतान की तिथि मालूम करने के लिये रियायती दिन (Days of grace) जोड़े जाते हैं।

(७) दोनों का लक्ष एक ही है और वह है पारस्परिक भुगतान की अनिश्चितता को दूर कर उन को सुविधाजनक बनाना।

प्रश्न-अभ्यास

१—साख क्या है? साख के विभिन्न रूप तथा कार्य लिखिये।

२—साख की परिभाषा लिखिये। क्या आज के युग में साख का उपयोग आवश्यक है? यदि हाँ, तो क्यों?

३—साख व पूँजी का क्या सम्बन्ध है ? क्या साख का सृजन पूँजी का सृजन है।

४—'ऋण जमा के वश हैं और जमा ऋण के वश हैं' क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? यदि हाँ, तो क्यों ?

५—विनिमय साध्य पुर्जे से क्या समझते हो ? ये कितने प्रकार के होते हैं ? इनमें से किसी एक का विवरण लिखिये।

६—चेक क्या है ? उसको लिखते समय किन किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है ? एक चेक का नमूना दीजिये।

७—चेक के रेखांकन व बेचान से क्या समझते हो। इनमें से किसी एक का विवरण विस्तार पूर्वक लिखिये।

८—विनिमय बिल और हुंडी में क्या अन्तर है। हुंडी कितने प्रकार की होती हैं। एक हुंडी का नमूना दीजिये।

९—इनको समझाइये—पुस्तकीयसाख, उपभोग साख, रिक्त चेक, सामान्य बेचान, आदेशाचेक, शाहजोग हुंडी और ऋण-पत्र।

अध्याय १२

विदेशी विनिमय

आज संसार सकरा (Narrow) हो गया है। आज के शीघ्रगामी वायुयानों व जलयानों ने एक देश को दूसरे देश के अति निकट ला रखा है। हमारी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आज हम अपने स्वयं के देश में उत्पादित वस्तुओं पर ही निर्भर नहीं रहते। हमारी असीमित इच्छाओं ने हम को देश देश की वस्तुयें मंगाने और उन को उपयोग में लाने को बाध्य कर दिया है। दूसरे शब्दों में अब वस्तुओं का शनैः शनैः अन्तर्राष्ट्रीय आवागमन बढ़ रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रत्येक देश के लिये एक आवश्यक वस्तु बन गया है। भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न मुद्राओं का चलन होने से यह व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान की एक कठिन समस्या प्रस्तुत करता है। इन समस्याओं का विस्तार से विवेचन करना ही इस अध्याय का मुख्य ध्येय है।

विदेशी विनिमय का अर्थ—

विदेशी विनिमय का कोई एक अर्थ नहीं है। इस वाक्यांश को भिन्न भिन्न परिस्थितियों में भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयोग में लाया जाता है। जब हम यह कहते हैं कि

आजकल हमारे देश में विदेशी विनिमय की कमी है, तो इस का यह अर्थ है कि हमने जो अपना माल विदेशों में बेचकर विदेशी मुद्रा प्राप्त की है, उस की मात्रा बहुत कम है। अर्थात्, इस दशा में विदेशी विनिमय का अर्थ किसी देश में पाई जाने वाली भुगतान के लिये विदेशी मुद्रा हुआ। इसी प्रकार जब हम यह कहते हैं कि आजकल विदेशी विनिमय हमारे विपक्ष में (Unfavourable) है, तो इस का अर्थ विनिमय दर (Rate of Exchange) होगा, अर्थात्, वह दर जिस के अनुसार एक देश की मुद्रा को दूसरे देश की मुद्रा में बदला जा सके। कभी कभी विदेशी विनिमय का अर्थ उन संस्थाओं से भी होता है, जिन के द्वारा यह अदला बदली सम्भव होती है। ये संस्थायें विनिमय बैंक (Exchange Banks) के नाम से प्रसिद्ध हैं।

विश्व शब्द कोष के अनुसार विदेशी विनिमय वह पद्धति है, जिस के द्वारा व्यापारी राष्ट्र एक दूसरे को अपने ऋणों का भुगतान करते हैं। हार्टले विदर्स अपनी 'मुद्रा परिवर्तन' पुस्तक में विदेशी विनिमय की व्याख्या और भी सरल और सुन्दर ढंग से इस प्रकार करते हैं। वे कहते हैं कि "विदेशी विनिमय का अर्थ है दूसरे देशों की मुद्राओं का क्रय विक्रय, और यह ठीक इसी प्रकार किया जाता है, जिस प्रकार अधिकांश दूसरी वस्तुओं का क्रय-विक्रय। विदेशी विनिमय अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा परिवर्तन की कला और विज्ञान दोनों हैं।" कला का आशय है विनिमय पत्रों तथा इन्हें कार्य रूप देने वाली संस्थाओं से, और विज्ञान का आशय है विनिमय दर तथा तत्सम्बन्धित समस्याओं से।

विदेशी भुगतान के साधन

विदेशों में रकम भेजने के आज के युग में अनेकों साधन हैं, जिनमें से मुख्य मुख्य इस प्रकार हैं—

(१) स्वर्ण भेजकर—अपनी वस्तुओं के आयात के बदले स्वर्ण देना तथा निर्यात के बदले स्वर्ण लेना बहुत समय तक विदेशी भुगतान का एक सर्वोत्तम साधन माना जाता रहा है। किन्तु यह साधन अनावश्यक रूप से खर्चीला, जोखिम पूर्ण तथा असुविधाजनक है। निम्नलिखित कारणों से इस साधन का उपयोग चाँदी सोने के व्यापारियों व बैंकों तक ही सीमित है·

(क) इसकी कार्य प्रणाली जटिल होने से विशेष ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है।

(ख) भाड़े, बीमे इत्यादि के बड़े खर्चों के कारण यह साधन बड़ा खर्चीला सिद्ध होता है।

(ग) इस बात का कि विदेशी मुद्रा का मूल्य इतना ऊँचा चला गया है कि जिस पर सोना भेजकर और विदेशी मुद्रा बेच

---

1 'The system by which commercial nations discharge their debts to each other.'

—Encyclopædia Brittanica.

2 'Foreign Exchange means the buying and selling of the money of other countries and is handled in the same way as the buying and selling of most other things. Foreign Exchange is the art & science of international money changing.'

—Hartley Withers (Money Changing)

न भेजे जा सकने की असुविधा को दूर करने के लिये निकाला गया है। बड़ी रकमों का एक दिन भी देर से पहुँचना हानिप्रद होता है। इसलिये अधिकांश बैंक उन भुगतानों का जिनकी वे जमानत दे देते हैं कि इतने दिन आगे भुगतान अवश्य हो जायगा, बेचान कर देते हैं। इससे रकम निश्चित समय पर अवश्य मिल जाती है, चाहे दर्शनी हुंडी ठीक समय पर पहुँचे या न पहुँचे।

(५) विदेशी मनीआर्डर द्वारा (Money order) M. O.— देशी मनी आर्डर की भाँति विदेशी मनीओर्डर भी रकम भेजने के काम में लाये जाते हैं। किन्तु यह तरीका बहुत खर्चीला होने के कारण प्रायः व्यापारी लोग इसे नहीं अपनाते।

(६) विदेशी विनिमय बिल (Foreign Bills of Exchange)—जिस प्रकार हम देशी व्यापार में पारस्परिक भुगतानों के लिये विनिमय बिल का उपयोग करते हैं, उसी प्रकार विदेशी व्यापार में भी विनिमय बिलों का उपयोग बहुतायत से किया जाता है। विदेशों में रकम भेजने अथवा भुगतान करने का यह सबसे सरल और सरता साधन है। इसके द्वारा लिखने वाला एक शर्त्त रहित लिखित आदेश अपने हस्ताक्षरों से अपने ऋणी अथवा उसके प्रतिनिधि को जो विदेश में हैं, भेजता है कि इसमें लिखित रकम एक निश्चित समय पश्चात् पायन्दा को अथवा उसके आदेशानुसार अथवा वाहक को दे दे। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि इस विनिमय बिल में भी वे ही बातें पाई जाती हैं जो एक विदेशी बिल में। अन्तर केवल इतना ही है कि

इसमें लिखने वाला और देनेवाला अलग अलग देश में होते हैं। इसके अतिरिक्त विदेशी बिल की हमेशा तीन प्रतियाँ भेजी जाती हैं, जिनमें से कोई भी एक स्वीकृत कर ली जाती है, और शेष नष्ट कर दी जाती हैं। गत अध्याय में हम विदेशी बिल का एक नमूना देख आये हैं। आज के युग में अधिकांश भुगतान इन बिलों की सहायता से ही किये जाते हैं।

विदेशी विनिमयबिल की कार्य प्रणाली

मान लीजिये कि भारत में जापान से कुछ वस्तुओं का आयात होता है और इसी प्रकार जापान में भारत से कुछ वस्तुओं का आयात होता है; अर्थात. भारत और जापान के बीच आयात निर्यात व्यापार दोनों चलते हैं। भारत की मुद्रा रुपया है, और जापान की येन (Yen). एक दूसरे की मुद्रा एक दूसरे को मान्य नहीं है। ऐसी दशा में आयात कर्त्ता व निर्यात कर्त्ता पारस्परिक भुगतानों के लिये स्वर्ण को अपना सकते हैं; किन्तु स्वर्ण का भेजना असुविधाजनक व खर्चीला होने के कारण वे इस साधन को न अपना कर विदेशी बिलों का साधन अपनाते हैं। मान लीजिये भारत निवासी 'क' जापान निवासी 'ख' से ५०००) रुपये का रेशम मंगाता है। इसी प्रकार जापान का 'ग' भारत के 'घ' से ५०००) रुपये का कोयला मंगाता है। इस दशा में जापान का 'ख' ५०००) रुपये का एक बिल भारत के 'क' पर लिखेगा, जिसको 'क' स्वीकार कर वापिस लौटा देगा। 'ख' इस बिल को जापान के 'ग' को जिस को कि भारत के 'घ'

को रुपया चुकाना है बेच देगा। 'ग' इस बिल को खरीद कर 'घ' के पास भेज देगा। इस से भुगतान में बड़ी सुविधा हो गई। जापान के 'ख' को भारत से स्वर्ण मंगाने की और 'ग' को स्वर्ण भेजने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। वे आपस में एक दूसरे को अपनी ही मुद्रा में भुगतान दे देंगे और ले लेंगे। इसी प्रकार 'क' और 'घ' भी आपस में निपट लेंगे। इस से भुगतान भी हो गया और खर्चा भी नहीं लगा; अर्थात साँप भी मरा और लाठी भी नहीं टूटी।

ऊपर हमने केवल दो ही देशों का उदाहरण लेकर समझाने का प्रयत्न किया है और वह भी एक ही रक़म (५००० रुपये) का। वास्तव में देखा जाय, तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अनेक देशों के बीच हो सकता है और होता है। इस में लेनदेन भी विभिन्न रकमों में करने होते हैं। किन्तु विनिमय बिलों के लिखने, स्वीकृत करने, बेचने और खरीदने आदि की सब बातें समान होती हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि बिलों का क्रय-विक्रय सीधा न हो कर विनिमय बैंकों की मारफत होता है। इन बैंकों की सेवायें अत्यंन्त आवश्यक होती हैं।

विदेशी विनिमय का माँग पक्ष (Demand side)

यहाँ हमें यह भी जान लेना आवश्यक होगा कि विदेशी विनिमय की माँग किस प्रकार व्यक्त होती है, अर्थात माँग पक्ष में क्या क्या चीजें आती हैं। माँग पक्ष निम्न प्रकार व्यक्त होता है:—

(१) आयात कर्त्ताओं द्वारा;

(२) विदेशी सेवाओं का भुगतान करने वालों द्वारा;

(३) विदेशों में पूंजी का विनियोग करने वालों द्वारा;

(४) विदेशियों को व्याज और लाभांश चुकाने के लिये;

(५) विदेशों में देशाटन के लिये जाने वालों द्वारा;

विदेशी विनिमय का पूर्ति पक्ष (Supply side)

माँग पक्ष की भाँति विदेशी विनिमय का पूर्ति पक्ष भी होता है और वह निम्न प्रकार व्यक्त होता है:—

(१) निर्यात कर्त्ताओं द्वारा;

(२) सेवाओं द्वारा;

(३) देश में विनियोग के लिये पूंजी के आयात द्वारा;

(४) व्याज और लाभांश की प्राप्ति द्वारा;

विनिमय की दर (Rate of Exchange)

विनिमय दर से हमारा आशय उस दर से है जिस पर एक देश की प्रचलित मुद्रा का दूसरे देश की प्रचलित मुद्रा में विनिमय होता हो। दूसरे शब्दों में यह एक देश की मुद्रा का दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्त्तित मूल्य है। इस को हम दो प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं:—

(१) विदेशी मुद्रा की एक इकाई (Unit) स्वदेशी मुद्रा की अमुक इकाइयों के बराबर, जैसे १ पौंड=१५ रुपये।

(२) विदेशी मुद्रा की अमुक इकाइयाँ स्वदेशी मुद्रा की एक इकाई के बराबर। जैसे १ शि. ४ पे.=१ रुपये के।

किसी भी देश में विदेशी विनिमय बिलों का क्रय-विक्रय सदैव इसी दर पर होता है। यह दर परिवर्त्तन

शील रहती है। इस के पूर्व कि हम यह समझायें कि इस दर में परिवर्त्तन लाने वाले कौन कौन से कारण हैं, हमें यह समझ लेना आवश्यक होगा कि विनिमय की दर का निश्चय अथवा निर्धारण किस प्रकार होता है।

विनिमय दर का निर्धारण (Determination of Rate)

दीर्घ काल में दो देशों के बीच विनिमय दर का निर्धारण उन देशों की मुद्राओं में कितनी क्रय शक्ति है, इस पर निर्भर होगा। मुद्रा की क्रय शक्ति वहाँ के मुद्रामान (Monetary Standard) पर निर्भर होता है। अब चूंकि संसार के भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न मुद्रामान विद्यमान हैं, इस लिये उन के बीच में विनिमय दर का निर्धारण भी भिन्न भिन्न प्रकार से होगा।

सुविधा के लिये हम इन सब मुद्रामानों को निम्न चार भागों में बाँट सकते हैं:—

१—जब दोनों देशों में स्वर्णमान हो;

२—जब एक देश में स्वर्णमान हो और दूसरे देश में रौप्यमान,

३—जब एक देश में स्वर्णमान हो और दूसरे देश में अपरिवर्त्तनीय कागजी मुद्रा।

४—जब दोनों देशों में ही अपरिवर्त्तनीय कागजी मुद्रा हो।

१—दोनों देशों में स्वर्णमान—दो ऐसे देशों में जिनकी मुद्रायें एक सी मुद्रा मान पर आधारित हो, दोनों देशों

उदाहरण १.

इंगलैंड और फ्रांस के बीच टकसाली समता—

एक अंगरेजी सावरेन का वजन=७·३२२३६१ ग्राम शुद्ध सोना।

२० फ्रैंक के एक टुकड़े का वजन=५·६०४६ ग्राम शुद्ध सोना।

$$\therefore १ \text{ सावरेन} = \frac{७·३२२३६१ \times २०}{५·६०५६} = २५·२२१५२ \text{ फ्रैंक}$$

∴ उदाहरण २

इंगलैंड और अमरीका के बीच टकसाली समता—

एक अंग्रेजी सावरेन का वजन=११३·००१६ ग्रेन शुद्ध सोना।

एक अमरीकी ईगल (Eagle=१० डालर) का वजन २३२·२ ग्रेन शुद्ध सोना।

अर्थात एक अमरीकी डालर का वजन=२३·२२ ग्रेन

$$\therefore \text{ एक सावरेन } (£) = \frac{११३·००१६}{२३·२२}$$

$$= ४·६६६५ \text{ डालर}$$

यहाँ यह स्पष्ट है कि टकसाली समता का मालुम करना केवल उन्हीं दो देशों के बीच सम्भव है. जो दोनों या तो स्वर्ण मान पर आधारित हों अथवा रौप्य मान पर। यदि वे अलग अलग धातु मान पर आधारित हुये तो उनकी तुलना का आधार यह न होकर दूसरा होगा।

वैसे तो देशों के बीच पारस्परिक विनिमय इस टकसाली समता द्वारा निकाली गई दर ही के आधार पर होना चाहिये, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता।

'The mint par depends, in short, not on the sovereign de-facto but on the sovereign de-pure, unless and until, the law is altered, the mint par can not alter.'

—A B C. of Foreign Exchange by Clare & Cramp.

व्यवहार में, विनिमय की दर में व्यापारिक प्रगति तथा उसके फल स्वरूप होने वाली माँग व पूर्ति के अनुसार सदैव उतार चढ़ाव होते रहते हैं। इस उतार चढ़ाव की सीमायें निश्चित होती हैं। इन सीमाओं से यह दर ऊँची या नीची नहीं जाती। अब देखना यह है कि यह सीमायें किस प्रकार निश्चित की जाती हैं।

विनिमय बिलों का बेचने वाला विनिमय बैंक यह भली भाँति जानता है कि यदि उसने विनिमय की दर अधिक ऊँची रखी, तो भुगतान करने वाला व्यक्ति भुगतान के लिये विनिमय बिल न खरीद कर, स्वर्ण भेज देगा। स्वर्ण भेजने में उसको बीमा खर्च व भाड़ा खर्च अवश्य भुगतना होगा। मान लीजिये प्रति पौंड यह खर्च '०२४ सैंट आता है। तो इसके ये अर्थ हुये कि भुगतान करने वाले को यदि १ पौंड के भुगतान बदले में ४'८६६५ डालर के अतिरिक्त '०२४ सैंट प्रति पौंड तक और देना होता है, तब तो वह विनिमय बिल खरीद कर भुगतान कर देगा और यदि इससे अर्थात ४.८६ डालर से अधिक ऊँची दर हुई, तो फिर उसको स्वर्ण भेजना हितकर होगा। टकसाली समता में खर्चा जोड़कर स्वर्ण का उच्चतम बिन्दु (Upper specie point) और खर्चा घटाकर स्वर्ण का निम्नतम बिन्दु (Lower specie point) निकाला जाता है इन्हीं बिन्दुओं को क्रमशः

स्वर्ण का निर्यात विन्दु (Gold Export point) तथा स्वर्ण का आयात विन्दु (Gold Import point) कहते हैं। इन्हें स्वर्ण विन्दु इसलिये कहते हैं कि विनिमय दर के इन सीमाओं तक पहुँचने पर सोने का आयात व निर्यात होने लग जाता है। यहाँ ऊपरी स्वर्ण विंदु ४·८६६५+·०२४=४·८६ और निचला स्वर्ण विन्दु ४·८६६५—·०२४=४·८४ होगा।

(२) जब एक देश में स्वर्णमान हो और दूसरे में रौप्यमान—इस दशा में विनिमय दर ज्ञात करने के लिये यह जानना आवश्यक होगा कि एक देश की मुद्रा में कितना शुद्ध सोना है और दूसरे देश की मुद्रा में कितनी शुद्ध चाँदी। फिर चाँदी को स्वर्ण के रूप में बाजार भाव या सरकार द्वारा निश्चित दर से बदल कर दोनों मुद्राओं की इकाई का स्वर्ण में मूल्य निकाल लिया जायगा। यह अनुपात ही उन देशों की विनिमय दर होगी। यह दर भारत और इंगलैंड के बीच निम्न प्रकार निकाली जायगी :—

१ रुपये का कुल वजनन १८० ग्रेन

१ रुपये में शुद्ध चाँदी का वजन $\frac{१८०\times ११}{१२}$ =१६५ ग्रेन

१६५ ग्रेन शुद्ध चाँदी=८·४७५ रत्ती शुद्ध स्वर्ण

∵ १ पौंड में शुद्ध स्वर्ण का वजन ११३ रत्ती

∴ १ रुपया = $\left(\frac{८·४७५\times २०\times १२}{११३}\right)$ पैंस = १८ पैंस = १ शि. ६ पैंस।

(३) जब एक देश में स्वर्णमान हो और दूसरे में अपरिवर्तनीय कागजी मुद्रा—दो ऐसे देशों में विनिमय दर का निर्धारण करना एक बड़ा कठिन कार्य होता है, क्योंकि कागजी मुद्रा वाले देश के व्यापारियों के पास भुगतान के लिये स्वर्ण का साधन न होने से, उन को इस के लिये विनिमय बिलों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। विनिमय बिलों के बेचने वाले बैंक और दलाल उन की इस असमर्थता का पूरा पूरा लाभ उठाना चाहते हैं और बिलों को अत्यधिक ऊँची दरों पर बेचने का प्रयत्न करते हैं। वैसे भी भुगतान के लिये केवल यही एक साधन होने से बिलों की मांग बहुत बढ़ जाना और उस के फलस्वरूप विनिमय दर का इतना ऊँचा चला जाना स्वाभाविक है। किन्तु यह कठिनाई कागजी मुद्रा वाले देश के साथ ही होगा, स्वर्ण वाले देश के साथ नहीं। क्योंकि स्वर्ण मुद्रा वाले देश के व्यापारी तो दर के अधिक बढ़ने ही स्वर्ण भेज देंगे।

(४) जब दोनों ही देशों में अपरिवर्तनीय कागजी मुद्रा हो—आज का युग कागजी मुद्रा का युग है और यह कागजी मुद्रा भी अधिकांश देशों अपरिवर्तनीय होती है। इस लिये इस युग में स्वर्णमान की भांति, न तो विनिमय की टकसाली समता का ही प्रश्न है और न विनिमय दर का स्वर्ण बिन्दुओं के बीच ही डटे रहने का। आज के युग में तो विनिमय की दर उन देशों में होने वाली विदेशी बिलों की मांग और पूर्ति पर ही निर्भर रहेगी। इस दर के उतार चढ़ाव की कोई सीमा ही नहीं होती। अब देखना यह है कि अपरिवर्तनीय

ानजी मुद्रा वाले देशों के वीच यह दर किन सिद्धान्तों क अनुसार निर्धारित होती है। ये सिद्धान्त निम्न लिखित हैं :—

(१) व्यापार संतुलन सिद्धान्त (Balance of Trade Theory).

(२) हिसाव संतुलन सिद्धान्त (Balance of Accounts Theory).

(३) क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त (Purchasing Power Parity Theory).

यापार संतुलन सिद्धान्त—

इस सिद्धान्त के अनुसार, यदि कोई देश आयात की पेक्षा निर्यात अधिक करता है, तो व्यापार का संतुलन Balance of Trade) उस देश के पक्ष में होगा। स देश के बिलों की माँग दूसरे देशों में वढ़ जाने से निमय दर उस के अनुकूल होगी। इस के विपरीत, दि किसी देश में निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक ती है, तो व्यापार का संतुलन उस देश के विपक्ष में ला जायगा और इस के फलस्वरूप विनिमय दर भी तिकूल चली जायगी। संक्षेप में यों कह सकते हैं कि स सिद्धान्त के अनुसार विनिमय दर व्यापारिक संतुलन) शासित होती है। अनुकूल संतुलन के साथ अनुकूल विनिमय दर और प्रतिकूल संतुलन के साथ प्रतिकूल विनिमय दर होगी। यह सिद्धान्त बड़ा प्राचीन है, किन्तु ाव इसका महत्व नहीं रहा।

हिसाब संतुलन सिद्धान्त—

व्यापार संतुलन सिद्धान्त, जिस को हम ऊपर समझा आये हैं, केवल वस्तुओं के प्रत्यक्ष आयात व निर्यात पर ही निर्भर करता है। किन्तु वास्तव में देखा जाय, तो एक देश द्वारा दूसरे देश को केवल दृश्य वस्तुओं के लिये ही भुगतान नहीं करना पड़ता, बल्कि कई अदृश्य चीजें भी भुगतान को आवश्यक बना देती है। इस लिये इस सिद्धान्त के अनुसार विदेशी विनिमय दर सदैव दो देशों की पारस्परिक कुल लेनी देनी (Debit & Credit से उत्पन्न विदेशी बिलों की माँग तथा पूर्ति से निर्धारित होती है। यह कुल लेनी देनी निम्न प्रकार व्यक्त है।

(१) देश का विदेशी व्यापार—विदेशी व्यापार से देश में आयात व निर्यात दोनों होते हैं। जिस माल का आयात होता है उस के लिए दूसरे देशों को भुगतान करना पड़ता है और जिस माल का निर्यात होता है उसके लिए रकम वसल करनी पड़ती है।

(२) जहाजी भाड़ा (Shipping Freight)—माल एक स्थान से दूसरे स्थान को लाने ले जाने का कार्य जहाजों द्वारा सम्पन्न होता है। जिस देश के जहाज माल लाते ले जाते हैं, वह दूसरे देशों से भाड़े की रकम के लिये लेनदार और जिन देशों का माल लाया व ले जाया जाता है. वे देनदार हो जाते हैं। हमारी स्वतन्त्रता से पूर्व इंगलैंड को हम से एक बड़ी रकम इस प्रकार मिल जाया करती थी, किन्तु अब ऐसा कम होता।

(४) जहाजी कप्तानों द्वारा खर्च—जब जहाज कई बन्दरगाहों से गुजरते हैं, तो उनके कप्तानों को मार्ग में कई प्रकार

के खर्चे करने होते हैं। जिन देशों के जहाजी कप्तान दूसरे देशों में कुछ व्यय करते हैं, वे देनदार और जिन देशों में व्यय किया जाता है, वे लेनदार हो जाते हैं।

(४) प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय—प्राय: एक देश की प्रतिभूतियाँ (Securities), जैसे अंश-पत्र व ऋण-पत्र आदि दूसरे देश में खरीदी व बेची जाती हैं। क्रेता देश देनदार और बिक्रेता देश लेनदार हो जाते हैं।

(५) सेवायें—एक देश दूसरे देश को कई प्रकार की सेवायें प्रदान कर सकता है जिनमें बैंक और बीमा कम्पनियों की सेवायें मुख्य हैं। जिस देश के लोग अपनी सेवायें देते हैं, वे देश लेनदार और जो देश सेवायें स्वीकार करते हैं, वे देनदार होते हैं।

(६) ऋण का लेन देन—जब कोई देश किसी देश को ऋण देता है, तो ऋणदाता देश देनदार और ऋण लेने वाला देश लेनदार हो जाता है। ऋण चुकाते समय इसकी विपरीत परिस्थिति होगी। ऋण के साथ ब्याज के लेन देन का प्रश्न भी उत्पन्न हो जाता है।

(७) विदेशियों की बचत और लाभ—जब एक देश के लोग दूसरे देश में काम करते हैं, तो वे अपनी आय में से कुछ बचाकर अपने देश में बचत (Savings) के रूप में भेजते हैं। इसके अतिरिक्त विदेशों में उद्योग धंधों में लगी हुई पूँजी पर लाभांश भेजने का प्रश्न भी उपस्थित होता है। इस प्रकार की बचत और लाभांश भेजने वाले देश देनदार और प्राप्त करने वाले देश लेनदार हो जाते हैं।

८—देशाटन पठन-पाठन—जब किसी देश के निवासी दूसरों देशों में देशाटन के लिये अथवा पढ़ने के लिये जाते हैं और वहां रहकर कुछ व्यय करते हैं, तो वे देश देनदार और जिन देशों में व्यय किया जाता है, वे लेनदार हो जाते हैं।

(९) विदेशों में सरकारी व्यय—विदेशों में होने वाले राजदूतों आदि के लिये राष्ट्रीय खर्च उस देश को देनदार बना देता है और दूसरे देशों द्वारा इस प्रकार के किये गये खर्चे के लिये लेनदार बना देता है।

(१०) दान, नकदी भेंट आदि—जो देश अन्य देशों में धर्म आदि के कार्य लिये रकम भेजता है, वह देनदार और जो देश पाता है, वह लेनदार हो जाता है। यही बात नकदी भेंट और जमानत आदि के लिये लागू होती है।

इस सिद्धांत का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके अनुसार विनिमय दर निर्धारित करते समय मुद्रा सम्बन्धी परिस्थितियों पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता। इसी लिये आजकल क्रय-शक्ति सिद्धांत पर जोर दिया जाता है।

२—क्रय शक्ति समता सिद्धांत—क्रय शक्ति समता सिद्धांत के मूल प्रवर्तक स्वीडेन के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री गस्टन कैसिल (Gustana Cassel) थे। प्रथम महायुद्ध के दिनों में जब अधिकांश देशों में अपरिवर्तनीय कागजी मुद्रा ही का बोलबाला था। वे इस सिद्धांत को जनता के सामने लाये। इस सिद्धांत के अनुसार दो ऐसे देशों के बीच जिनका कि स्वर्णमान से कोई सम्बन्ध

नहीं हो, विनिमय दर का निर्धारण उनकी विनिमय मुद्राओं की क्रय शक्ति समता पर अर्थात, मूल्य स्तरों (Price levels) के पारस्परिक सम्बन्ध द्वारा निश्चित होता है। जिस देश की मुद्रा की क्रय शक्ति वस्तुओं व सेवाओ के रूप में जितनी अधिक होगी, उतनी ह अधिक उस देश की मुद्रा की विनिमय दर भी होगी इसी प्रकार जिस देश की मुद्रा की क्रय शक्ति वस्तुओं व सेवाओं के रूप में जितनी कम होगी, उतनी ही कम उस देश की मुद्रा की विनिमय दर होगी। संक्षेप में इस सिद्धान्त के अनुसार विनिमय की समता विभिन्न मुद्राओं की क्रय शक्ति पर निर्भर करती है नकि टकसाली समता आदि पर। इस सिद्धांत के अनुसार विनिमय यह देखना होगा कि अमुक वस्तु की मात्रा खरीद करने के लिये हमको एक देश में कितनी मुद्रायें देनी पड़ती हैं और दूसरे देश में कितनी। दोनों का अनुपात ही विनिमय दर कहलायेगी। मान लीजिये 'क' वस्तुयें खरीदने के लिये हमको इगलैंड में १ पौंड और देना पड़ता है, वे ही 'क' वस्तुयें खरीदने के लिये हमको अमेरिका में ५ डालर। तो १ पौंड ५ डालर के बराबर हुआ। इसी बात को कोल (G. D. H. Cole) ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—"राष्ट्रीय मूल्य जो स्वर्ण से असम्बन्धित है— दीर्घकाल में विशेपतः उनकी वस्तुयें व सेवाओं की परस्पर क्रय शक्ति से निश्चित होता है।"

यहाँ यह स्मरण रहे कि टकसाली समता दर की भाँति क्रय शक्ति समता दर में भी उतार चढ़ाव होते रहते हैं। ये उतार चढ़ाव मूल्य स्तर में परिवर्तन

के साथ ही होते हैं और ये मूल्य स्तर के परिवर्तन के निर्देशांकों द्वारा निश्चित किये जाते हैं। अब हम इंगलैंड और अमरीका की विनिमय दर निश्चित करते हैं। मान लीजिये डालर और पौंड की टकसाली दर १ पौंड=४.८८६ डालर है और दोनों देशों के मूल्य स्तर ऊँचा चले जाने से उनके निर्देशांक १५० (इंगलैंड और २०० (अमेरिका) हो जाते हैं। इस दशा में यह इस दशा में यह दर इस प्रकार निश्चित की जायगी।

$$१ \text{ पौंड} = \frac{४८.६६ \times २००}{१५०} = ६.४८८ \text{ डालर}$$

यहाँ पौंड का मूल्य पहिले की अपेक्षा बढ़ गया है। इसका कारण स्पष्ट है और वह यह है कि अमेरिका में वस्तुओं के मूल्य अधिक बढ़े हैं और इंगलैंड में कम जैसे उनके निर्देशांकों से प्रकट है। इसी प्रकार भारत और इंगलैंड के बीच भी विनिमय दर निम्न गुर (Formula) द्वारा आसानी से निश्चित की जा सकती है—

$$१ \text{ रुपया} = \frac{१८ \text{ पेंस} \times \text{ब्रिटिश निर्देशांक}}{\text{भारतीय निर्देशांक}}$$

इससे यह सिद्ध होता है कि जब दो देशों की मुद्राओं के मूल्य में ह्रास अथवा वृद्धि होती है तो टकसाली दर को दोनों देशों की मुद्रा स्फीति अथवा मुद्रा संकुचन के भागफल से गुणा कर के क्रय शक्ति समता मालुम की जा सकती है।

क्रय शक्ति समता की टकसाली समता से तुलना — वास्तव में देखा जाय, तो विनिमय की क्रय शक्ति समता और टकसाली समता में कोई विशेष अन्तर नहीं है। विनिमय की टकसाली समता में हम प्रत्येक देश की मुद्रा का मूल्य स्वर्ण में मालूम करते हैं और दर निश्चित करने के लिये हम दोनों देशों की मुद्राओं में निहित शुद्ध स्वर्ण की तुलना करते हैं। जबकि क्रय शक्ति समता में हम प्रत्येक देश की मुद्रा का मूल्य किसी एक विशेष वस्तु में न कर अनेक वस्तुओं में मालूम करते हैं और विनिमत दर तिश्चित करने के लिये निर्देशांकों के रूप में उनके मूल्य-स्तर की तुलना करते हैं। दूसरे, टकसाली समता तो इस अतीत की देन है जब लोग मुद्रा से नहीं बल्कि मुद्रा में निहित स्वर्ण से मोह रखते थे, किन्तु आज तो अपरिवर्तनीय कागजी मुद्रा का अत्यधिक उपयोग होने से क्रय शक्ति समता का सिद्धान्त ही अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त की परिमितता (Limitations of the P. P. P. Theory)—यह हम देख आये हैं कि क्रय शक्ति समता द्वारा विनिमय दर निकालने में निर्देशांकों का उपयोग अनिवार्य है। ये निर्देशांक मूल्य स्तर में परिवर्तनों का एक सही माप न होकर केवल मूल्यों में उतार चढ़ाव की एक औसत मात्र है। इसलिये वह माप (विनिमय दर) जो एक ऐसे माप (निर्देशांक) पर आधारित हो, जो स्वयं एक सही माप न हो, सही कैसे हो सकती है। यही कारण है कि क्रय शक्ति समता सिद्धान्त द्वारा निकाली गई विनिमय दर प्रायः वास्तविक विनिमय दर से भिन्न होती है। इतना होने पर भी, हमारे पास दूसरा कोई विकल्प (Alternative) न होने से निर्देशांक ही उपयोग में लाये जाते हैं। इस परिस्थिति में यह आवश्यक

हो जाता है कि निर्देशांकों के बनाने में हम पूरी सतर्कता बर्तें और निर्देशांकों की एक रूपता (Uniformity) न जाने दें।

दूसरे, इस सिद्धान्त को यह भी एक दुर्बलता है कि यह हिसाब सन्तुलन की बिलकुल उपेक्षा करता है, जिसका आन्तरिक क्रय शक्तियों से कोई सम्बन्ध ही नहीं होता। तीसरे, यह सिद्धान्त आजकल अधिकांश देशों में पाये जाने वाले अनेक प्रकार के कर इत्यादिकों भी उपेक्षा करता है। वास्तव में देखा जाये, तो ये कर भी किसी भी देश के मूल्य स्तर पूरा २ प्रभाव डालते हैं। इसलिये अन्त में यही कहा जा सकता है कि क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त द्वारा निर्धारित विनिमय दर तो एक सामान्य अथवा काल्पनिक दर है जो अन्य बातों के समान रहते हुये दीर्घ काल में निर्धारित होने लगती है। किन्तु ये अन्य बातें समान बहुत कम रहती हैं।

क्रय शक्ति समता सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the P. P. P. Theory,—क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त की काफी आलोचना की गई है जिसके कारण निम्नलिखित हैं:—

(१) यह सिद्धान्त निर्देशांकों पर आधारित हैं, जो कभी सही नहीं पोते। इन निर्देशांकों के स्वयं एक मूल्यों के उतार चढ़ाव की औसत होने के कारण इन पर आधारित दर भी एक काल्पनिक दर ही होती है।

(२) क्रय-शक्ति समता की पूर्णता के लिये यह आवश्यक है कि हम अधिक से अधिक वस्तुओं के रूप में मुद्रा की क्रय-शक्ति को आँकने का प्रयत्न करें, किन्तु निर्देशांकों के बनाते समय हम कुछ ही वस्तुओं को लेते हैं और ये वस्तुयें भी ऐसी होती हैं, जिनका जीवन के सारे क्षेत्रों पर प्रभाव नहीं होता।

इन निर्देशांकों में ऐसी वस्तुओं का समावेष वहुत कम होता है जो अन्तराष्ट्रीय व्यापार में कोई महत्व रखती हों।

(३) मूल्य स्तर का पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अनेक प्रकार के व्यापारिक वंधनों व राजनैतिक परिस्थितियों पर पूरा पूरा ध्यान दें, किन्तु क्रय शक्ति समता निकालते समय हम ऐसा नहीं करते। वल्कि हम तो यह मान कर चलते हैं कि अन्य वातें पूर्ववत रहती; हैं किन्तु यह कभी नहीं होता।

४ हिसाव संतुलन सिद्धान्त समझाते वक्त हम जिन वातों को उल्लेख कर आये हैं उन वातों पर यह सिद्धान्त कभी ध्यान नहीं देता।

इन सव आक्षेपों के होते हुये भी इस सिद्धान्त की विनिमय दरधारण की उपयोगिता से इनकार नहीं किया जा सकता। दीर्घकाल में विनिमय दर निश्चत करने के लिये यह एक अनुपम साधन है। इस के अतिरिक्त किसी भी देश की मुद्रा का अधि मूल्यन अथवा अवमूल्यन (Over valuation or Under valuation) करते समय तो कम से कम यह सिद्धान्त हमालिये मार्ग प्रदर्शन कर वडा उपयोगी सिद्ध होता है।

विनिमय दर निर्धारण के सम्वन्ध में अन्त में यह जान लेना भी आवश्यक होगा कि उपर्युक्त परिस्थियों में विनिमय दर निर्धारण के अतिरिक्त कभी कभी कृत्रिम तरीकों से भी इसे निर्धारित किया जाता है। अव तक हमारी मुद्रा का निर्धारण इसी तरीके से होता चला आया है। इस के लिये हमारे देश में स्टलर्लिंग का और इंगलड में रुपयों का एक वडा भारी कोष

स्थापित रखा जाता है। जब कभी इस दर में कुछ नीचे उतार होने लगता है, तो सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक इस कोष में से पत्र तथा विपत्र बेचना व खरीदना प्रारम्भ कर देती है, जिस से दर अपनी स्वाभाविक स्थिति पर आ जाती है। सरकार के पास इन का एकाधिकार होने से यह तरीका बड़ा प्रभाव पूर्ण सिद्ध होता है।

विनिमय दर में होने वाले उतार चढ़ाव के कारण (Causes of Fluctuations in the rate of Exchange)—विनिमय दर में होने वाले उतार-चढ़ाव के कारणों को हम निम्न लिखित भागों में बाँट सकते हैं :—

मांग तथा पूर्ति—

१—आयात व निर्यात।

२—स्टाक विनिमय की क्रियाएँ।

३ विदेशी पूंजी का विनियोग।

४—मूल्यान्तर लाभार्थ क्रय-विक्रय (Arbitrage operations)

५—सट्टा (Speculations).

मुद्रा सम्बन्धी—

१—मुद्रा स्फीति व मुद्रा संकोच।

२ बैंक दर।

राजनैतिक कारण—

१—राष्ट्रीय आय व्यय पत्रक (Budget).

२—युद्ध तथा अशान्ति।

३ विनिमय नियन्त्रण।

औद्योगिक कारण—

१—देश की औद्योगिक नीति।

मांग तथा पूर्ति—

(१ आयात व निर्यात—प्रत्येक देश की विनिमय दर उस देश की आयात व निर्यात पर निर्भर करती है। इस वस्तुओं व सेवाओं के आयात व निर्यात से ही विनिमय की मांग तथा पूर्ति निश्चित होती है। जब किसी देश की निर्यात आयात से अधिक होती है, तो उस देश को मुद्रा की मांग पूर्ति से अधिक हो जाती है और इस दशा में विनिमय दर भी देश के अनुकूल (Favourable) रहती है, क्यों कि अब देश की मुद्रा का मूल्य अन्य देशों की मुद्राओं के मूल्य की समता में अधिक होता है। इस के विपरीत जब आयात निर्यात से अधिक होती है, तो उस देश की मुद्रा की पूर्ति मांग से अधिक हो जाती है और इस दशा में विनिमय दर भी प्रतिकूल (Unfavourable) हो जाती है, क्यों कि अब देश की मुद्रा का मूल्य अन्य देशों की मुद्राओं के मूल्य की समता में कम होता है। दूसरे शब्दों में, किसी भी देश को विनिमय दर का उतार चढ़ाव उस देश की मुद्रा की मांग तथा पूर्ति पर, जो कि उस देश के व्यार सन्तुलन से जुड़ी होती है, निर्भर करती है। अनुकूल व्यापार सन्तुलन से विनिमय दर चढ़ेगी और प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन से यह गिरेगी।

(२) स्टाक विनिमय की क्रियायें (Stock Exchange Operations)—जब किसी देश के स्टाक बाजार में देशी प्रतिभूतियों (Securities) के मूल्य विदेशी प्रतिभूतियों की अपेक्षा अधिक बढ़ जाते हैं, तो लोग विदेशी प्रतिभूतियों में विनियोग करना चाहते हैं, जिस से विदेशी मुद्रा की मांग बढ़ जाती है और

विनिमय दर प्रतिकूल चली जाती है। इस के विपरीत होने पर विनिमय दर अनुकूल जायगी।

(३) विदेशी पूँजी का विनियोग—जब एक देश की पूँजी दूसरे देश में विनियोग की जाती है, तो जिस देश में पूँजी विनियोग के लिये बाहर से आती है, तो उस देश की मुद्रा की माँग बढ़ जाती है। माँग बढ़ जाने से विनिमय दर अनुकूल हो जायगी। जिस देश के लोग विनियोग करते हैं, उस देश की दर प्रतिकूल हो जायगी। ब्याज व रकम वापिस चुकाने समय इस के विपरीत दशा होगी।

मूल्यान्तरलाभार्थ-क्रयविक्रय (Arbitrage operations)—जब दो या दो से अधिक स्थानों पर मूल्यों के अन्तर के कारण एक ही वस्तु का एक ही समय क्रय-विक्रय किया जाता है, तो यह मूल्यान्तर लाभार्थ क्रय विक्रय कहलाता है। इस प्रकार के क्रय-विक्रय प्रायः बैंक करते हैं जिन के पास संवाद वाहन के सब साधन सुलभ होते हैं। इस में अल्प काल के लिये रकम का हस्तान्तरण होता है। इस का भी विनिमय दर पर पूरा प्रभाव पड़ता है।

(५) सट्टा या परिकाल्पनिक व्यवहार—प्रायः जब देश में राजनैतिक अथवा आर्थिक कारणों से अनिश्चितता बढ़ जाती है, तो लोग सट्टा अधिक करने लगते हैं। जब सट्टे बाज यह सोचने लगते हैं कि विनिमय-दर विदेशी मुद्रा में बढ़ेगी, तो वे विदेशी मुद्रा को खरीदना आरम्भ करदेते हैं, जिससे विदेशी मुद्रा की माँग बढ़ जाती है और विनिमय दर में वृद्धि हो जाती है। इस के विपरीत, जब वे सोचते हैं कि विनिमय दर गिरेगी तो वे विदेशी मुद्रा को बेचना आरम्भ कर देते हैं, जिससे विदेशी मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाती है और विनिमय दर गिरजाती है।

२—मुद्रा सम्बन्धी कारण :—

(१) मुद्रास्फीति व मुद्रा संकोच-देशों में मुद्रा प्रसार व मुद्रा संकोच का प्रभाव मुद्रा के वाह्य मूल्य पर भी पड़ता है। जब देश में मुद्रा प्रसार होता है, तो मूल्यस्तर ऊँचा चला जाता है। देश में विदेशी वस्तुयें सस्ती पड़ने के कारण उनका आयात खूब बढ़ जाता है और निर्यात कम होजाता है। लोग देश के बाहर मुद्रा विनियोग करने लग जाते हैं। इससे देश का व्यापार सन्तुलन प्रतिकूल चला जाता है, जिसके फलस्वरूप विनिमय दर भी नीची चली जाती है। मुद्रा संकोच के समय सब बातें विपरीत होती हैं, अर्थात देश से निर्यात अधिक होने के कारण व्यापार संतुलन अनुकूल हो जाता है और विनिमय दर भी बढ़ जाती है।

(२) बैंक दर—बैंक दर का भी विनिमय दर पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। जब देश में बैंक दर बढ़ा दी जाती है, तो उसके साथ देश की लाभांश दर भी बढ़ जाती है, जिससे विदेशियों को वहाँ पूँजी का विनियोग करना अधिक लाभदायक सिद्ध होता है। देश में पूँजी के आगमन से उस देश की मुद्रा की माँग बढ़ जाती है और उसके कारण विनिमय दर भी ऊँची चली जाती है। इसके विपरीत जब बैंक दर गिरा दी जाती है, तो देश की पूँजी बाहर जाने लगती है और विदेशी मुद्रा की माँग अधिक हो जाने से विनिमय दर गिर जाती है।

३—राजनैतिक कारण

(१) राष्ट्रीय आयव्यय पत्रक (Budget)—देश का आय व्यय पत्रक भी देश की आर्थिक दशा का एक दर्पण माना जाता है। यदि देश का बजट संतुलित अथवा अधिक आय वाला

प्रभाव होगा :—

(१) इस से आयात कर्त्ताओं को लाभ होता है, क्यों कि विदेशियों को भुगतान करते समय उन को अपनी कम मुद्रा देनी पड़ती है। दूसरे शब्दों में उन को माल सस्ता पड़ता है।

(२) निर्यात कर्त्ताओं को हानि होती है, क्योंकि विदेशियों को वस्तुयें महंगी पड़ने के कारण वे माल का आयात बहुत कम करते हैं।

(३) उत्पादकों को बड़ी हानि होती है, क्यों कि देश में तो उन को सस्ते विदेशी माल की स्पर्धा सहनी होती है और विदेश में उन का माल महंगा होने के कारण जान नहीं सकता। उत्पादन गिर जाता है।

(४) उत्पादन का सीधा प्रभाव श्रमिकों पर पड़ता है, क्योंकि उत्पादन के गिरने से बेरोजगारी फैललती है।

(५) माल सस्ता बनाने के हेतु उत्पादक मजदूरी कम करना चाहते हैं और कभी कभी अनावश्यक खर्चा कम करने की दृष्टि से छंटनी (Retrenchment) भी शुरू करते हैं। इस से उत्पादक और श्रमिकों में पारस्परिक कलह (Dispute) उत्पन्न हो जाता है।

(६) उपभोक्ताओं को लाभ होता है, क्यों कि उन को सस्ता विदेशी माल प्राप्त हो जाता है।

(७) जिन व्यक्तियों को विदेशियों को कुछ रकम देना होता है अथवा भेजना होता है, उस को कम देना पड़ता है, अर्थात लाभ होता है किन्तु लेने वाले को हानि होगी।

(८) यदि देश की सरकार को विदेशी सरकारों को कुछ देना है, तो इस समय देने में लाभ होगा, क्योंकि कम मुद्रा देनी पड़ेगी।

विनिमय की आदर्श दर (Ideal Rate of Exchange).

हम ऊपर देख आये हैं कि विनिमय की दर भिन्न भिन्न प्रकार के व्यक्तियों पर भिन्न भिन्न प्रभाव डालती है। कोई भी दर, यदि एक समुदाय के लिए अच्छी है तो दूसरे के लिये बुरी। इसलिये प्रश्न यह होता है कि किस दर को विनिमय की एक आदर्श दर कहा जाय। कुछ लोगों का मत है कि विनिमय दर अच्छी वह होगी जो टकसाली दर से ऊँची हो, जिससे देश में सोना निरन्तर आता रहे। इस विचार धारा के प्रतिपादन करने वाले व्यवसायी (Mercantilists) लोग थे। दूसरी विचार धारा वाले लोग वे हैं जो अधिकतर राष्ट्रीय विचार रखते हैं और राजनैतिक दृष्टि से उस दर को अच्छी मानते हैं, जिससे देश के व्यवसाय व उद्योग धन्धे चमक सकें। यह तभी सम्भव है जब यह दर टकसाली दर से नीची हो। वैसे तो एकांत रूप से कुछ नहीं कहा जासकता, किन्तु पिछड़े हुये देश, जैसे भारत, आदि के लिये नीची दर ही आदर्श दर कहलाएगी, क्योंकि यह दर इनके आर्थिक विकास में अत्यन्त सहायक होगी।

अग्रगामी विनिमय बाजार (Forward Exchange Markets) पिछले पृष्ठों में हम विनिमय दर के उतार चढ़ाव, उसके कारण व प्रभाव इत्यादि के बारे में पढ़ आये हैं। इस विनिमय दर के उतार चढ़ाव के घातक परिणामों से बचने के लिये हमें अग्रगामी विनिमय बाजारों की शरण लेनी पड़ती है। ये बाजार भविष्य में होने वाले विनिमय दर के उतार-चढ़ावों से सम्भावित हानि से बचने के लिये पूरी सुविधा प्रदान करते हैं। अग्रगामी विनिमय दर निश्चित करलेनी पड़ती है। यह वह दर है जो विदेशी मुद्रा की उस मात्रा को बतलाती है, जो अपने देश की मुद्रा के बदले में किसी भावी निश्चित तिथि को प्राप्त

हो सकती है। इस दर का निश्चित करना बड़ा कठिन होता है, क्योंकि इसके निश्चित करने में उस देश की बैंक दर, ब्याज दर, मुद्रानीति व्यापार प्रति बंध, विनिमय नियंत्रण तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति आदि को ध्यान में रखना आवश्यक है। ये विनिमय के सौदे व्यापारी अपनी सुरक्षा के लिये करते हैं। व्यापारी लोग विदेशों से मंगाये हुये माल का मूल्य उस समय मौजूदा भावों के आधार पर अपने देश की मुद्रा में लगाते हैं, किन्तु कौन जानता है कि माल के आने तक विदेशी मुद्रा के भाव में परिवर्तन हो जाय इस लिये इस सम्भावित हानि से बचने की दृष्टि से व्यापारी भुगतान की तिथि के लिवे अग्रगामी विनिमय की खरीद का सौदा कर लेते थ दूसरी ओर, जिन व्यापारियों को भविष्य में भुगतान मिलनेवाला होता है, वे सम्भावित हानि से बचने के लिये अग्रगामी विनिमय की बिक्री का सौदा कर लेते हैं। विनिमय बैंक भी अपने आप को सम्भावित हानि से बचने के लिये क्रय विक्रय कर लेते हैं।

इन बाजारों में जब विनिमय बिलों का मूल्य स्वदेशी मुद्रा में टकसाली समता से नीचे उद्घृत (quote) किया जाय तो विनिमय दर स्वदेश के लिये अनुकूल दर कहलायेगी और जब इन बिलों का मूल्य स्वदेशी मुद्रा में टकसाली समता से ऊंचा उद्घृत किया जाय, तो विनिमय दर देश के लिये प्रतिकूल दर कहलायेगी। विनिमय दर के विदेशी मुद्रा में उद्घृत किये जाने पर ऊंची दर देश के अनुकूल और नीची दर देश के प्रतिकूल होगी। इसी लिये ऐसे देश के लिये ऊंची दर में खरीदो और नीची दर में बेचो (Buy High and Sell low) वाला सिद्धान्त हित कर होता है।

विनिमय नियन्त्रण (Exchange Control).

आत्मरक्षा प्रकृति का प्रथम नियम है। आज-कल तो व्यक्ति ही नहीं बल्कि राष्ट्र भी आत्मरक्षा की बातें सोचने लगे हैं। विनिमय नियन्त्रण राष्ट्र के द्वारा आत्म रक्षा का एक अनुपम उदाहरण है। विनिमय नियन्त्रण से हमारा आशय उस सरकारी हस्तक्षेप से है, जिस के द्वारा विनिमय दर कृत्रिम साधनों से इच्छानुसार निश्चत रखी जाती है और जो इन साधनों के बिना सरकार द्वारा उपयोग किये निश्चित नहीं रह सकती। आजकल अधिकांश देशों में यह कार्य केन्द्रीय बैंकों को सुपुर्द कर दिया गया है। केवल इन बैंकों को ही विदेशी विनिमय के क्रय विक्रय का अधिकार होता है अन्य, किसी को नहीं। प्रथम महा युद्ध के पूर्व इस प्रकार का हस्तक्षेप अनावश्यक समझा जाता था और खुला-व्यापार नीति (Free Trade Policy) का अनुसरण किया जाता था। किन्तु प्रथम महायुद्ध के दिनों में विनिमय नियन्त्रण आवश्यक समझ, इसका प्रयोग पहिले पहल किया गया: और अब तो संसार के स प्रमुख देशों एवं (भारत में भी) में इसका प्रयोग किया जाता है।

विनिमय नियन्त्रण के उद्देश्य

विनिमय नियन्त्रण के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

(१) देश के प्रतिकूल व्यापा संतुलन को ठीक करना—जब किसी देश का व्यापार सतुलन निरन्तर प्रतिकूल रहता चला जाय, तो उस देश के मुद्रा संचालक के लिये विनिमय-नियन्त्रण द्वारा क्रियाशील हस्तक्षेप (Active Interference) करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। वह विनिमय नियन्त्रण का कोई भी तरीका काम में लाकर आयात निश्चित कर देता है,

जिससे व्यापार संतुलन विपक्ष में नहीं जा पाता। इससे देश से स्वर्ण बाहर जाने से रुक जाता है और देश की सुरक्षित स्वर्ण निधि का अपव्यय नहीं हो पाता। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये जर्मनी ने १६३१ में और भारत ने १६४७ में विनिमय नियन्त्रण लगाया था।

(२) देशी उद्योग-धन्धों को संरक्षण देना जब देश के उद्योग धन्धे विदेशी तिस्पर्धा (Competition) से पिस रहे हों, तो देश की सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक उनको संरक्षण देने की दृष्टि से विनिमय नियन्त्रण लगा देती है। यह तो इन वस्तुओं का आयात बिलकुल रोक देती है या बडी चुंगी लगा देती है, जिससे देशी उद्योगों को बड़ा प्रोत्साहन मिलता है। हमारे देश का शक्कर उद्योग इस संरक्षण के मिलने के बाद ही चमका है।

(३) देश में घातक व विलासप्रिय वस्तुओं को आने से रोकना—विनिमय नियंत्रण का एक उद्देश्य देश को फैशनेबिल तथा विलासप्रिय वस्तुओं को आने से रोकना भी है। जब चीन ने देखा कि अफीम का आयात देश के लिये बड़ा घातक है, तो उसने इसके आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिये। इसी प्रकार हमारे देश में भी सिगरेट व अन्य विलास- प्रिय वस्तुओं के आयात पर भारी कर लगा हुआ है।

(४) विदेशी विनिमय का अधिकतम व सर्वोत्तम उपयोग करना—कई बार विदेश की विनिमय का उपयोग देश की औद्योगिक व आर्थिक उन्नति की दृष्टि से कुछ वस्तुओं के आयात तक ही सीमित कर दिया जाता है; जैसे कल पुर्जे व कच्चे माल का आयात। इस प्रकार के विनिमय नियंत्रण

में सारा विदेशी विनिमय केन्द्रीय बैंक अपने हाथ में ले लेती है और उपर्युक्त आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु के लिये विदेशी विनिमय देती ही नहीं। इससे विदेशी विनिमय का अधिकतम व सर्वोत्तम उपयोग हो जाता है।

(५) आत्म-निर्भरता प्राप्त करना—कभी कभी विनिमय नियंत्रण का मुख्य उद्देश्य केवल आत्म निर्भरता ही होता है। आजकल अधिकांश देश इस बात का प्रयास करते हैं, किन्तु पूर्ण आत्म निर्भरता असम्भव नहीं, तो दुर्लभ अवश्य है।

विनिमय नियन्त्रण की विधियाँ

(१) व्यापारिक नियन्त्रण—इसके अन्तर्गत ऐसी चीजें आती हैं, जैसे आयात व निर्यात कर, आयात व निर्यात के परिमाण का निश्चय और आयात व निर्यात अनुमति पत्र (Licences) आदि। व्यापारिक नियंत्रण की ये विधियाँ आजकल प्राय: संसार के सब देशों में उपयोग में लाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त आजकल कोटा (quota) पद्धति भी उपयोग में लाई जाती है जिसके अनुसार एक निश्चित अवधि में एक निश्चित मात्रा तक ही माल का आयात हो सकता है। ये सब उपायें देश के व्यापार संतुलन को और उसके फल स्वरूप विनिमय दर को अनुकूल बनाये रखने के लिये किये जाते हैं।

(२) विदेशी विनिमय का नियन्त्रित वितरण—इस पद्धति के अनुसार विदेशी विनिमय का क्रय विक्रय एक निश्चित दर पर एक निश्चित कार्य के लिये ही किया जाता है। यह कार्य आजकल सब देशों में केन्द्रीय बैंक ही करते हैं। इससे विदेशी

विनिमय का सुनियन्त्रित वितरण सम्भव हो जाता है।

(३) बैंक दर द्वारा नियन्त्रण—हम यह पढ़ आये हैं कि बैंक दर का विनिमय दर पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। बैंक दर के बढ़ जाने पर उस देश की ब्याज दरें भी बढ़ जाती हैं, जिससे देश में बाहर से पूंजी आने लगती है और विनिमय दर भी बढ़ जाती है। इसी प्रकार बैंक दर के कम हो जाने पर विनिमय दर भी कम हो जाती है, क्योंकि पूंजी देश से बाहर जाने लगती है। इसलिये जब विनिमय दर में परिवर्तन करना हो बैंक दर में परिवर्तम कर दिया जाता है।

(४) विनिमय दर का बन्धन (Pegging the Exchange Rate)-कभी कभी किसी देश की सरकार अपने देश की विनिमय दर को सामान्य दर से अधिक ऊँची या अधिक नीची रखने के लिये एक निश्चित् बिन्दु (Point) पर निश्चित कर देती है। दर का इस प्रकार अधिक ऊँचा या नीचा करना ही विनिमय उद्बन्धन कहलाता है। यह उद्बन्धन तभी सफलता हो सकता है, जब विदेशी बिलों का क्रय-विक्रय सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक अपने हाथ में लेले। इस प्रकार के उद्बन्धन के अनेक उदाहरण हैं। अब तक इंगलैंड, भारत आदि सभी देश इस को अपना चुके हैं। भारत ने अपने रुपये का उद्बन्धन इंगलैंड के साथ सन् १९२८ ई० में किया था जब १ रुपया = १ शि० ६ पैंस रखा गया था।

(५ विनिमय समकरण निधि (Exchange Equalisation Fund)—विनिमय दर के उतार-चढ़ावों को रोकने के लिये केन्द्रीय बैंक विदेशी मुद्रा की एक निधि अपने पास रखते हैं। इसकी सहायता से जब विदेशी मुद्रा की माँग बढ़ जाने से विनिमय

दर प्रतिकूल जाने लगती है, केन्द्रीय बैंक विदेशी बिल बेचना शुरु कर देते हैं, और जब बाजार में विदेशी बिलों का बाहुल्य होता है, केन्द्रीय बैंक इन बिलों को खरीदना शुरु कर देते हैं। इस प्रकार के क्रय विक्रय से विनिमय दर सामान्य दर से न अधिक गिरती है और न अधिक चढ़ती है। इस प्रकार की निधि की सर्व प्रथम स्थापना इंग्लैंड में की गई थी, जहां सन १९३२ में १५ करोड़ पौंड के कोष पत्रों (Treasury Bills) में से एक निधि स्थापित की गई थी। बाद में धीरे धीरे यह निधि और भी बढ़ा दी गई।

(६) रुके हुये खाते (Blocked Accounts)—विशेष कर किसी आर्थिक संकट, जैसे युद्ध आदि के दिनों में कभी कभी एक देश की सरकार दूसरे देश की सरकार को या वहाँ के व्यापारियों को अपने यहाँ से उस धन को बाहर हस्तान्तरित करने से रोक देती है जो, उस देश की स्वयं की मुद्रा में हो। यह धन राशि कहलाती है. प्रथम तो, विदेशियों को इस धनराशि को व्यय करने की अनुमति ही नहीं दी जाती और यदि दी भी जाती है, तो बहुत सामत मात्रा में और वह भी उस देश की इच्छानुसार। यह सन १९३१ ई० में जर्मनी में किया गया था।

(७) सभाशोधन समझौते (Clearing agreements)—अपने देश के व्यापारियों की दृष्टि से निर्यात करने वाले देश विनिमय नियंत्रण करने वाले देश पर ऐसे समझौते करने का दबाव डालते हैं, जिनके द्वारा विनिमय नियंत्रण करने वाले देश को एक गारंटी देनी होती है कि वह माल का भुगतान माल की सुपुर्दगी के बाद शीघ्र कर देगा। इस प्रकार के समझौते दूसरे महायुद्ध के पहिले योरोप के देशों के बीच बहुत हुये थे।

Printed at the Adhyatmik Press, Gillis Bazar, Kanpur.

अभ्यास-प्रश्न

१ विदेशी विनियम का क्या अर्थ है ? विदेशी विनियम के विभिन्न साधन कौन कौन से हैं ? लिखिये।

२ विदेशी विनियम बिल की कार्य-प्रणाली लिखिये।

३ विनियम की दर से क्या आशय है ? विनिमय की दर निम्न अवस्थाओं में किस प्रकार निश्चित होगी :—

(१) जब दोनों में स्वर्ण मान हो;
(२) जब दोनों में कागजी मुद्रा मान हो।

४ विनिमय की टकसाली समता किसे कहते हैं ? दो देशों के बीच टकसाली समता किस प्रकार निकाली जायगी ? उदाहरण सहित समझाइये।

५ स्वर्ण बिन्द क्या हैं और किस प्रकार निश्चित किये जाते हैं ? इनकी उपयोगिता लिखिये।

६ क्रय शक्ति समता सिद्धान्त पर एक संक्षिप्त लेख लिखिये।

७ विनिमय में उतार चढाव होने के क्या कारण हैं ? संक्षेप में लिखिये।

८ विनिमय दर में जो परिवर्त्तन होते हैं, उनका समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

९ विनिमय नियन्त्रण से क्या समझते हो ? वह क्यों और कैसे लगाया जाता है ?

१० निम्न लिखित के अन्तर समझाइये :—

(१) टकसाली समता और क्रयशक्ति समता।

(२) व्यापार संतुलन सिद्धान्त और हिसाब संतुलन सिद्धान्त।

११ निम्न लिखित को समझाइये :—

(१) आगामी विनिमय बाजार, (२) विनिमय की आदमी दर, (३) विनिमय दर का उद्वन्वन, (४) विनिमय सम करण निधि, (५) रुके हुये खाते, (६) मूल्यान्तर लाभार्थ क्रय-विक्रय।

अध्याय १४

भारतीय मुद्रा का इतिहास

(१९४५ से पूर्व)

सन् १८३५ से पूर्व भारत में अनेक प्रकार की मुद्रायें चलन में आती थी। उन में न तो आकार-प्रकार की ही समानता थी और न तौल, शुद्धता, और भापा की ही। उन में एक रुपया का पूर्ण अभाव था। किन्तु सन् १८३५ में एक मुद्रा विधान पास किया गया जिसके अनुसार समस्त ब्रिटिश भारत में ११/१२ भाग शुद्ध चाँदी वाला रुपया चलन में आया। इस रुपये की असीमिति विधिग्राह्यता और स्वतंत्र मुद्रा ढलाई होने के कारण इस रुपये को भारत की प्रधान मुद्रा माना जाता था और इसी लिये १८३५ से १८९३ तक के कालको रौप्यमान काल कह कर पुकारा पुकारा जाता है। वैसे सन् १८५३ तक सरकारी खजानों में स्वर्ण की मुद्रायें भी १ स्वर्ण मोहर = १५ चाँदी के सिक्कों के हिसाब से ली और दी जाती थी। किन्तु केलिफोर्निया और आस्ट्रेलिया में स्वर्ण की नई खाने खुल जाने के कारण स्वर्ण का मूल्य चाँदी के रूप में बहुत गिर गया और लोगों ने सरकारी भुगतान सोने की मोहरों में ही करना शुरू कर दिया। अन्त में १८५३ में सरकार को स्वर्ण में भुगतान लेना बन्द कर देना पड़ा जिससे मुद्रा सम्बन्धी कठिनाइयाँ बढ़ती ही चली गई। सोने की मुद्रायें चलन में नहीं रहीं, किन्तु जनता चाहती थी स्वर्ण

ही। जनता के आन्दोलन के कारण श्री मैन्सफील्ड की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया गया। किन्तु इनकी सिफारिश कार्यरूप में न आ सकी।

उधर अचानक चाँदी का उत्पादन अत्याधिक बढ़ जाने से चाँदी का मूल्य बहुत गिर गया और संसार के कई देशों ने रौप्यमान का परित्याग कर दिया। इससे कई नई समस्यायें उत्पन्न हो गईं। इन समस्याओं पर विचार करने और उनका कुछ हल ढूंढ निकालने के लिये सन् १८६७, १८७८, १८८१ और १८६२ में चार अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा सम्मेलन बुलाये गये, किन्तु कोई परिणाम न निकला। कुछ देशों ने अपने अपने यहाँ मुद्रा-स्थिति की जाँच करने के लिये कमीशन नियुक्त किये। भारत में भी लार्ड हर्शैल (Lord Herschell) की अध्यक्षता में एक हर्शैल समिति नियुक्त की गई।

हर्शैल समिति (१८९३-९९)—

इस समिति की नियुक्ति इस बात की जाँच करने के लिये हुई थी कि भारत सरकार के सुझावों के अनुसार स्वर्णमान को लाने के लिये टकसालों द्वारा चाँदी की मुद्रा ढलाई बन्द करना उपयुक्त होगा या नहीं। चाँदी की मुद्रा ढलाई बन्द करने का उद्देश्य चाँदी के रुपयों की पूर्ति पर नियन्त्रण कर रुपये का विनिमय मूल्य गिरने से रोकना था। इस समिति के सुझाव निम्न लिखित थे :—

(१) टकसाले चाँदी और सोने दोनों की स्वतंत्र मुद्रा ढलाई के लिये बन्द कर देनी चाहिये, किन्तु यदि जनता

सरकारी खजानों में १ शि० ६ पैंस प्रति रुपये के हिसाब से सोना जमा करा कर सिक्के लेना चाहे तो सरकार को रुपये ढालने की छूट होनी चाहिये ।

(२) चाँदी का रुपया पूर्णतः विधि ग्राह्य रहना चाहिये ।

इन सुझावों के आधार पर सन् १८६३ के मुद्रा विधान द्वारा ठकसालें स्वतंत्र मुद्रा ढलाई के लिये वन्द कर दी गई, परन्तु सरकार ने स्वयं रुपया ढालने का अधिकार बनाये रखा। तीन विज्ञप्तियाँ भी जारी की गई जिनके द्वारा : (क) टकसालों में प्रति रुपया ७·५३३४४ ग्रेन शुद्धा स्वर्ण अथवा १६ पैंस, के हिसाब से सोना लिया जाने लगा, (ख) सार्वजनिक भुगतान में सावरेन और अर्ध सावरेन १६ पैंस प्रति रुपये के हिसाब से लिये जाने लगे, (ग) सोने के सिक्के अथवा सोने के बदले कागज़ी मुद्रा प्रकाशित की जाने लगी। इस विधान और विज्ञप्तियों का उद्देश्य रुपये के स्वर्ण के रुपये मूल्य को वाकी, ४ पैंस तक बढ़ाना और भारत में स्वर्णमान को लाना था।

सन् १८६३ से १८६६ के बीच का काल परिवर्तन काल (Period of Transition) था। प्रारम्भ में तो रुपये का मूल्य इतना गिरा कि यह सन् १८६४ में १ शि० १ पैं० तक जा पहुँचा, किन्तु बाद में सन् १८६६ में यह १ शि० ३.६ पैंस पर आ गया। भारत सरकार ने इस परिवर्तन काल को समाप्त करने व भारत में शीघ्र स्वर्णमान तथा स्थायी विनिमय दर स्थापित करने के लिए रचनात्मक सुझाव दिये। इन सुझावों पर विचार करने के लिये एक समिति नियुक्त की गई, जो फाउलर समिति के नाम से प्रसिद्ध है।

फाउलर समिति (Fowler Committee) — १८९९

यह समिति सन् १८९९ में सर हेनरी फाउलर (Sir Henry Fowler) की अध्यक्षता में नियुक्त की गई। इसका मुख्य उद्देश्य भारत सरकार के सुझावों पर विचार करना तथा भारतीय मुद्रा पद्धति को ठोस व संतोषप्रद बनाने के सुझावों को देना था। इसके सामने उस समय तीन विकल्प (Alternatives) थे। प्रथम रौप्यमान को पुनः स्थापित कर चांदी की स्वतन्त्र मुद्रा ढलाई जारी करना। द्वितीय, मौजूदा व्यवस्था को चलाये रखना। तृतीय, स्वर्णमान को (स्वर्णमुद्रा के साथ अथवा उसके बिना) लाना।

प्रथम को तो इसने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में तथा इंगलैंड के साथ भुगतान की कठिनाइयां उपस्थित हो जाने के भय से ठुकरा दिया। दूसरे को इसलिए ठीक नहीं समझा कि इससे अनावश्यक अनिश्चितता बढ़ जाती और भारत में अन्त में स्वर्णमान की सफलता के बारे में सन्देह उत्पन्न हो जाता। इसलिये फाउलर समिति ने श्री लिंडसे और लेसले आदि के भिन्न-भिन्न प्रस्तावों को ठुकराते हुये स्वर्णमान की स्थापना के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये :—

(१) भारत में ब्रिटिश सावरेन विधि ग्राह्य सिक्के के रूप में चालू कर दिया जाय और भारतीय टकसालें स्वर्ण की स्वतन्त्र मुद्रा ढलाई के लिए खोल दी जाय।

(२) रुपये की विनिमय दर १ शि० ४ पें० प्रति रुपये पर स्थिर कर दी जाय।

(३) रुपये को असीमित विधि ग्राह्य बनाये रखा जाना चाहिये।

(४) सरकार को स्वर्ण के बदले में रुपये देते रहना चाहिये, किन्तु नये रुपये तब तक नहीं ढाले जाने चाहिये, जब तक सोने के सिक्के जनता की मांग से अधिक नहीं हो जायें।

(५) रुपयों की ढलाई के लाभ से एक विशेष स्वर्णमान निधि (Gold Standard Reserve) स्थापित की जानी चाहिये।

(६) रुपयों के बदले में स्वर्ण देने का सरकार पर कोई वैधानिक प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए, क्योंकि इसके कारण सरकार को स्वर्ण रखना अनिवार्य हो जायगा।

(७) जब विनिमय दर स्वर्ण बिन्दु से नीचे गिरने की सम्भावना हो सरकार को निर्यात के लिए सोना देने को तत्पर रहना चाहिये।

एक प्रकार से फाउलर समिति ने स्वर्णमान स्थापित करने की ही सिफारिश की, किन्तु इस स्वर्णमान की दो मुख्य विशेषतायें थीं। प्रथम तो, स्वर्णमुद्रा की विधि ग्राह्यता के साथ उसकी स्वतन्त्र मुद्रा ढलाई हो, किन्तु सरकार पर रुपयों के बदले स्वर्ण देने का कोई वैधानिक प्रतिबन्ध न हो। दूसरे, जैसे स्वर्णमान में रुपयों को प्रतीक मुद्रा होना चाहिये था वह न रखकर, इसको असीमिति विधि ग्राह्य बनाये रखा।

भारत सरकार ने सन् १८९९ में फाउलर समिति की सिफारिशों को मान लिया और एक मुद्रा विधान पास किया, जिसने सारे भारतवर्ष में सावरेन तथा अर्ध सावरेन को विधि ग्राह्य बना दिया। सरकार ने १५ रुपये प्रति पौंड अथवा १ शि०

४ पेंस प्रति रुपये की विनिमय दर निश्चित कर दी और इस बात का पूरा प्रयास भी किया कि जनता सावरेन का खूब उपयोग करे। इसके लिए डाकघर, रेल घर तथा अन्य सरकारी दफ्तरों को सावरेन में ही भुगतान करने की आज्ञायें दे दी गईं। किन्तु इसमें बड़ी असफलता मिली। स्वर्णमुद्रायें सरकारी खजानों में वापिस आने लग गईं। कई जगह तो सावरेन पर ४ आना बट्टा भी लगने लग गया। भारत में स्वर्ण मुद्रा ढालने के लिए टकसाल खोलने का विचार भी त्यागना पड़ा, क्योंकि ब्रिटिश टकसाल ने इसका विरोध किया। दूसरे, समिति के सुझावों के विपरीत सरकार को शीघ्र ही रुपये का मुद्रण भी प्रारम्भ करना पड़ा, क्योंकि सन् १८९३ से अब तक रुपये न ढाले जाने के कारण रुपयों की बड़ी कमी आ गई थी। तीसरे समिति के सुझावों के अनुसार रुपये की ढलाई से जो स्वर्ण निधि स्थापित की गई थी उसके उपयोग में भी परिवर्तन कर दिया गया। धीरे-धीरे सरकारी नीति ने एक ऐसा रूप ग्रहण कर लिया जिसको न तो फाउलर समिति ही सोच सकी थी और न हर्शेल समिति ही।

भारत का स्वर्ण विनिमय मान

भारत में स्वर्ण विनिमय मान स्थापित करने का कभी कोई प्रयत्न नहीं किया गया। यह तो अनायास ही आ टपका। भारत सरकार द्वारा भारतीय विनिमय दर को १ शि० ४ पेंस प्रति रुपया रखने के प्रयत्न में अनेकों प्रयोग करने पड़े और अन्त में भारतीय मुद्रा पद्धति ने एक नया ही रूप ग्रहण कर लिया, जिसको हम स्वर्ण विनिमय मान कहकर पुकारते हैं। इसका कोई वैधानिक आधार नहीं था, क्योंकि यह तो कई

सरकारी कार्यवाहियों का परिणाम था। इस विनिमय मान की निम्नलिखित विशेषतायें थीं :—

(१) भारत में आन्तरिक कार्यों के लिए असीमित विधि ग्राह्य चांदी के रुपये, अठन्नियां और कागजी मुद्रा काम में लाये जाते थे।

(२) आन्तरिक कार्यों के लिए ये मुद्रायें स्वर्ण में परिवर्तनीय नहीं थी, किन्तु भारत सरकार विदेशी भुगतान के लिए इन मुद्राओं के बदले एक निश्चित दर से ब्रिटिश पौंड जो स्वर्ण पर आधारित थे देने की पूरी व्यवस्था रखती थी।

(३) भारत सरकार विदेशी भुगतान के लिए इंगलैंड में एक स्वर्णमान निधि (Gold Standard Reserve) रखती थी।

स्वर्ण विनिमय मान की योजना को लोग लिण्डसे योजना कह कर पुकारते हैं; क्योंकि फाउलर समिति के सामने सबसे पहिले श्री लिण्डसे (A. M. Lindsay) ने ही, जो कि उस समय बंगाल बैंक के उप सचिव थे, इससे बिल्कुल मिलती जुलती पद्धति का प्रस्ताव रखा था।

स्वर्ण विनिमय मान की कार्य-विधि—

इस स्वर्ण विनिमय मान की सफलता के लिये सरकार ने रुपये की विनिमय दर १ शि० ४ पैंस निश्चित कर रखी थी और इस दर को स्थायी बनाये रखने के लिये कौंसिल बिल (Council Bills) तथा विपरीत कौंसिल बिल (Reverse Council Bills) का क्रय-विक्रय करती थी। अब हम इन कौंसिल व विपरीत कौंसिल बिलों के विषय को विस्तार से समझने का प्रयत्न करेंगे।

कौंसिल बिल (Council Bills)—कौंसिल बिल वे रुपये के ड्राफ्ट थे जिनके द्वारा भारत मन्त्री भारत सरकार को इनमें लिखित रुपये चुकाने का आदेश देते थे। जब ये ड्राफ्ट डाक द्वारा भेजे जाते थे, तब कौंसिल बिल और जब तार द्वारा भेजे जाते थे तब टेलीग्राफिक ट्रांसफर (Telegraphic Transfers) कहलाते थे। ये आदेश ब्रिटिश बैंकों और आयातकर्त्ताओं को स्टर्लिङ्ग के बदले बेचे जाते थे। जब व्यापार संतुलन भारत के अनुकूल होता और लन्दन में रुपये के बिलों की मांग बढ़ जाने से विनिमय दर के १ शि० ४ पैंस से बढ़ जाने का भय रहता, तो भारत मन्त्री कौंसिल बिल १ शि० 4⅛ पैंस प्रति रुपये की दर से बेचना प्रारम्भ कर देते थे। ब्रिटिश ऋणी इन कौंसिल बिलों को खरीद कर भारतीय लेनदारों को भेज दिया करते थे, जिनका भुगतान भारत सरकार यहाँ पर कर देती थी। इससे न तो विनिमय दर १ शि. ४ पैंस से बढ़ पाती थी और न इंगलैंड से वहाँ के व्यापारियों को सोना ही बाहर भेजना पड़ता था।

विपरीत कौंसिल बिल (Reverse Council Bills)—ये बिल वे स्टर्लिंग के ड्राफ्ट थे जिनके द्वारा भारत सरकार भारत मन्त्री को इनमें लिखित पौंड चुकाने का आदेश देती थी। इसलिये इनको कभी कभी स्टर्लिंग बिल या स्टर्लिंग ड्राफ्ट के नाम से भी पुकारा जाता है। विपरीत कौंसिल बिल बेचने का यह नतीजा होता था कि भारत सरकार यहाँ आयातकर्त्ताओं से रुपये प्राप्त कर लेती थी और भारतमन्त्री वहां स्टर्लिंग निधि में से ब्रिटिश निर्यातकर्त्ताओं को स्टर्लिंग में भुगतान कर देता था। जब व्यापार संतुलन भारत के प्रतिकूल होता और भारत में स्टर्लिंग के बिलों की मांग बढ़ जाने से विनिमय दर के १ शि-

४ पैंस से गिर जाने का भय रहता तो भारत सरकार विपरीत कौंसिल बिल १ शि. $3\frac{29}{32}$ पैंस प्रति रुपये की दर से बेचना प्रारम्भ कर देती थी। भारतीय ऋणी इन बिलों को खरीदकर इंगलैंड भेज देते थे और वहां इनका भुगतान भारत मन्त्री कर देता था। इससे न तो विनिमय दर १ शि. ४ पैंस से गिर ही पाती थी और न यहां के व्यापारियों को यहां से सोना भेजने की आवश्यकता ही पड़ती थी।

यहाँ यह स्मरण रहे कि विपरीत कौंसिल बिलों की मांग बहुत कम होती थी क्योंकि अधिकतर भारत का व्यापार संतुलन प्रतिकूल न रह कर अनकूल ही रहता था।

इन कौंसिल बिलों व विपरीत कौंसिल बिलों के विवरण से यह स्पष्ट है कि विनिमय दर में दो बिन्दुओं—१ शि. $3\frac{29}{32}$ पैंस और १ शि. $4\frac{1}{8}$ पैंस के बीच ही उतार चढ़ाव हो सकते थे। इनके बाहर नहीं।

भारत में इस स्वर्ण विनिमय मान की कटु आलोचना की गई। इसके निम्न लिखित कारण थे।

(१) इससे भारत की बहुत बड़ी राशि जिसकी यहां बड़ी आवश्यकता थी यहां से बाहर भेज दी गई।

(२) इस राशि का भारत मन्त्री द्वारा मनमाना उपयोग किया गया, जिसमें १० लाख पौंड रेलवे को पूंजी में लगाना मुख्य था।

(३) इससे भारत को काफी आर्थिक क्षति भी हुई।

चैम्बरलैन कमीशन (Chamberlain Commission)

यह कमीशन सन् १९१३ ई० में श्री चैम्बरलेन की अध्यक्षता में नियुक्त किया गया था। इसका मुख्य उद्देश्य विनिमय दर को स्थायी

बनाने की विधियों की जाँच करना, स्वर्णमान निधि का स्थान निश्चित करना तथा यह बात मालूम करना था कि वर्तमान पद्धति भारत के हित में है या नहीं। आश्चर्य तो यह है कि इस भारतीय समस्याओं की जाँच करने वाले कमीशन ने कभी भारत के दर्शन भी नहीं किये। उन्हों ने भारतीय कुछ गवाहों (witnesses) के बयान लेकर कार्य समाप्त कर दिया। इस कमीशन ने निम्न लिखित सुझाव पेश किए:—

(१) भारत के लिये स्वर्ण विनिमय मान ही सब से अच्छा मान है।

(२) स्वर्णमान निधि की कोई मात्रा निश्चित नहीं की जानी चाहिये, किन्तु इसका अधिकांश भाग स्वर्ण में रक्खा जाना चाहिये।

(३) स्वर्ण मान निधि की भारतीय शाखा तो देनी चाहिये। इसके लिए सबसे उपयुक्त स्थान लंदन ही है।

(४) भारत में स्वर्ण मुद्रा का उपयोग बढ़ाना भारत के लिए हितकर नहीं है। भारतीयों को न तो स्वर्ण मुद्रा की आवश्यकता ही है और न वे इसे चाहते ही हैं।

५) भारत में स्वर्ण मुद्रा ढलाई के लिए किसी टकसाल की आवश्यकता नहीं है। यदि जनता चाहे और सरकार इसका खर्चा उठाने को तैयार हो, तो सावरेन और अर्धसावरेन के लिए एक नई टकसाल खोली जा सकती है।

(६) भारत में कागजी मुद्रा के उपयोग को प्रोत्साहन देना चाहिए और ५०० रुपये के नोटों को लोकप्रिय बनाना चाहिए।

(७) भारत सरकार द्वारा भारत में स्टर्लिंग बिल १ शि० ३$\frac{3}{3}\frac{1}{2}$ पेंस प्रति रुपये के हिसाब से बेचना अनिवार्य कर देना चाहिए।

इस कमीशन की रिपोर्ट फर्वरी १६१४ में छपी और जुलाई १६१४ में प्रथम महायुद्ध छिड़ गया। इसलिए इन सुझाओं पर कोई कार्यवाही न की जासकी।

प्रथम महायुद्ध और स्वर्णमान का भंग होना (१६१४-१६)

प्रथम महायुद्ध जुलाई सन् १६१४ में प्रारम्भ हुआ। इसका शीघ्र परिणाम यह हुआ कि जनता का सरकार के प्रति अविश्वास उत्पन्न हो गया। लोग डाकखाने के सेविंग बैंकों में से रुपया निकलवाने और कागज़ी मुद्रा को स्वर्ण में बदलवाने को टूट पड़े। विनिमय दर सरकारी नियन्त्रण शिथिल पड़ गया। किन्तु सरकार द्वारा शीघ्र ही कागज़ी मुद्रा को बदलवाने और डाकखाने के सेविंग बैंकों से रुपया निकलवाने की पर्याप्त सुविधायें प्रदान किये जाने से सरकार में फिर से विश्वास पैदा हो गया। विनिमय दर को सम्भालने के लिए सरकार ने लगभग ८७ लाख पौंड स्टर्लिंग बिलें भी वेचीं। किन्तु कागज़ी नोटों के बदले स्वर्ण की अत्यधिक मांग बढ़ जाने से ५ अगस्त १६१४ को सरकार ने विदेशी भुगतान के अलावा अन्य किसी कार्य के लिए सोना देना बन्द कर दिया।

किन्तु सन् १६१६ में फिर से परिस्थिति इतनी खराब हो गई कि इसने अन्त में स्वर्ण विनिमय मान का अन्त कर के ही छोड़ा। इस पद्धति के सुचारू रूप से चलने के लिए यह आवश्यक था कि विनिमय दर की स्थिरता बनाई रखी जाय। रुपयों की ऐसे समय पर अत्यधिक माँग बढ़ जाने के कारण जब कि

चाँदी के भाव अत्यधिक चढ़े हुये थे सरकार ऐसा करने में असमर्थ रही। रुपयों के लिए इतनी माँग बढ़ जाने के निम्न लिखित कारण थे :—

(१) भारतीय व्यापार संतुलन अनुकूल जारहा था। इसके कारण इस प्रकार थे :—(क) यातायात की कठिनाइयों तथा युद्ध की अन्य परिस्थितियों के कारण यातायात बहुत गिर गये; (ख) युद्ध के कारण भारतीय माल की माँग बहुत बढ़ जाने से निर्यात खूब हो रहा था।

(२) युद्ध के पूर्वी क्षेत्रों में फौजें लगी होने तथा उनको रसद पहुँचाने का भार भारत पर होने से मुद्रा की माँग और भी अधिक बढ़ गई थी।

(३) उपनिवेशों आदि के लिए सरकार को जो माल खरीदना पड़ता था उसका रुपया चुकाना पड़ता था।

(४) युद्ध के कारण भारत में चांदी का आयात नहीं हो सका।

रुपयों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए भारत सरकार को बड़े ऊँचे भावों पर चांदी खरीदनी पड़ी। मैक्सिको में आन्तरिक झगड़ों के कारण चांदी का उत्पादन गिर जाने तथा कई देशों को स्वर्ण न मिलने के कारण चांदी का उपयोग करने से चांदी के भाव, जो सन् १९१५ में २७ पेंस प्रति औंस थे, वे बढ़कर सन् १९१६ में ४३ पेंस प्रति औंस हो गये। यह ४३ पेंस प्रति औंस ऐसी दर थी, जिस पर रुपये का आन्तरिक मूल्य और वाह्य मूल्य बराबर हो जाते थे। चांदी का भाव इससे ऊँचा जाने पर विनिमय दर का बढ़ाना अत्यन्त आवश्यक था, क्योंकि इसके नहीं बढ़ाने पर लोग

रुपयों को गला २ कर बाहर भेज देते। दूसरी ओर सरकार कौंसिल बिल १ शि० ४ पेंस प्रति रुपये के हिसाब से नहीं बेंच सकी। ४३ पेंस प्रति औंस से जैसे जैसे चांदी का भाव बढ़ता गया वैसे वैसे ही सरकार को विनिमय दर बढ़ाते रहना पड़ा। दिसम्बर १६१६ में जब चांदी का भाव ७८ पेंस प्रति औंस हो गया, विनिमय दर भी १ शि० ४ पेंस से बढ़कर २ शि० ४ पेंस हो गई। विनिमय दर के बढ़ाने के अतिरिक्त सरकार ने स्थिति पर काबू पाने के लिए निम्नलिखित उपाय और किये :—

(१) भारत मन्त्री ने २० दिसम्बर १६१६ से कौंसिल बिलों की बिक्री २० लाख और १ करोड़ २० लाख रुपये के बीच निर्धारित कर दी।

(२) ३ सितम्बर १६१७ से चांदी का निजी आयात बन्द कर दिया गया और सरकार ने स्वयं अमरीका से मुद्रण के लिए बहुत बड़ी मात्रा में चांदी खरीदी।

(३) चांदी या सोने की मुद्रा का गलाना अवैधानिक घोषित कर दिया गया और चांदी या चांदी के सिक्के का निर्यात बन्द कर दिया गया।

(४) चांदी का उपयोग कम करने के लिए सरकार ने १ रुपये व ढाई रुपये के नोट चलाये। गिलट (Nickel) की अठन्नियां, चवन्नियां व दुअन्नियां प्रयोग में लाई गई।

(५) जून १६१७ में अधिनियम (Ordinance) पास किया गया जिसके द्वारा सारा सोना जो भारत में आयात किया जाता था उसका सरकार को बेंचना आवश्यक हो गया।

(६) स्वर्ण मोहरें और सावरेन १५ रुपये के कीमत की

टाली गई और मुद्रा की बढ़ती हुई मांग को कम कराने के लिए चलन में लाई गई।

(७) इन नोटों की संख्या जिनके लिये कोई धात्विक निधि नहीं रखनी पड़ती, सन १६११ में १४ करोड़ से बढ़ाकर सन् १६१६ में १२० करोड़ रुपया कर दी गई, और इन नोटों को बदलने पर प्रतिबन्ध लगा दिये। इससे नोट कुछ घट्टे पर भी चलने लगे।

(८) सरकार ने कई प्रकार के करों द्वारा अपनी आय को बढ़ाना और कई प्रयत्नों से व्यय को कम करने का भी प्रयास किया।

बेबिंगटन स्मिथ समिति (Babington Smith Comittee) :—

युद्ध समाप्त होने के बाद मई १६१६ में श्री बेबिंगटन स्मिथ की अध्यक्षता में एक समिति भारतीय मुद्रा पद्धति की जांच और अपने सुझाव देने के लिए नियुक्त की गई। इस समिति के सुझाव निम्नलिखित है :—

(१) समिति ने व्यापार और उत्पादन के लिए विनिमय दर की स्थिरता का महत्व बतलाया और भारत की विनिमय दर २ शि० सोने के बराबर अथवा एक सावरेन=१० रुपये के बराबर निश्चित करने का सुझाव दिया। यह समिति स्टर्लिंग के अवमूल्यन करने के बजाय रुपये का सम्बन्ध स्वर्ण से जोड़ने के पक्ष में थी।

(२) भारत मन्त्री को कौंसिल बिल और भारत सरकार को विपरीत कौंसिल बिल बेचने चाहिए।

(३) स्वर्ण का आयात व निर्यात सरकारी नियन्त्रण से दूर रहना चाहिए।

(४) चांदी के आयात पर से नियन्त्रण कर इत्यादि हटा देना चाहिए किन्तु निर्यात पर प्रतिबन्ध लगायें रखना चाहिये।

(५) आन्तरिक कार्यों के लिए स्वर्ण का प्रयोग इसने भारत के लिए हितकर नहीं समझा। इसलिए इसने अधिक से अधिक सोना निधि में ही रखने का सुझाव दिया जिसको विदेशी भुगतान में काम में लाया जाय।

(६) सरकार द्वारा सावरेन के बदले में रुपया देने का उत्तरदायित्व हटा देना चाहिए।

(७) मुद्रा ढलाई से होने वाले लाभ को स्वर्णमान निधि में जमा करते चला जाना चाहिए। यद्यपि इस निधि की कोई सीमा निश्चित नहीं की जा सकती थी, किन्तु इसका अधिकांश भाग स्वर्ण में और उस स्वर्ण का भी आधा भाग भारत में रखने का सुझाव दिया। शेष भाग लन्दन में ही रखने के लिए कहा।

(८) कागजी मुद्रा निधि में कागजी मुद्रा का कम से कम ४०% भाग धातु के रूप में रखने के लिए कहा। कुछ समय के लिए कागजी मुद्रा के अरक्षित भाग की सीमा १२० करोड़ रुपया रखने के लिए कहा। साथ ही भारत सरकार की प्रतिभूतियों में विनियोग की जाने वाली राशि २० करोड़ रुपया निश्चित कर दी गई।

(९) कागजी मुद्रा निधि का चांदी व सोना भारत में ही रखने का सुझाव दिया।

अब हमें यह देखना चाहिए कि इस समिति ने रुपए की

विनिमय दर इतनी ऊँची (२ शि०) क्यों रखी। इसके निम्न कारण थे :—

(१) २ शि० की विनिमय दर रखने से रुपया एक प्रतीक मुद्रा बन रहेगा, जिससे स्वर्ण-विनिमय-मान पहिले की भांति कार्यरूप में जारी रहेगा।

(२) ऊँची दर रखने से वस्तुयें सस्ती पड़ेंगी और महगाई कम हो जायगी, जिससे आर्थिक व सामाजिक संकट दूर हो जायगा।

(३) इससे निर्यात पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि भारतीय कच्चे माल व खाद्य पदार्थों की काफी मांग थी।

(४) उद्योगपतियों को भी लाभ होगा, क्योंकि उनको बाहर से सस्ती मशीन व कल पुर्जे मिल जायेंगे और वस्तुओं के मूल्य कम होने से मजदूरी नहीं बढ़ानी पड़ेगी।

(५) इससे घरेलू व्यय (Home Charges) में भी बचत हो जायगी, क्योंकि पहिले से कम रुपया देना पड़ेगा।

किंतु समिति के एक मात्र भारतीय सदस्य, श्री दलाल ने इस ऊँची दर का घोर विरोध किया है। वे विनिमय की पुरानी दर १ शि० ४ पेंस प्रति रुपया ही रखने के पक्ष थे। उन्होंने चाँदी के ऊँचे भावों को जो २ शि० की विनिमय दर होने के मुख्य कारण थे, बनावटी बतलाया। उनका यह भी मत था कि इससे भारतीय निर्यात कर्ताओं तथा उद्योग पतियों को भी हानि होगी। चाँदी की कमी दूर करने के लिये उन्होंने कम चाँदी वाले दो रुपये के सिक्के चलाने का भी सुझाव दिया। किन्तु सरकार ने समिति के बहुमत के मुख्य मुख्य सुझाव स्वीकार कर लिये।

स्वर्ण विनिमय मान का अन्त (१६२०—१६२५)

फर्वरी १६२० में सरकार ने वेबिंटन स्मिथ कमेटी समिति के सुझावों के अनुसार २ शि० प्रति रुपये की विनिमय दर अपना ली। किन्तु दुर्भाग्यवश यह विनिमय दर अधिक दिनों तक न टिक सकी। चाँदी का भाव घटना शुरू हो गया, भारत का व्यापार संतुलन प्रतिकूल चला गया, विदेशी व्यापारी जिन्होंने युद्ध के समय काफी लाभ कमाया था, अपनी रकम इंगलैंड भेजने लग गये। इन सब कारणों से स्टर्लिंग बिलों की भारत में माँग अत्याधिक बढ़ गई। रुपये का मूल्य गिरने लगा, विनिमय दर २ शिलिंग १० पेन्स के लगभग चली गई। भारत सरकार ने विनिमय दर को २ शि० पर बनाये रखने के प्रयत्न में ५५२ लाख पौंड की विपरीत कौंशिल बिलें बेची। इन बिलों का भुगतान लंदन में स्टर्लिंग सिक्योरिटीज और कोप बेच कर किया गया। ये सिक्योरिटीज १५ पौंड की दर से खरीदी गई। किन्तु ७ से १० रुपये प्रति पौंड के हिसाब से बेची गई, जिस से भारत सरकार को लगभग ३५ करोड़ रुपये का नुक्सान हुआ। २६ सितम्बर १६२० को अन्त में सरकार को विपरीत कौंसिल बिलें बेचना बन्द कर देना पड़ा।

इसका परिणाम यह निकला कि रुपये की विनिमय दर गिरती चली गई और जुलाई १६२१ में १ शिलिंग ३ पेंस स्टर्लिंग (१ शिलिंग सोना) के भी नीचे चली गई। सरकार ने इस समय अलग रहना मुनासिब समझा और विनिमय दर को विश्व परि-स्थितियों के अनुसार अपने आप स्थिर होने को छोड़ दिया। जनवरी १६५३ से विनिमय दर फिर बढ़ने लगी और यह अक्टूबर १६२४ में १ शिलिंग ६ पेंस स्टर्लिंग (१ शिलिंग ४ पेंस सोना) पर आ गई। इस समय सरकार पर विनिमय दर

को स्थाई बनाने के लिये दबाव भी डाला गया, किन्तु सरकार ने ऐसा करने से मना कर दिया। मुद्रा परिमाण को सीमित कर सरकार ने अप्रैल १९२५ तक विनिमय दर को १ शिलिंग ६ पेंस स्वर्ण तक पहुँचा दिया। कुछ ही महीने बाद भारत में सारी मुद्रा परिस्थिति की जाँच करने के लिये एक रॉयल कमीशन नियुक्त कर दिया गया।

हिल्टन यंग कमीशन (Hilton Young Commission)

अगस्त १९२५ में भारतीय मुद्रा पद्धति की जाँच करने और उसमें सुधार करने के लिये आवश्यक सुझाव देने के लिये एक रॉयल कमीशन नियुक्त किया गया, जिसके अध्यक्ष, श्री हिल्टन यंग थे। कमीशन ने मौजूदा पद्धति अर्थात स्वर्ण विनिमय मान की पूरी जाँच की और उसमें निम्न दोष पाये:—

(१) यह पद्धति सरल नहीं थी। इसने अनावश्यक रूप से दो प्रतीक मुद्रायें (रुपये के सिक्के और नोट) और एक पूर्ण काय सिक्के (सावरेन) को जगह दे रक्खी थी। वह प्रतीक मुद्रा जिसमें दूसरी प्रतीक मुद्रा का बदला जाना आवश्यक था बड़ी खर्चीली थी और उसका चाँदी के भाव बढ़ जाने पर गायब हो जाना निश्चित था।

(२) इसमें दो निधि—स्वर्णमान निधि और कागजी मुद्रा निधि रखना आवश्यक था। जिससे साख और मुद्रा पर पूर्ण नियन्त्रण नहीं हो पाता था।

(३) इस पद्धति में स्वयँपूर्ण कार्यशीलता (मुद्रा के अपने आप घटने और बढ़ने की क्षमता) नहीं थी। यह सब मुद्रा संचालक पर निर्भर करता था।

(४) इसमें लोच का अभाव था।

स्वर्ण विनिमय मानों में उपर्युक्त दोष होने के कारण इस कमीशन ने निम्नलिखित सुझाव दिये:—

(१) स्वर्ण विनिमय मान के स्थान पर स्वर्ण धातु मान (Gold Bullion Standard) अपनाया जाय। सावरेन को विधि ग्राह्य न रखकर केवल चाँदी के रुपयों व कागजी नोटों को ही विधिग्राह्य बना दिया जाय। इन रुपयों व नोटों को स्वर्ण में बदलने के लिए एक न्यूनतम राशि (४०० औंस अथवा १०६५ तोले स्वर्ण) निश्चित कर दिया जाय।

(२) देश की मुद्रा पद्धति पर पूर्ण नियन्त्रण रखने के लिए एक केन्द्रीय बैंक (रिजर्व बैंक ऑव इन्डिया) की स्थापना के लिए सुझाव दिया। इसी कमीशन के सुझावों के आधार पर भारतवर्ष में रिजर्व बैंक की सन १९३५ में स्थापना हुई। स्वर्णमान निधि व कागजी मुद्रा निधि रखने, निश्चित मात्रा में सोना बेचने आदि का कार्य भी इसी बैंक को दिया गया।

(४) रुपये की विनिमय दर १ शि० ६ पें० प्रति रुपये पर स्थिर कर दी जाय। इस दर के बारे में सुझाव देने के कई कारण थे—(क) इस दर पर भारतीय मूल्यों का विश्व मूल्यों के साथ समायोजित हो चुका था, (ख) इसी दर पर मजदूरों की मजदूरी भी संतुलित होती थी, (ग) इससे निकट भूतकाल में किए गये असंविदों पर भी कुप्रभाव नहीं पड़ता था। १ शि० ४ पें० की दर को इस्वाभाविक बतलाया, क्योंकि इस दर से मूल्यों के लगभग १२½% बढ़ जाने का भय था। साथ ही घरेलू व्ययों (Home Charges) का भार भी इस दर के कारण बढ़ जाने की सम्भावना थी।

१ शि० ६ पेंस की स्वर्ण में विनिमय दर पर स्वर्ण का भाव २१ रूपते ३ आने १० पाई रखा गया। इसी भाव पर मुद्रा संचालक ने सोना बेचने का उत्तरदायित्व लिया।

(४) इसे ५ साल तक के सरकारी बचत प्रमाण पत्र (Government Savings Certificates) जनता को बेचे जाँय जिनका भुगतान उसकी इच्छानुसार रूपयों में या सोने में किया जाय। इसका मुख्य उद्देश्य जनता के मन में इस नई पद्धति के प्रति विश्वास उत्पन्न करना तथा छिपी हुई संचित पूंजी को बाहर लाना था।

(५) वर्तमान कागजी मुद्रा को रूपयों में परिवर्तनीय बनाये रखा जाय, किन्तु नई कागजी मुद्रा को वैधानिक रूप से परिवर्तनीय न रखते हुये, परिवर्तन की सुविधा जारी रखनी चाहिये।

(६) एक एक रूपये की असीमित विधि ग्राह्य कागजी मुद्रा जारी की जाय किन्तु इसको चाँदी के सिक्कों में परिवर्तनीय न रक्खा जाय।

(७) स्वर्णमान निधि तथा कागजी मुद्रा निधि एक कर दी जाय।

स्वर्णधातुमान ही क्यों? यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि कमीशन ने स्वर्ण विनिमय मान को तो उपयुक्त कठिनाइयों के कारण ठुकरा दिया, किन्तु स्वर्ण मुद्रा मान और स्वर्ण स्टर्लिंग मान को भी क्यों ठुकरा दिया।

स्वर्ण मुद्रा मान में तो यह आशंका थी कि इसके कारण स्वर्ण चाहने वाले देशों की माँग बढ़ जाने से, वस्तुओं के स्वर्ण मूल्य कम हो जायेंगे और साख संकुचन भी हो जायगा। दूसरे, चाँदी की मांग कम हो जाने से उसकी कीमत गिर जायगी जिससे भारत सरकार को अतिरिक्त चांदी बेचने से बड़ी हानि होगी। तीसरे, भारत के देखा देखी चीन भी रौप्यमान

को तोड़ कर स्वर्णमान अपना लेगा, जिससे स्वर्ण के मान और भी ऊँचे चले जायेंगे। चौथे, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका अपने अभी तक के चाँदी में हितों के कारण इस नीति का समर्थन नहीं करेगा, जिसका होना अत्यन्त आवश्यक था। पांचवे, इस पद्धति के अधिक खर्चीली होने के अतिरिक्त, भारतवर्ष में अधिकतर छोटे छोटे भुगतान होते थे, इसलिए स्वर्ण मुद्रा की आवश्यकता ही नहीं थी। छठे, स्वर्ण मुद्रा का किसी देश में होना उसके पिछड़ा हुआ होने की निशानी माना जाना जाता था।

जहां तक स्टर्लिंग विनिमय मान का प्रश्न है, इसको कमीशन ने भारत की दासता का एक प्रतीक मान कर ठुकरा दिया। इस पद्धति में रूपये को स्टर्लिंग के साथ साथ नाचना पड़ता था। क्योंकि स्टर्लिंग के मूल्य में उतार चढ़ाव के साथ साथ रुपए के मूल्य में भी परिवर्तन होना निश्चित था।

इन्हीं कारणों से कमीशन ने स्वर्ण विनिमय के साथ साथ स्वर्ण मुद्रा मान और स्टर्लिंग विनिमय मान को भी ठुकरा दिया तथा भारवर्ष में स्वर्ण धातुमान अपनाने की शिफारिश की। स्वर्ण धातुमान एक साज स्वयं संचालित, निश्चित तथा लचीली पद्धति थी।

किन्तु कुछ लोगों ने स्वर्ण धातुमान तथा १ शि० ६ पेंरे की विनिमय दर की कटु आलोचना की। उनका कहना था कि साधारण व्यक्ति के लिए तो देश की मुद्रा पहिले की भांति अपरिवर्तनीय ही थी। क्योंकि १०६५ तोले स्वर्ण तो बड़ बड़े व्यापारी और बैंकर ही खरीद सकते थे, और ये लोग भी ऐसा बहुत कम करते थे। सोना तो अधिकतर विदेशी भुगतान

के लिए ही खरीदा जाता था। इसलिए लोगों ने स्वर्ण विनिमय मान और स्वर्ण धातुमान में कोई मुख्य अन्तर नहीं पाया। हां, यह अवश्य था कि इस पद्धति के द्वारा विदेशी विनिमय के लिए सोने का क्रय-विक्रय वैधानिक बना दिया गया था। भारतीय विचार धारा तो स्वर्ण मुद्रा वाला स्वर्ण मान लाने के पक्ष में थी। जैसा डा. कैनन आदि के कमीशन के सामने बयानों से प्रकट है।

दूसरा मतभेद विनिमय दर के विषय में था। कमीशन के भारतीय सदस्य, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास विनिमय दर के १ शि० ४ पैंस पर स्थिर करने के पक्ष में थे। उन्होंने कमीशन के अन्य सदस्यों की विनिमय दर के १ शि० ६ पैंस पर स्थिर करने की सब बातों का खंडन किया। उन्होंने प्रमाण पूर्वक बतलाया कि १ शि० ४ पैंस की दर भारतीय कृषि और उद्योग के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगी। उनका कहना था। कि जब संसार के दूसरे देश युद्ध पूर्व की दरों को अपना रहे हैं भारतवर्ष क्यों नहीं अपनाता।
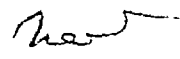
भारत में स्वर्ण धातुमान (१९२७–३१)—

कुछ भी हो. भारत सरकार ने सन् १९२७ में बहुमत की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया और इनको कार्य रूपमें परिणित करने के लिए एक विधान भी पास किया। यह स्वर्ण धातुमान सन् १९३१ तक अनुकूल व्यापर संतुलन के कारण भली भांति चलता रहा, किन्तु बाद में १९२९ की भारी मंदी के कारण उद्योग धन्धे बन्द होने लगे और बेकारी फैल गई।

स्वर्ण धातु मान का अन्त (१९३१)

इंगलैंड में वस्तुओं के स्वर्ण मूल्य बढ़ जाने तथा वहाँ से विदेशियों द्वारा अपनी रकमें निकलवाने से वहाँ का व्यापार

संतुलन विपक्षों में चला गया। इसके कारण वहाँ से स्वर्ण का निर्यात इतना बढ़ गया कि अन्त में, २१ सितम्बर १६३१ को, स्वर्ण मान त्यागना पड़ा। इससे भारत किंकर्तव्य विमूढ़ हो हो गया। उसके सामने अब यह प्रश्न था कि वह अपनी मुद्रा का सम्बन्ध स्वर्ण से ही रखे अथवा स्टर्लिंग से। बड़ी अतापोह के बाद २४ सितम्बर १६३१ को ही भारत ने अपनी मुद्रा का स्वर्ण से सम्बन्ध विच्छेद कर स्टर्लिंग से जोड़ लिया। यहीं से स्टर्लिंग विनिमय मान का प्रारम्भ होता है।

स्वर्ण निर्यात काल (१६३१-३६)—

स्वर्ण विमिमय मान का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि भारत से बहुत बड़ी मात्रा में स्वर्ण का निर्यात होने लगा। सितम्बर १६३१ से जनवरी १६४० तक भारत से ३५१'४ करोड़ सोना बाहर भेजा गया। भारतीय मुद्रा का अब स्वर्ण में परिवर्तनीय न होकर स्टर्लिंग में परिवर्तनीय होने से जैसे २ स्टर्लिंग का मूल्य सोने में गिरा वैसे वैसे रुपये का मूल्य सोने में गिरता चला गया। भारत में सन् १६३१ में सोने का भाव २५) रुपये तोले से बढ़ कर सन् १६४० में ४२) तोला हो गया।

सोने का मूल्य इतना ऊँचा चले जाने से कुछ लोग ने लाभ से प्रेरित होकर और कुछ लोगों ने अपनी आर्थिक परिस्थियों से मजबूर होकर सोना बेच डाला। यहां यह कहना कठिन है कि कितना सोना कैसे बिका। यह तो लोगों द्वारा सोना वेचने का कारण हुआ। किन्तु देखना तो यह है कि इस स्वंर्ण का निर्यात क्यों हुआ। स्वर्ण के निर्यात का कारण स्वर्ण

के भावों का ऊँचा होना नहीं था बल्कि स्वर्ण के स्टर्लिंग मूल्य और रुपये के मूल्य में अन्तर होता था। स्वर्ण का स्टर्लिंग में मूल्य ऊँचा होने से व्यापारियों के लिये स्वर्ण का निर्यात करना लाभदायक सिद्ध हुआ। विनिमय की १ शि० ६ पेंस स्टर्लिंग की स्थायी दर ने सोने के बाहर जाने में सहायता दी। यदि विनिमय दर बढ़ा दी जाती, तो सोना बिल्कुल बाहर नहीं जाता। दूसरे, यहाँ से सोना बाहर जाने का एक कारण उस समय का भारतीय व्यापार संतुलन का विपक्ष में होना भी था। यहां यह स्मरण रहे कि यदि रुपये का गठबन्धन स्टर्लिंग से न कर स्वतन्त्र छोड़ दिया जाता, तब भी स्वर्ण का रुपयों में कर दिया गया होता, तो स्वर्ण का मूल्य नहीं बढ़ता।

सरकार ने स्वर्ण निर्यात को अच्छा समझ इसके निर्यात को रोकने का कोई प्रयत्न नहीं किया। सरकार का विचार था कि स्वर्ण का निर्यात देश के हित में था, क्योंकि इससे लोगों को खूब लाभ मिल रहे थे, उनकी बचत मुद्रा में परिवर्तित होने से देश के उद्योगों को पूंजी मिलना सम्भव हो गया था। लन्दन में एक विशाल स्टर्लिंग निधि इकट्ठी हो गई थी, जिसके कारण विनिमय दर भी १ शि० ६ पेंस पर ही टिकी रही।

परन्तु भारतीय विचार धारा इसके विरोध में थी। प्रथम तो, कई पीढ़ियों से संचित किये गये स्वर्ण का इस प्रकार अपव्यय होना देश के लिये घातक था। जो भी सोना देश में बिक रहा था वह 'संकटकालीन सोना' (Distress Gold) था। दूसरे, इसके निर्यात से देश का व्यापार संतुलन प्रतिकूल जाने से, जो देश की परिस्थिति बिगड़ रही थी, उस पर एक

प्रकार का पर्दा सा पड़ गया था। तीसरे, भारत का जो स्वर्ण मान अपनाने का लक्ष था, वह अब इसके कारण असम्भव हो गया था। चौथे, सरकार की भूल इससे स्पष्ट थी कि दूसरे सब देशों ने जब स्वर्ण निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा रखे थे, भारत ही एक ऐसा देश था, जिससे इस प्रकार स्वर्ण का खुला निर्यात हुआ।

सरकार इस स्वर्ण को स्वयं खरीद सकती थी या रिजर्व बैंक, द्वारा जिसकी सन् १९३५ में स्थापना हो गई थी, खरीदवा सकती थी। इस खरीदे हुये सोने से सरकार को अथवा रिजर्व बैंक को कितना अपरिमित लाभ होता, वर्तमान समय इसका जवाब दे रहा है। जो लाभ विदेशियों के हाथ में जाकर उनको मालामाल कर गया, वही देश में रखा जाकर देश के नौनिहालों को निहाल कर सकता था। आज देश के सामने यह आर्थिक संकट न आता। किन्तु यह तभी सम्भव था, जब देश का शासन देश के हाथ में होता। एक गोरे को काले के दुखदर्द से क्या मतलब ?

द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने तक, यह स्वर्ण का निर्यात चलता रहा। यही नहीं सरकार ने स्वयं भी इस काल में काफी चाँदी बेची। सन् १९२७ से सन् १९३४ तक भारत सरकार ने लगभग ५७ करोड़ रुपये की चांदी बेची, जिससे सरकार को लगभग ३३ करोड़ रुपये का नुकसान हुआ।

द्वितीय महायुद्ध काल (१९३९-४५)

सितम्बर १९३९ में युद्ध छिड़ जाने से देश में नई नई समस्यायें खड़ी हो गई। युद्ध के प्रारम्भ होते ही, जैसा प्रायः

होता है, लोगों का सरकार के प्रति अविश्वास उत्पन्न हो गया। लोग डाकखाने के सेविंग बैंकों तथा अन्य बैंकों से अपनी अपनी जमायें निकलवाने, नोटों को रुपयों में बदलवाने, वस्तुओं का संग्रह करने इत्यादि के लिये टूट पड़े। किन्तु इस दफा सरकार के पहिले से सचेत और सतर्क होने के कारण स्थिति पर शीघ्र काबू पा लिया गया। अब हम इन समस्याओं का विस्तार से विवेचन करेंगे।

१. मुद्रा सम्बन्धी समस्यायें— युद्ध के कारण लोगों की कागजी मुद्रा को चाँदी के सिक्कों में बदलवाने की माँग बढ़ गई। जो इस प्रकार से बदलाये जाने वाले नोटों की संख्या जून १९४० से पूर्व १ करोड़ प्रति सप्ताह थी, वह अब बढ़ कर ४ करोड़ हो गई थी। चाँदी का मूल्य बढ़ जाने के कारण इन सिक्कों का आन्तरिक मूल्य बाह्य मूल्य से बढ़ गया, जिसका यह परिणाम हुआ कि लोग धड़ाधड़ उन नोटों को चाँदी के सिक्कों में बदलवा कर गलाने लगे। यह कार्य भी एक लाभ का साधन बन गया। इससे रुपयों की रेजगारी की बड़ी भारी कमी आगई। इस कमी को करने के लिये सरकार ने निम्न उपाय किये—

(१) जुलाई १९४० से नोटों का चांदी के सिक्कोंमें बदलना बन्द कर सरकार ने एक राशनिंग प्रणाली चालू कर दी, जिसके अनुसार नोट केवल व्यक्तिगत एवं व्यापारिक आवश्यकताओं ही के लिये बदले जा सकते थे।

(२) सरकार ने २४ जून १९४० से एक एक रुपये के अपरिवर्तनीय नोट चलाये।

(३) फरवरी १९४३ से रिजर्व बैंक द्वारा दो दो रुपये वाले नोट भी निकाले गये।

(४) सिक्कों के अनुचित संग्रह को रोकने और चांदी के उपयोग को कम करने के लिये कम चांदी के रुपये चलाये गये। जिन रुपयों में पहिले ११/१२ भाग शुद्ध चांदी होती थी, अब केवल आधि (९० ग्रेन) कर दी गई।

(५) पहिले के अधिक चांदी वाले सिक्कों को अवैधानिक घोषित कर दिया गया। विक्टोरिया के रुपये व अठन्नियां ३१ मार्च, १९४१ को; एडवर्ड समय के ३१ मई १९४२ को; जार्ज पञ्चम व षष्ठम के ३१ मई, १९४३ को, विधिग्राह्यतासे वंचित कर दिये गये।

(६) छोछे सिक्कों की कमी दूर करने के लिये सन् १९४२ में गिलट की व पीतल की दुअन्नियां, इकन्नियां व नये चौकोर अधन्ने निकाले गये। जब बडे ताम्बे के पैसे भी गलाये जाने लगे तो फरवरी १९४३ में कम ताम्बे के, हल्के व सुराखदार पैसे निकले गये। जव इन जिकों की इतनी कमी आगई कि एक रुपये के वदले १४ आने रेजगारी में मिलने लगे और लोग डाकखाने के टिकिट व लिफाफे उपयोग में लान लगे। नई टकसाले खोलो गई और अधिक से अधिक मात्रा में रेजगारी निकाली गई।

युद्ध के कारण भारत के व्य के आंकडे वहुत वढ गये। भारतीय सुरक्षा के नाम पर भारत में स्थित विदेशी फौजों के लिये पानी की तरह पैसा वहाया गया। यही नहीं, विदेशों में लड़ने वाली भारतीय फौजों के लिये सारी व्यवस्था भारत को

ही करनी पड़ती थी। युद्ध के कारण भारत में कई नये महकमें खोलने पड़े। इन सब कारणों से भारत का बजट घाटे में चला जाना स्वाभाविक था। इस बजट को पूरा करने के के लिये निम्न उपाय किये गये :—

(१) सरकार द्वारा कई नये नये कर लगाये गये और पुराने करों में वृद्धि कर दी गई। नये करों में अतिरिक्त लाभकर (Excess Profits Tax) मुख्य है। शक्कर, दियासलाई, तम्बाकू, चाय और वनस्पति इत्यादि पर उत्पादन कर (Excise duties) लगाये गये। आय कर व आयात कर बढ़ा दिये गये। डाक, तार तथा टेलीफोन की दरें रेल किराया इत्यादि भी बढ़ा दिया गया। प्रान्तों को जो आय कर में हिस्सा दिया जाता था वह कम कर दिया गया। सन् १९३९ से १९४५ तक करों से प्राप्त कुल आय ८२७ करोड रुपये की थी, जिसमें से प्रत्यक्ष कर (Direct Taxes) ४४३ करोड रुपये थे।

(२) सरकार ने कई प्रकार के ऋण लिये। जून १९४० से यहां भारतीय सुरक्षा बचत आन्दोलन (Indian Defence Savings Movement) प्रादुर्भाव हुआ। अप्रतिदान वाले त्रिवर्षीय व छः वर्षीय डिफैन्स बान्डस जारी किये गये। कई डिफैन्सलोन और १० वर्षीय व १२ वर्षीय नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट भी जारी किए गए। डाकखाने के सेविंग्स बैंक के व्याज की दर बढा दी गई। ३१ मार्च १९४५ तक इस प्रकार से प्राप्त किए गए ऋण की कुल राशि ८५८ करोड रुपया थी।

उपर्युक्त ऋणों के अतिरिक्त सरकार ने कई प्रकार की बचत योजनाएं जारी की, जिससे जनता से अधिक से अधिक रकम सरकार के हाथ में आसके।

उधार पट्टा समझौते (Lend Lease Agreements)— इसके अन्तर्गत भी भारत को अमरीका से काफी मदद मिली। सन् १९४५ तक इस प्रकार से मिलने वाली सहायता लगभग ५१५ करोड रुपया बतलाई जाती है।

(३) इन दोनों उपायों से जब पर्याप्त मात्रा में रुपया न आया तो सरकार ने मुद्रा प्रसार की नीति अपनाई। इस मुद्रा प्रसार के विषय में हम आगे विस्तार पूर्वक समझायेंगे।

३-पौंड पावने (Sterling Balances) की समस्या

युद्ध के दिनों में भारत सरकार को इंगलैंड तथा अन्य मित्र राष्ट्रों के लिये जो मुद्रा का सामान भारत में खरीदना पड़ता था उसके लिए भी भारत सरकार को बड़ा भारी व्यय करना पड़ा। इस सामान का भुगतान इंगलैंड की सरकार लंदन में स्टर्लिंग के रूप में करती थी। ये स्टर्लिंग केवल इंगलैंड की सरकार की ओरसे भारत द्वारा दिये गए ऋण का एक प्रमाण थे। इस स्टर्लिंग में से कुछ तो घरेलू व्यय (Home Charges) के लिये और कुछ भारत पर स्टर्लिंग ऋण को चुकाने के लिये काट लिया जाता था। शेष इंगलैंड की सरकार ने भारत सरकार से ऋण के रूप में ले लिया जाय। इंगलैंड की सरकार के ये स्टर्लिंग प्रतिज्ञा पत्र रिजर्व बैंक आफ इन्डिया की सम्पत्ति के रूप में लन्दन में ही रख लिये जाते थे। प्रारम्भ में तो ये रिजर्व बैंक की बैंकिंग विभाग की सम्पत्ति के रूप में दिखलाये गए, किन्तु बाद में ज्योंही अधिक मुद्रा की आवश्यकता पड़ी इनको रिजर्व बैंक के मुद्रा संचालन विभाग में सम्पत्ति रूप में हस्तान्तरित कर दिया गया। इन सम्पत्तियों को आधार मान

(Banking) कर भारत में नोट छाप दिये गए। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रकार विदेशी सरकार, विशेष कर इंगलैंड की सरकार की प्रतिभूतियों (Securities) को आधार मान कर नोट प्रकाशित करना रिजर्व बैंक के विधानानुसार वैधानिक था। भारत सरकार इन्हीं कागजी नोटों को भुगतान में देकर इंगलैंड की सरकार के लिए माल खरीदती गई और वहाँ भेजती चली गई। भारत में मुद्रा प्रसार इसी प्रकार होता चला गया। रिजर्व बैंक के पास जो स्टलिंग सम्पतियों की राशि अगस्त १६३६ में केवल ६४ करोड़ रुपया थी वह मार्च १६४५ में बदल कर १७२४ करोड़ हो गई। संक्षेप में यह समझ लेना पर्याप्त होगा कि इंगलैंड पर भारत के ऋण का नाम ही पौंड पावना है और यह सारी १७२४ करोड़ रुपये की रकम वह रकम है जो सन १६४५ में भारत को इंगलैंड से लेनी थी।

(४) मुद्रा प्रसार की समस्या—ऊपर हम बता चुके हैं कि युद्ध काल में भारत में मुद्र प्रसार का कारण घाटे का बजट और पौंड पावना है। जो चालू नोटों की संख्या अगस्त १६३६ में १७६ करोड़ रुपया थी वह बढ़कर जून १६४५ में ११३७ करोड़ रुपया हो गई। इस मुद्रा प्रसार ने कई नई समस्यायें उत्पन्न कर दीं, जिनमें से मूल्य वृद्धि तथा उसके फलस्वरूप मूल्य नियन्त्रण काला बाजार आदि मुख्य हैं। प्रारम्भ में तो सरकार ने इस कटु सत्य को मानने से भी इन्कार कर दिया कि भारत में मुद्रा प्रसार हुआ। किन्तु भारतीय अर्थशास्त्रियों जिनमें प्रो० वकील का नाम विशेष उल्लेखनीय है यह प्रमाण पूर्वक सिद्ध कर दिया कि यह उत्पादन में बिना किसी वृद्धि के होने वाली मुद्रा परिमाण की वृद्धि मुद्रा प्रसार नहीं है तो क्या है? इंगलैंड और

अमरीका में इस मुद्रा प्रसार को रोकने के अनेक उपाय किए गए, किन्तु भारत में वे सब नहीं के समान हैं।

५—मूल्य बृद्धि की समस्या—यह अर्थशास्त्र का एक अटल सिद्धान्त है कि जब मुद्रा के परिमाण में बृद्धि की जाय और यदि इस बृद्धि के साथ उत्पादन में बृद्धि न की जाय, तो वस्तुओं के मूल्य बढ़ना अवश्यम्भावी है। भारत में भी यही हुआ है। जुलाई १६३६ को आधारवर्ष मानकर थोक मूल्यों का निर्देशांक १६४५ के अन्त तक ३०१ तक जा पहुँचा। जैसे जैसे चलन में अधिक मुद्रा आई, वैसे वैसे वस्तुओं के मूल्य भी बढ़ते चले गये किन्तु इंगलैंड और अमरीका में न तो इतना मुद्रा प्रसार ही होने दिया और न मूल्यों को चढ़ने दिया। उसी १६३६ को आधार वर्ष मानते हुये इंगलैंड और अमरीका के निर्देशांक १६४५ में क्रमशः १७० और १३६ तक ही पहुँच पाये, जैसा रिजर्व बैंक की १६४५-४६ की रिपोर्ट से स्पष्ट है।

युद्ध के लिये भारत से करोड़ों रुपये का माल चले जाने से तथा मूल्य वृद्धि से भारत में वस्तुओं का अभाव हो गया। लोग वस्तुओं का अनावश्यक संग्रह (Hoarding) करने तथा लाभ कमाने में जुट गये। सरकार ने विशेषकर अपने हित में होने के कारण सन १६४३ में मूल्य नियन्त्रण (Price Control) और सुनियन्त्रित वस्त वितरण प्रणाली (Rationing) लागु कर दी। लेकिन यह सब रोते के आँसू पोंछना था। जनता में वस्तुओं के लिये त्राहि त्राहि मच गई। चोर बाजारी और भ्रष्टाचार बढ़ गया। व्यापारी बिना परिश्रम किये लखपती करोड़ पति बन गये। किन्त उपभोक्ता (Consumer) का तो ईश्वर ही मालिक था। बेचारे का सारा दिन जीवन की आवश्यक वस्तयें

जुटाने में ही खर्च हो जाता था। घन्टों धूप में खड़े रहने, एक दूसरे से लड़ने भिड़ने के बाद व्यापारी देवता के दर्शन हो पाते थे, किन्तु बाद में भाग्य वश भी देवता नहीं दानव ही सिद्ध होता था। इतनी परेशानी के बाद भी मिलता क्या? कपड़े की दुकान से ४ गज छींट का टुकड़ा, शक्कर की दुकान से चार आने की शक्कर, और अनाज की दुकान से ४ सेर गेहूँ, जिसमें भी शायद चौथाई कूड़ा कर्कट।

६—विनिमय नियन्त्रण (Exchnge Control).

इंगलैंड की भांति भारत सरकार ने भी विनिमय नियन्त्रण लागू कर दिया। १६३६ के भारतीय सुरक्षा अधिनियम (Defence of India Ordinance) के अन्तर्गत सरकार को निम्न अधिकार प्राप्त हो गये:—

(१) विदेशी विनिमय को खरीद दर पर प्रतिबन्ध लगाना
(२) विदेशी विनिमय को अपने अधिकार में ले लेना।
(३) प्रतिभूतियों की खरीद व निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाना
(४) विदेशी प्रतिभूतियों को अपने अधिकार में ले लेना।

इस प्रकार सरकार ने विदेशी विनिमय सम्बन्धी सारे क्रय-विक्रयों पर प्रतिबन्ध लगा दिये और इस नियन्त्रण का सारा कार्य-भार रिजर्व बैंक को दे दिया। रिजर्व बैंक ने इस कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये एक नया विभाग जो विनिमय नियन्त्रण विभाग (Exchange Control Department) कहलाता था, खोला। इस विनिमय नियन्त्रण से ब्रिटिश

साम्राज्य मंडल के देशों को मुक्त रखा। ये देश स्टर्लिंग क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध थे। इस स्टर्लिंग क्षेत्र में मुद्रा-विनिमय का कार्य स्वतन्त्रतापूर्वक किया जा सकता था, किन्तु इससे बाहर धन-राशि भेजने से पहिले इसके उद्देश्यों के साथ एक आवेदन-पत्र भेजना आवश्यक था। नियन्त्रण के लिए बाहर धन भेजने की आवश्यकताओं को पांच भागों में बांट रखा था : (१) आयात के लिए भुगतान, इसके लिए आयात कर अधिकारियों की यह साक्षी होना आवश्यक था कि माल भारत में ही आया है, (२) छोटी मात्रा के निजी भुगतान, (३) यात्रा खर्च, ये केवल एक सीमा तक ही किये जा सकते थे, (४) दूसरे व्यापारिक कार्य (भाड़ा, लाभ, रायल्टी) उनके लिए किसी चार्टर्ड अका-उन्टेन्ट का इन कार्यों की सत्यता के बारे में प्रमाण पत्र देना आवश्यक था, (५) पूंजीगत भुगतान, ये केवल अपवाद स्वरूप परिस्थितियों में करने की अनुमति दी जाती थी और वह भी रिजर्व बैंक की सम्मति से। इन सब नियन्त्रणों का उद्देश्य विदेशी विनिमय का केवल व्यापारिक तथा कुछ अन्य कार्यों के लिए ही बेचना था, जिससे पूँजी देश के बाहर न जा सके और न सट्टेबाजी हो सके।

आयात नियन्त्रण—प्रारम्भ में तो बैंकों को विदेशी विनिमय की बिक्री की पूरी छूट थी, किन्तु बाद में इसका बेचान केवल अनुमति प्राप्त आयातों (Licensed Imports) के लिये ही सीमित कर दिया गया। स्टर्लिंग क्षेत्र के बाहर से बिना अनुमति के कोई आयात नहीं हो सकता था।

निर्यात नियन्त्रण—इसके लिए रिजर्व बैंक ने एक निर्यात नियन्त्रण योजना (Export Control Scheme) लागू की।

इसका उद्देश्य यह निश्चित करना था कि प्रथम तो निर्यात द्वारा प्राप्त विदेशी विनिमय की रकम विदेशों में न रखी जाकर भारत में ही लौटा दी जाती है, दूसरे निर्यात एक निर्दिष्ट प्रकार से ही की जाती है, जिससे अधिकतम विदेशी विनिमय प्राप्त हो सके।

भारतवासियों तथा साम्राज्य मंडल के दूसरे देशवासियों के नाम में संयुक्त राष्ट्र अमरीका में जो भी रकमें इकट्ठी होती थी वे सब इंगलैंड की सरकार को सौंप देना पड़ता था। युद्ध कार्यों में उपयोग में लाने के लिए इन्हीं रकमों से साम्राज्य डॉलर निधि (Empire Dollar Pool) की स्थापना की गई थी।

साम्राज्य डालर निधि (Empire Dollar Pool)

साम्राज्य डॉलर निधि वास्तव में एक प्राचीन अर्थ व्यवस्था है जिसको ही युद्ध के कारण आवश्यक संशोधनों के साथ बाद में भी जारी रखा गया। इस व्यवस्था के अन्तर्गत जब किसी स्टर्लिङ्ग क्षेत्र वाले देश को अनुकूल व्यापार सन्तुलन के कारण किसी स्टर्लिंग क्षेत्र से बाहर वाले देश से कुछ लेना होता था तो वह रकम इस निधि में जमा कर ली जाती थी और उसके बदले उसको स्टर्लिंग दे दिये (अधिकांशतः सेसके नाम में जमा कर दिये) जाते थे। इस प्रकार से सारा स्टर्लिंग क्षेत्र एक मौद्रिक इकाई बन गया और सब जगह विनिमय नियन्त्रण के समान प्रतिबन्ध लगा दिये गये। सब प्राप्त किये गए डालर एक सामूहिक खाते में डाल दिये जाते थे और जब किसी

सदस्य देश को आवश्यकता होती तो वह बैंक आव इंगलैंड से कुछ प्राप्त कर सकता था।

सन् १६३६ से १९४६ तक भारत की लगभग ४०५ करोड़ रुपये की डालर प्राप्तियां निधि में जमा की गई, जिसमें से २६१ करोड़ रुपये के डालर के खर्चे कम करने के बाद ११४ करोड़ रुपये की खरी रकम साम्राज्य डालर निधि में बच रही।

भारतीय विचार धारा इस साम्राज्य डालर निधि की पद्धति के इसलिये विपक्ष में थी कि जब भारत को स्वयं अपनी विकास-योजनाओं के लिये पूंजीगत माल प्राप्त करने के लिये धन की आवश्यकता थी, वह अपनी डालर प्राप्तियां इस साम्राज्य डालर निधि में जमा कराता चला जा रहा था। यह तो वही बात हुई कि 'घर के पूत कवाँरे डोलें और पड़ोसी के फेरे।' सन् १९४४ और १९४५ में भारत की आवश्यकतायें पूरी करने के लिये दिए गये, किन्तु भारत की आवश्यकतानुसार माल के न मिलने के कारण इस रकम का उपयोग न किया जा सका। कुछ भी हो, भारत इस प्रकार थोड़ी-थोड़ी रकमें उपयोग के लिये देने का सिद्धान्तरूप से विरोधी थी। सन् १९४७ में निधि में से डालर उपयोग में लाने के प्रतिबन्धों को हटा दिया गया। किन्तु अवमूल्यन के समय सन १९४९-५० में भारत ने स्वयं स्टर्लिंग क्षेत्र के अन्य देशों के साथ-साथ अपनी डालर खरीदों (Dollar Purchases) को भी सन् १९४९ की खरीदों से २५% कम कर दिया।

अभ्यास-प्रश्न

१—फाउलर समिति कब और क्यों नियुक्त की गई? इसकी मुख्य सिफारिशें बतलाइये।

२—भारत में स्वर्ण विनिमय मान कब और कैसे आया? इसकी कार्य विधि लिखिये।

३—प्रथम महायुद्ध से पहिले भारतीय मुद्रा की क्या दशा थी? संक्षेप में लिखिये।

४—प्रथम महायुद्ध का भारतीय मुद्रा पर क्या प्रभाव पड़ा? विस्तार से लिखिये।

५—बेबिंगटन स्मिथ समिति कब और क्यों नियुक्त की गई? इसके मुख्य-मुख्य सुझावों का भारतीय मुद्रा पर क्या प्रभाव पड़ा?

६—हिल्टन यंग कमीशन कब और क्यों नियुक्त किया गया? इसके मुख्य-मुख्य सुझाव लिखिये।

७—हिल्टन यंग कमीशन ने भारत के लिये स्वर्ण धातु-मान ही क्यों उचित समझा? विस्तारपूर्वक समझाइये।

८—हिल्टन यंग कमीशन ने भारत की विनिमय दर ? शि० ६ पेंस ही क्यों रखी? इसका भारत में क्यों विरोध किया गया?

९—भारत का स्वर्णमान का अन्त कब और कैसे हुआ?

१०—भारत का स्वर्ण निर्यात काल कौन सा है? उस समय भारत में इतना सोना कैसे बिका और निर्यात क्यों हुआ?

११—द्वितीय महायुद्ध ने भारत में कौन सी समस्यायें उत्पन्न कर दी उनका संक्षेप में वर्णन कीजिये।

१२—भारत में इतना मुद्रा प्रसार क्यों और कैसे हुआ ? उसका देश पर क्या प्रभाव पड़ा ?

१३—इनका संक्षिप्त विवरण लिखिये :—

(१) साम्राज्य डालर निधि, (२) पौंड पावने (३) कौंसिल बिल, (४) विपरीत कौंसिल, (५) भारतीय मूल्य वृद्धि, (६) भारतीय सुरक्षा अधिनियम ।

अध्याय १५

भारतीय मुद्रा का इतिहास (२)

(१९४५ के पश्चात्)

युद्धोत्तर काल (Post war period)—१९४५-१९५३

द्वितीय युद्ध के बाद का समय भारतीय मुद्रा इतिहास में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसी काल में भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ, देश को दो भागों में बांट दिया गया, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की स्थापना हुई तथा स्टर्लिंग के अवमूल्यन के साथ रुपये का अवमूल्यन हुआ। ये परिवर्तन न केवल भारतवर्ष के इतिहास में ही नहीं बल्कि विश्व इतिहास में भी प्रमुख स्थान रखते हैं। इन सब बातों तथा युद्ध जन्य परिस्थितियों का जिनके कि अवशेष अब तक विद्यमान हैं, विवेचन करना ही इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य है।

१—बहुमूल्य कागजी नोटों का अमुद्रीकरण (Demonetisation)

१२ जनवरी, १९४६ को देश में बढ़ती हुई चोर बाजारी तथा आयकर बचाने की चालों को कम करने के लिये एक

अमुद्रीकरण अधिनियम (Demonetisation Ordinance) पास किया गया। इसके द्वारा एक निश्चित तिथि के बाद ५०० रुपये, १००० रुपये तथा १०००० रुपये के कागजी नोटों से विधि ग्राह्यता छीन लेने की घोषणा की गई। साथ ही उन व्यक्तियों को जिनके पास इस प्रकार के नोट हों उनको एक निश्चत फार्म में यह बातें कि ये नोट किससे, कैसे और कब आये तथा अब तक बैंक में क्यों नहीं जमा कराये गये लिखकर देने तथा १५ दिन के भीतर इनको रिजर्व बैंक. अनुसूचित बैंक अथवा सरकारी कोष से छोटे नोटों में बदल वाने को कहा गया। बाद में इस नोठ बदलवाने की तिथि को २६ अप्रैल १९४६ तथा कुछ दशाओं में २६ फरवरी १९४७ तक बढ़ा दिया गया। किन्तु अधिकांश नोट २६ जनवरी १९-४६ तक ही बदलवा लिये गये। ३१ दिसम्बर १९४७ तक न जमा कराये जाने वाले नोटों की राशि इस प्रकार थी : (१) ५०० रुपये वाले नोट ३ लाख रुपये के (२) १००० रुपये वाले नोट ११२ लाख रुपये के, (३) १०००० रुपये वाले नोट २१ लाख रुपये के, इस प्रकार भारतीय जनता को कुल १३६ लाख रुपये की क्षति हुई। भारतीय अर्थशास्त्रियों ने इस उपाय की कटु आलोचना की। उनका यह कहना था कि इससे बढ़ता हुआ मुद्रा प्रसार तथा मूल्यों का चढ़ाव कम नहीं हुआ। जिन लोगों के पास पहिले बड़ी राशि वाले नोट थे उनको अब छोटी राशि वाले नोट मिल गये। हां इससे आयकर की अवश्य कम हो गई।

इस अमुद्रीकरण के बाद भारत में १ रुपये, २ रुपये, ५ रुपये, १० रुपये तथा १०० रुपये वाले असीमित विधि ग्राह्य नोट बच रहे। आजकल देश में इन्हीं का चलन है। इसमें

केवल १ रुपये वाले नोट ही ऐसे हैं, जो सरकार द्वारा चलाये हुये हैं। बाकी सब नोट रिजर्व बैंक निकालता है।

२—पौंड पावना व उसका भुगतान (Sterling Balances & their Repayment)

पौंड पावने से हमारा आशय उस रकम से है जो भारत को इंगलैंड से लेनी है। वैसे तो भारत की कुछ न कुछ रकम लन्दन में कागजी मुद्रा निधि के रूप में पहिले से रहती चली आई है, किन्तु युद्ध के समय इस रकम के अत्यधिक बढ़ जाने के कारण लोगों का ध्यान इस ओर विशेषरूप से गया। युद्ध से पहिले इस रकम की संख्या ६४ करोड़ रुपये से बढ़कर सन् १६४५ में १७३३ रुपये तक पहुँच गई।

इस विशाल रकम के एकत्रित होने का मुख्य कारण इंगलैंड द्वारा भारत को उस रकम का स्टर्लिंग में भुगतान करना था, जो भारत द्वारा इंगलैंड को तथा अन्य मित्रराष्ट्रों को भारत से युद्ध सम्बन्धी माल भेजने तथा उनकी ओर से यहाँ व्यय करने से उत्पन्न हुई थी। इस समय युद्ध का काम चलाने के लिये रिजर्व बैंक की उस धारा का अनुचित लाभ उठाया गया जिसके अनुसार रिजर्व बैंक को असीमित मात्रा में स्टर्लिंग प्रति भूतियाँ खरीदने का अधिकार प्राप्त था। इंगलैंड की सरकार भारत सरकार को उस माल और खर्चे के बदले में जो प्रण-पत्र जो (Promissory notes) देती थी, वे भारत सरकार द्वारा रिजर्व बैंक को दे दिये जाते थे, जिसके आधार पर बैंक कागजी मुद्रा प्रकाशित कर देता था। ये प्रण-पत्र स्टर्लिंग

प्रतिभूतियाँ (Sterling Securities) कहलाती हैं। आज भी ये रिजर्व बैंक के पास सम्पत्ति के रूप में जमा हैं।

इसके अतिरिक्त इस पौंड पावने के जमा होने के कुछ अन्य कारण भी थे, जो इस प्रकार हैं :—(१) भारतवासियों द्वारा डालर के तथा अन्य दुर्लभ मुद्राओं के रूप में जो सम्पत्ति थी उसको जबर्दस्ती ले लेना तथा उसका साम्राज्य डालर निधि में जमा कर देना, (२) अमरीका के साथ भारत द्वारा माल के निर्यात तथा खर्चे से उत्पन्न अनुकूल व्यापार संतुलन का होना और उसका उक्त निधि में जमा कर लेना, (३) सुरक्षा व्यय योजना के अन्तर्गत इंगलैंड की सरकार द्वारा भारी व्यय करना।

जैसा कहा चुका है, यह सारी रकम भारत की ओर से इंगलैंड पर ऋण है। यह ऋण ऐसा ऋण है, जो ऋणदाता की मर्जी से लिया गया ऋण नहीं बल्कि ऋणी के राजनैतिक दबाव व जबर्दस्ती से लिया गया ऋण है। वैसे तो इसकी ऋण की संज्ञा देना उपयुक्त नहीं है, क्योंकि भारत जैसा गरीब परतन्त्र और पिछड़ा हुआ देश क्या ऋण दे सकता था। वास्तव में देखा जाय तो यह भारतवासियों के खून और पसीने से एकत्रित हुआ रक्त बैंक (Blood Bank) का रक्त है। इंगलैंड के कूटनीतिज्ञ नेताओं ने, जिनमें चर्चिल महोदय का नाम उल्लेखनीय है, इस रकम के भुगतान करने का घोर विरोध किया। उनका कहना था कि यह इतनी सारी रकम तो भारत द्वारा वस्तुओं के अत्यधिक ऊँचे मूल्य वसूल करने से इकट्ठी हो गई थी। इसमें भारत के त्याग का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इंगलैंड ने भारत की रक्षा की, उस रक्षा के एवजे में यह रकम

बराबर कर देनी चाहिये। कुछ भी हो, इन सबके पीछे इस पौंड पावने की रकम को कम करने का उद्देश्य था और इसीलिये इंगलैंड वासियों ने निम्नलिखित तर्क दिये :—

(१) भारत और इंगलैंड के बीच जो युद्ध व्ययों के बँटवारे का समझौता हुआ वह इंगलैंड के विपक्ष में था, इसी से इंगलैंड भारत का ऋणी हो गया, (२) यह व्यय भारत की रक्षा के लिये भी उतना ही आवश्यक था जितना इंगलैंड की रक्षा के लिये, (३) मान लिया जाय कि इस पौंड पावने की रकम के कारण भारत को बड़ी तकलीफें तो अब काफ़ूर हो चुकी, (४) भारत द्वारा वस्तुओं के बड़े ऊँचे मूल्य वसूल किये गये, (५) विनिमय की दर काफी ऊँची रखी गई।

किन्तु ये सब बातें मिथ्या थीं। प्रथम तो, भारत और इंगलैंड के बीच मालिक और नौकर का सम्बन्ध था। ऐसी दशा में समझौते का भारत के पक्ष में होना असम्भव था। दूसरे, जहां तक भारत की रक्षा का प्रश्न है, इसके लिये तो उसने स्वय अलग से बड़ी भारी रकम खर्च की थी, उसमें से तो इसमें एक भी पैसा शामिल नहीं किया गया था। तीसरे, जब इंगलैंड पर इतनी विपत्ति आई, तो भारत ने उसका साथ दिया। अब जब भारत पर विपत्ति आई है, तो इंगलैंड को यह रकम चुका कर भारत के औद्योगीकरण में सहायता देनी चाहिये। चौथे, इंगलैंड को तो जो वस्तुयें भेजी गईं, वे सब नियन्त्रित मूल्यों (Controlled Prices), पर भेजी गई थी, जब कि भारतवासियों को यहाँ चोर बाजार के मूल्य (Black Market Rates) चुकाने पड़े थे। पांचवें, विनिमय दर तो नियन्त्रित रखी गई थी, वरना यह स्वतन्त्र होती, तो काफी ऊँची चली जाती।

किन्तु, इंगलैंड की सरकार की यह बात सराहनीय है कि उसने कभी इस प्रकार की अनुचित बातें नहीं की। इसी बात को लेकर श्री शैनमुखम चैटी ने, जो उस समय भारत के वित्त मन्त्री थे, जून १९४८ में भारतवासियों को यह शुभ सन्देश दिया कि अब पौंड पावने की रकम में कटौती करने की बात समाप्त हो गई थी। हाँ यह अवश्य है कि स्टर्लिंग के साथ रुपये का अव मूल्य स्वीकार कर भारत ने स्वयं पौंड पावने की डालर के रूप में लगभग ३० प्रतिशत की कटौती स्वीकार कर ली।

पौंड पावने का भुगतान—

इसके भुगतान के लिये विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने निम्न लिखित सुझाव दिए :—

(१) इंगलैंड से माल का आयात करके जो माल का आयात हो वह पूंजी गत माल, जैसे कल पुर्जे इत्यादि में होना चाहिए न कि दिन प्रति दिन की आवश्यकता के लिए माल में, क्योंकि दूसरे प्रकार के माल मंगाने से यहां के उद्योग-धन्धों को ठेस लगेगी।

(२) चूंकि इंगलैंड भारत की मौजूदा मांग को पूरा करने में असमर्थ था, इसलिये इस राशि का कुछ अंश डालर में परिवर्तित करा लेना चाहिए।

(३) भारत के उद्योग धन्धों में लगी इंगलैंड की व्यापारिक पूंजी को उचित मूल्य पर खरीद लेनी चाहिए।

(४) इसके अतिरिक्त पौंड पावने को अंग्रेजों की पेंशन के लिए एक निधि स्थापित करने, युद्ध सामग्री खरीदने,

भारतीय विद्यार्थियों को वहाँ उच्च शिक्षा प्राप्त कराने आदि के उपयोग में लाना चाहिए।

पौंड पावने के समझौते—

प्रारम्भ में भारत सरकार और इंगलैंड की सरकार के बीच यथोचित निश्चय न होने से अगस्त १९४७ में दो अन्तरिम समझौते किए गए जो ६–६ महीने की अवधि के थे। इन दोनों समझौतों के फलस्वरूप भारत को १११ करोड़ रुपए खर्च करने की अनुमति मिली, किन्तु भारत इसमें से केवल ४ करोड़ रुपये उपयोग में ला सका।

विदेशी विनिमय की अनिश्चितता दूर करने तथा आयात की संतुलित नीति अपनाने के हेतु यह ६–६ महीने के समझौते करने की नीति छोड़ना आवश्यक हो गया। इसलिये जून १९४८ में एक त्रिवर्षीय समझौता किया गया, जिसके द्वारा पहिले की बिना खर्च की गई राशि को मिलाकर अपनी निर्यात की आय के अतिरिक्त २१३ करोड़ खर्च करने का निश्चय हुआ। इस समझौते के समय पौंड पावने की कुल राशि १५४७ करोड़ रुपये की थी।

भारत ने लगभग ३५७ करोड़ रुपये की रकम युद्ध सामग्री खरीदने तथा अंग्रेज पदाधिकारियों की पैंशन चुकाने में खर्च की। इसके अतिरिक्त भी भारत ने इस पौंड पावने की रकम में से अधिक से अधिक रकम उपयोग में लेने का प्रयत्न किया। सन् १९४८–४९ के प्रथम दस महीनों में ही इस पौंड पावने की रकम में लगभग ५५६ करोड़ रुपयों की कमी हो गई। इसका मुख्य कारण पाकिस्तान को १७० करोड़ रुपये

की रकम हस्तान्तरण करना, २८४ करोड़ रुपये का सुरक्षा के लिये सामान खरीदना व वार्षिक भत्ता देना तथा व्यापार के प्रतिकूल संतुलन को पूरा करना था।

जुलाई १९४९ में एक नया समझौता फिर किया गया जो पहिले वाले समझौते से अच्छा था। इसके द्वारा भारत को पहिले से अधिक रकम खर्च करने, स्टर्लिंग को डालर में परिवर्तित कराने आदि को सुविधायें प्राप्त हो गई। दिसम्बर १९५० में फिर एक समझौता हुआ जिसके द्वारा जुलाई १९५१ से ६ वर्ष तक लगभग ४७ करोड़ रुपये (३५० लाख पौंड) प्रति वर्ष खर्च करने की सुविधा मिल गई। किसी साल में न उपयोग में लाई गई रकम अगले वर्ष उपयोग में लाने की बात भी निश्चित हो गई।

जनवरी १९५२ में हमारे पौंड पावने की रकम ७८२ करोड़ रुपया थी। यहाँ यह कह देना असगत न होगा कि अब तक इसमें से जो भी रकम हम उपयोग में लाये हैं वह अधिकतर खाद्य पदार्थ तथा अन्य नित्यप्रति के उपयोग की वस्तुयें खरीदने में उपयोग की है। अच्छा तो यह हो कि अब इसका अधिकांश राष्ट्र की विकास योजनाओं के लिये उपयोग में लाई जाय।

रुपये का अवमूल्यन (Devaluation of the Rupee)—

किसी भी मुद्रा के अवमूल्य का अर्थ है उस मुद्रा का मूल्य दूसरी मुद्राओं में कम होना। अवमूल्यन से जिस मुद्रा के बदले पहिले हमको जितनी विदेशी मुद्रायें मिलती थीं अब उनसे

अब उनसे कम मिलने लगेगी। उदाहरण के लिये यदि हमारा रुपया जो आजकल १ शि० ६ पैंस के बराबर है, उसे घटाकर १ शि० ४ पैंस के बराबर कर दिया जाय, तो यह रुपये का अवमूल्यन कहलायेगा क्योंकि अब प्रति रुपया २ पैंस कम मिलेंगे। इसलिये रुपए के अवमूल्यन का अर्थ हुआ, रूपए की विनिमय दर कम करना।

इस विनिमय दर को न्यूनाधिक करने का देश के विदेशी व्यापार पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इस सीधे प्रभाव के कारण ही विदेशी व्यापार का रुख बदलने के लिये विनिमय दर में उतार-चढाव किये जाते हैं। जब किसी देश का व्यापार संतुलन बडा विपरीत जा रहा हो और वह देश अपने आयात को कम कर निर्यात बढाना चाहता है, तो उसको इस अवमूल्यन रुपी शस्त्र की शरण लेनी होती है।

वैसे तो स्टर्लिंग क्षेत्र के देशों को डालर की समस्या का सामना पहिले से करना पड़ रहा था, किन्तु द्वितीय महायुद्ध के पश्चात यह समस्या और भी भयंकर हो गई। सन् १९४६ जो डालर की कमी २२·६ करोड पौंड की थी, वह १९४७ में बढकर १०२·४ करोड पौंड हो गई। खर्चों पर अत्यधिक नियन्त्रण लगा कर सन् १९४८ में इसको ४२·३ करोड पौंड पर ले आया गया। इससे स्टर्लिंग क्षेत्र की केन्द्रीय डालर निधि का बडा शीघ्र गामी लोप होना प्रारम्भ हो गया। जो निधि की रकम मार्च १९४८ में ५५·२ करोड पौंड थी, वह घट कर जून १९४९ में ४०·६ करोड पौंड रह गई। इस डॉलर की कमी का मुख्य कारण स्टर्लिंग क्षेत्र का अमरीका पर अत्याधिक निर्भर करना, देश में ऊँचे मूल्यों के कारण निर्यात कम हो जाना तथा युद्ध के कारण डालर देशों तथा अन्य देशों के बीच उत्पादन सतुलन का टूट

जाना था। इंग्लैंड इस कमी को अदृश्य निर्यात तथा अपने अधीन देशों की डालर प्राप्ति से दूर कर सकता था. किन्तु युद्धने तो पाँसा ही पलट दिया। अन्त में, १८ सितम्बर १९४९ को सर स्टैफर्ड क्रिप्स को स्टर्लिंग के ३०.५% से अवमूल्यन की घोषणा करनी पड़ी जिससे जो अंग्रेजी पौंड पहिले ४.०३ डालर के बराबर था अब २.८ डालर के बराबर हो गया। पाकिस्तान को छोड़कर साम्राज्य मंडल के सारे देशों ने अपनी अपनी मुद्राओं का भी अवमूल्यन कर दिया।

भारतीय रुपये का मूल्य भी उसी अनुपात में गिर गया जिस में पौंड का मूल्य गिरा था। रुपये का स्टर्लिंग में तो मूल्य पहिले की भाँति १ शि० ६ पैंस के बराबर बना रहा, किन्तु अमरीकी मुद्रा सेंट (Cents) में अब यह ३२ सेंट से गिरकर २१ सेंट पर आगया। रुपये का यह अवमूल्यन केवल इसलिये करना आवश्यक होगया कि भारत स्टर्लिंग क्षेत्र के देशों में से एक था और इसकी मुद्रा का बन्धन इंग्लैंड की मुद्रा से हो चुका था। यदि भारत अवमूल्यन नहीं करता, तो इस के निर्यात जो अधिकारं स्टर्लिंग क्षेत्र के देशों को ही होते हैं, माल के महंगा पड़ने से बन्द हो जाते। इसलिये इसको यह कार्य आत्म रक्षा (Defence) के कारण करना पड़ा। हाँ यह अवश्य है कि यदि इसकी मुद्रा का सम्बन्ध स्टर्लिंग से न जुड़ा होकर, स्वतंत्र होता तो शायद अवमूल्यनकी कोई आवश्यकता प्रतीत न होती।

भारत द्वारा रुपये का अवमूल्यन करने तथा पाकिस्तान द्वारा अपने रुपये का अवमूल्यन न करने के कारण भारतीय आर्थिक परिस्थिति पर निम्नलिखित प्रभाव पड़े :—

(१) जिन लोगों ने अपनी रकम डालर क्षेत्र में भेज दी थी उनको लगभग ३०% का लाभ होगया, किन्तु उन भारतीय

व्यापारियों, विद्यार्थियों तथा अन्य व्यक्तियों को जिनको अपने रुपये से डालर में रकमें चुकानी थीं, उनको बड़ा नुकसान हुआ।

(२) हमारे पौंड पावने की रकम डालर के रूपमें ३०% से कम होगई, जिससे भारत को बड़ी हानि उठानी पड़ी।

(३) भारत से अमरीका को निर्यात बढ़ गये और आयात कम हो गये। इसके कारण भारत को अनाज तथा पूंजीगत माल मंगाने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा।

(४) भारत का व्यापार संतुलन पक्ष में रहना शुरु होगया जिससे १९४९-५० में पौंड पावने की रकम में से कुछ भी नहीं खर्च करना पड़ा।

(५) हमारे रुपये का अवमूल्यन हो जाने और पाकिस्तान के रुपये का अवमूल्यन न होने से हमको पाकिस्तान से आने वाला सामान, जिनमें रुई और जूट मुख्य है, महंगा पड़ने लग गया। पाकिस्तान के १०० रुपये के माल के लिये हमको १४४ रुपये देने पड़े।

(६) बाहर से माल का आयात रुक जाने तथा देश में माल की मांग बढ़ जाने से यहां मूल्यस्तर ऊँचे चले गये। यहाँ का मूल्य देशान्तर अक्टूबर १९५० में ४१३.५ तक जा पहुँचा।

देश की आर्थिक बुराइयों को दूर करने के लिये अवमूल्यन को ही सर्वोत्तम उपाय मानना एक भूल है। जब विदेशों में कुछ माल सस्ते दामों पर बेचना हो तब इस साधन को अपनाया जाता है। किन्तु इससे तो केवल अल्पकालिक प्रोत्साहन

ही मिलता है। जहां तक इसके वास्तविक इलाज का प्रश्न है वह तो खर्चे कम कर घटे हुये मूल्यों पर माल के उत्पादन में वृद्धि करना है। कुछ भी हो सारे स्टर्लिंग क्षेत्र को दृष्टि से तो अवमूल्यन लाभप्रद ही सिद्ध हुआ है। यह इसी का परिणाम है कि इंग्लैंड १ जनवरी, १९५१ को नियत समय से लगभग १६ महिने पूर्व ही मार्शल सहायता लेना बन्द कर दिया।

४—देश का विभाजन और उसका भारतीय मुद्रा पर प्रभाव (Effects of Partition on Indian Currency)

देश के विभाजन ने अन्य समस्याओं के साथ साथ मुद्रा विभाजन की समस्या भी उत्पन्न कर दी। इस समस्या को सुलझाने के लिए रिजर्व बैंक ने सन् १९४७ में एक घोषणा निकाली जिसकी मुख्य मुख्य बातें इस प्रकार हैं :

(१) ३० सितम्बर १९४८ तक भारतीय कागजी नोट ही पाकिस्तान में भी पहले की भाँति वैधानिक रूप से चलते रहें। इसके बाद पाकिस्तान अपने स्वयं के नोट निकाल सकता है।

(२) ३० सितम्बर १९४८ के बाद रिजर्व बैंक पाकिस्तानी नोटों के बराबर के मूल्य की सम्पत्ति पाकिस्तान सरकार को हस्तान्तरित करेगा।

(३) पाकिस्तानी सिक्के चलन में आने के एक वर्ष बाद तक भारतीय सिक्के पाकिस्तान में वैधानिक रूप से प्रयोग में आते रहेंगे।

(४) १ अप्रैल १९४८ के बाद रिजर्व बैंक पाकिस्तानी नोटों का प्रकाशन नहीं करेगा।

(५) १ अक्टूबर १९४८ से पाकिस्तान को अपनी विनिमय दर निर्धारण करने का पूर्ण अधिकार रहेगा।

अपनी मुद्रा-पद्धति को स्वतंत्र रूप से चलाने के लिए पाकिस्तान ने एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना की जिसको स्टेट बैंक आफ पाकिस्तान (State Bank of Pakistan) कहकर पुकारते हैं। यह बैंक १ जुलाई १९४८ को स्थापित हुआ और इसकी अधिकृत पूंजी ५ करोड़ रुपया रखी गई।

५. मुद्राप्रसार की ओर (Inflortionery Trends)

इंगलैंड की सरकार के लिए माल खरीदने के हेतु भारत सरकार स्टर्लिंग के आधार पर नोट प्रकाशन का कार्य युद्ध समाप्त होने के बाद तक करती रही। जिन प्रकाशित किये गये नोटों की संख्या ३१ दिसम्बर १९४५ को ११५४ करोड़ रुपया थी वह जून १९४६ में १२५४ करोड़ रुपया हो गई। यही नहीं, भारत सरकार को अपने घाटे के बजट को पूरा करने के लिए भी मुद्रा के परिमाण में वृद्धि करनी पड़ी। इसका सीधा प्रभाव वस्तुओं के मूल्यों पर पड़ा। बल्कि यह कहना होगा कि वस्तुओं के मूल्य युद्ध के दिनों में इतने नहीं चढ़े जितने युद्ध के बाद। जो निर्देशांक अगस्त १९४५ में २४४ था वह सितम्बर १९४९ में २८८ तक पहुँच गया। इन वस्तुओं में भी खाद्य पदार्थों की की कीमतें अधिक उल्लेखनीय हैं, उनके बराबर किसी मूल्य वृद्धि किसी अन्य चीज में नहीं हुई। खाद्य पदार्थों की निर्देशाङ्क सितम्बर १९४४ में २६४ से बढ़ कर मार्च १९४८ में ४०२ तक पहुँच गया। यहाँ यह स्मरण रहे कि वस्तुओं के मूल्य भारत में ही नहीं चढ़े बल्कि विश्व के सारे देशों में ही यही हालत था। १९४८-४९ में विश्व में जितनी मूल्य वृद्धि हुई उतनी आज तक

कभी नहीं हुई। इस मूल्य वृद्धि के अनेकों कारण हैं जिनमें मुद्रा परिमाण की वृद्धि, केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों के घाटे के बजट, मूल्य नियन्त्रण हटा लेना, उत्पादन का गिर जाना तथा खाद्य समस्या का भयंकर रूप ग्रहण कर लेना मुख्य हैं।

इस मूल्य वृद्धि के कारण जनता पिस गई। जन साधारण के लिए अपना जीवन-यापन कठिन हो गया। लोग त्राहि त्राहि करने लगे। सरकार ने जनता को मुद्रा प्रसार के भयंकर परिणामों से बचाने के लिए अनेकों उपाय किये, किन्तु प्रारम्भ में सफलता न मिली। सरकार को मूल्य नियन्त्रण फिर लगाना पड़ा, वस्तुओं के भाव बदलने पड़े, उत्पादन की वृद्धि के लिये जुट जाना पड़ा। अन्त में सरकार के सतत् प्रयत्न से मूल्य गिर गये और उत्पादन में इतनी वृद्धि हो गई कि सरकार के पास और कारखाने वालों के पास काफी माल इकट्ठा हो गया। अब फिर मूल्य नियन्त्रण हटा लिए गये हैं, किन्तु सरकार की वस्तुओं के मूल्यों पर कड़ी निगाह है।

६. मुद्रा का दशमलव पद्धति में बदलने की योजना
(Scheme of Decimalisation of Indian Coinage)

सन् १९४६ ई० में भारतीय मुद्राओं को दशमलव पद्धति में बदलने की एक योजना तैयार की गई और विचारार्थ इसको जनता में घुमाया भी गया। इस योजना के अनुसार रुपये को १९२ पाई के बजाय १०० सेंट (Cents) में बाँटा गया। जिससे रुपया १०० सेंट के बराबर, अठन्नी ५० सेंट के बराबर, चवन्नी २५ सेंट के बराबर मानी गई। दुअन्नी, एकन्नी और पैसे के स्थान पर १०, ५, २ और १ सेंट के सिक्के निकालने का निश्चय किया गया। इसके साथ ही मुद्रा वस्तु (Money Material)

के लिए नय किया गया । मुद्रा के प्राचीन
नात्मक ज्ञान प्राप्त करने के हेतु नीचे लिखी

वर्तमान सिक्के			'प्रस्तावित सिक्के व उनकी धातु'	
१ रुपया=१६ आने=१९२ पाई			१०० सेंट	क्वार्टरनेरी
१ अठन्नी= ८ ,,	= ९६ ,,		५० ,,	,,
१ चवन्नी= ४ ,,	= ४८ ,,		२५ ,,	,,
१ दुअन्नी= २ ,,	= २४ ,,		१० ,,	क्यूप्रो निकिल
१ एकन्नी = १ ,,	= १२ ,,		५ ,,	,,
१ अधन्ना=	६ ,,		२ ,,	,,
१ पैसा =	३ ,,		१	ब्रौंज
१ पाई	१ ,,		½	,,

वास्तव में, यह दशमलव पद्धति एक अच्छी पद्धति होने के कारण इसको अनेक देशों ने जिनमें सिलोन, चीन, इराक, मलाया और थाईलैंड आदि मुख्य हैं, अपना लिया । भारत के लिए भी यही कहा गया कि इसको भी इस आधुनिक मुद्रा पद्धति को अपना लेना चाहिए । इस पद्धति में हिसाब लगाने की सुविधा होने के कारण आधुनिक व्यापार और व्यवसाय में बड़ी सहायता मिलेगी । इन सब बातों के होते हुये भी भारत में इस पद्धति को अभी न अपना कर बाद के लिए स्थगित कर दिया गया क्योंकि यह भारत की प्राचीन पद्धति से मेल नहीं खाती । यहाँ तो बेपढ़ा व्यक्ति भी इस प्राचीन पद्धति के अनुसार हिसाब आसानी से लगा लेता है ।

७—अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और अन्तर्राष्ट्रीय बैंक
(International Monetary Fund & Intarnational Bank)

सन् १६४३ में इंगलैंड, अमरीका और कनाडा ने युद्धोत्तर काल की आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए अपनी अपनी योजनायें तैयार की। किन्तु जुलाई १६४४ में संयुक्त राष्ट्र अमरीका की सरकार ने सारे मित्र राष्ट्र देशों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन बुलाया। यह सम्मेलन अमरीका के ब्रेटन वुडस सम्मेलन (Bretton woods Conference) कहकर पुकारते हैं। इस सम्मेलन में ४४ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने जिनमें भारत भी सम्मिलित है, भाग लिया। इस सम्मेलन के फलस्वरूप दो संस्थाओं—अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा अन्तर्राष्ट्रीय बैंक—का जन्म हुआ। पहिले हम अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के विषय में विचार करेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund)

१—उद्देश्य—अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जिसको संक्षेप में हम I. M. F. कहकर पुकारते हैं, कई उद्देश्यों को लेकर स्थापित हुआ था। ये उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

(१) एक इस प्रकार की स्थायी संस्था द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रासहयोग को बढ़ाना।

(२) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वृद्धि तथा संतुलित प्रगति में अल्पकालीन ऋणों द्वारा सुविधा देना और इस प्रकार सदस्य देशों में उच्च स्तरीय कारोबार बढ़ाने में सहायता देना।

(३) विनिमय दर में स्थिरता लाना, सदस्य देशों के बीच विनिमय की एक ढंग पूर्ण व्यवस्था बनाये रखना तथा उनके द्वारा पारस्परिक स्पर्धापूर्ण विनिमय के अवमूल्यन को रोकना।

(४) सदस्य देशों के बीच विदेशी विनिमय के प्रतिबन्धों को दूर करना तथा भुगतानों की बहुमुखी (Multilateral System of Payments) को स्थापित करने में सहायता देना।

(५) कोष के मुद्रा साधनों को उपयुक्त सुरक्षा के साथ सदस्यों को उपयोग के लिए देकर उनमें विश्वास उत्पन्न करना व इस प्रकार उन्हें अपने भुगतान के असंतुलन को ठीक करने का अवसर देना, ताकि इस कार्य के लिये वे ऐसे साधनों को उपयोग में लावें जिनसे राष्ट्रीय उन्नति में बाधायें, उत्पन्न न हो।

२—कोष की कुल राशि व उसका वितरण—कोष की कुल राशि ८८० करोड़ डालर रखी गई। जिसमें से कोष के विभिन्न सदस्यों द्वारा जमा करायी जाने वाली रकमें इस प्रकार हैं :—

देश का नाम	रकम (करोड़ डालर में)	देश का नाम	रकम (करोड़ डालर में)
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	२७५	चीन	५५
इंगलैंड	१३०	फ्रांस	५०
रूस	१२०	भारत	४०

प्रत्येक सदस्य को अपनी रकम का २५ % अथवा अपनी खरी स्वर्ण निधि का १०%, दोनों में जो कम हो, स्वर्ण के रूप में कोप में जमा कराना अनिवार्य कर दिया गया। शेष रकम अपनी स्वयं की मुद्रा के रूप में सदस्य देशों के केन्द्रीय बैंकों में रखना आवश्यक कर दिया गया। यह रकम सदस्य देश की प्रार्थना पर हर पाँचवें साल बदली जा सकती है। इस परिवर्तन के लिए ⅘ बहुमत का पक्ष में होना आवश्यक है।

जो देश अभी सदस्य न बने हों, वे बाद में बन सकते हैं। उनके लिए उनके हिस्से की रकम का निश्चय यह कोप करेगा।

३—विनिमय दर का निश्चित करनाप्रत्येक देश की मुद्रा का समता मूल्य स्वर्ण में अथवा १ जुलाई १९४४ को मौजूद शुद्धता और तौल वाले अमरीकी डालर में प्रदर्शित किया जायगा। सदस्य देश की प्रार्थना पर उसकी विनिमय दर में १०% तक का परिवर्तन किया जा सकता है। २०% से ऊपर के परिवर्तन के लिए ¾ बहुमत का होना आवश्यक है।

४—दूसरी मुद्राओं को खरीदने का अधिकार—प्रत्येक देश अपनी मुद्रा के बदले में कोष में जमा स्वय की रकम से २५% अधिक तक की दूसरे देश की मुद्रा खरीद सकता है। किन्तु किसी भी एक वर्प में सारी राशि की २५% राशि से अधिक की विदेशी मुद्रा नहीं खरीद सकता। जब किसी देश की मुद्रा की माँग कोप के पास जमा रकम से अधिक की हो तो कोष उस देश से मुद्रा उधार ले सकता है अथवा स्वर्ण देकर खरीद सकता है।

५—कोष में स्वर्ण का स्थान—कोष के सदस्य देशों पर इस बात का कोई प्रतिबन्ध नहीं है कि वे अपनी इच्छा के विरुद्ध स्वर्णमान को अपनायें ही। केवल उन मुद्रा का स्वर्ण में समता मूल्य होना आवश्यक है और प्रारम्भ में अपनी राशि का कुछ भाग स्वर्ण में जमा कराना आवश्यक है।

६—विधान और प्रबन्ध—कोष का नित्य प्रति का कार्य संचालकों की समिति द्वारा सम्पन्न होता है। संचालक समिति के कुल १२ सदस्य हैं, जिनमें ५ स्थायी सदस्य हैं। ये पाँच देश अमरीका, इंगलैंड, फ्रांस, चीन तथा भारत हैं। रूस के भाग न लेने से भारत को स्थायी स्थान मिल गया है। कोष का प्रधान कार्यालय अमेरिका में रहेगा, किन्तु इसकी शाखायें अन्य स्थानों में भी खोली जा सकती हैं। कोई भी सदस्य लिखित सूचना द्वारा कोष की सदस्यता त्याग सकता है। संचालक गण सर्व सम्मति से कोष के किसी भी कार्य को १२० दिन बन्द कर सकते हैं।

७—कोष का कार्य-क्षेत्र—कोष व्यक्तियों से सीधा लेन-देन नहीं कर सकता, इसके लिए किसी सरकारी कोष, केन्द्रीय बैंक अथवा अन्य किसी अधिकृत संस्था को माध्यम बनाना आवश्यक है। कोष सदस्य देशों की आन्तरिक अर्थ व्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। कोष केवल अल्पकालिक आवश्यकताओं के लिये ही ऋण दे सकता है।

८—कोष द्वारा विभिन्न कार्यों का आरम्भ—कोष ने अपना कार्य का आरम्भ १ मार्च सन् १९४७ से किया। कोष ने अब तक अनेक देशों को सहायता पहुँचाई, दूसरे देशों की मुद्रा

समस्याओं को सुलझाने के लिए अपने प्रतिनिधि भी भेजे, अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय दरों के उतार चढ़ाव को रोका, जिन देशों का व्यापार संतुलन प्रतिकूल रहता था उनको अल्पकालीन ऋण देकर इनकी आर्थिक दशा सुधारने में सहायता की। इस प्रकार कोष अपने सदस्य राष्ट्रों की सेवा कर रहा है।

भारत और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

सम्मेलन में भाग लेने वाले भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता उस समय भारत के वित्त मन्त्री, सर जरसी रेजमैन (Sir Jerssey Raisman) थे। भारतीय प्रतिनिधियों ने कोष की सदस्यता स्वीकार करने से पहिले निम्नलिखित शर्तों के पूरा करने पर जोर दिया। भारत इन शर्तों के पूरा होने पर ही कोष की सदस्यता स्वीकार करना चाहता था। नीचे इन शर्तों के साथ-साथ इनको कहाँ तक पूरा किया गया, यह भी बतला दिया गया है :—

(१) भारत को अपने रुपये का स्टर्लिंग से सम्बन्ध तोड़ने तथा अपनी आवश्यकतानुसार विनिमय दर में परिवर्तन करने की पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिये। कोष भारत को स्टर्लिंग से सम्बन्ध बनाये रखने के लिए बाध्य नहीं करता। यह अपनी मुद्रा का स्वर्ण में सम्बन्ध खुद निश्चित कर सकता है। विनिमय दर में परिवर्तन करने के लिये भी कोष सहानुभूतिपूर्ण बर्ताव करता है।

(२) कोष द्वारा भारत को अपना अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संतुलित रखने की छूट दे देनी चाहिये। चूँकि कोष किसी देश की आन्तरिक अर्थ व्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं करता इसलिये भारत की यह शर्त भी पूर्ण हो जाती है।

(३) भारत को उसके औद्योगिक विकास की दृष्टि से अपनी कर नीति (Fiscal Policy) अपनी इच्छानुसार अपनाने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। इसके लिये कोष ने सदस्य देशों को पहिले से स्वतन्त्रता दे रखी है।

(४) भारत को इंगलैंड से अपने पौंड पावने की रकम को वापिस लेने तथा उसको विभिन्न देशों की मुद्राओं में बदलने में कोष से पूरी सुविधा मिलनी चाहिये। किन्तु कोष इस शर्त को पूरा करने में असमर्थ था, क्योंकि यह दो देशों का पारस्परिक लेनदेन का प्रश्न था। खैर, अब तो पौंड पावने के भुगतान का समझौता भारत के पक्ष में हो ही चुका है।

(५) कोष के संचालक मंडल में भारत को एक स्थायी स्थान मिलना चाहिए। रूस द्वारा कोष की सदस्यता स्वीकार न करने से अब भारत को यह स्थायी स्थान भी प्राप्त हो गया है।

यह हम पहिले कह ही आये हैं कि कोष में भारत का हिस्सा ४० करोड डालर का है। इसने अपने व्यापार संतुलन की कमी को पूरा करने के लिए १९४८–४९ में कोष से ९ करोड़ २० लाख का ऋण लिया। यह ऋण अल्प कालिक सहायता के रूप में है। उसने कोष से डालर खरीदने का सारा अधिकार उपयोग में ले लिया है। मार्च १९४९ में श्री एच० एच० पारसन्स की अध्यक्षता में एक मिशन भारत में आया जिसका उद्देश्य इस बात की जाँच करना था कि भारत को अब और अधिक डालर खरीदने का अधिकार दिया जाए या नहीं। इन्होंने इस बात को मान लिया कि अब तक अत्यधिक डालर खरीदने का कारण भारत द्वारा खाद्य पदार्थों के भारी आयात के कारण विषम परिस्थितियों का उत्पन्न हो जाना था।

भारत को कोष से लाभ — कोष की सदस्यता से भारत को कई लाभ प्राप्त हुए हैं। ये लाभ इस प्रकार है :—

(१) भारत को उसके आर्थिक विकास के लिए जो पूंजी की आवश्यकता है, यह पूंजी यह बैंक से प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त यह बैंक पौंड पावने के विभिन्न मुद्राओं में परिवर्तन कराने में सहायता कर सकता है। यहाँ यह स्मरण रहे कि इस बैंक की सदस्यता तथा सहायता केवल तभी सम्भव हो हो सकती है, जब यह मुद्रा कोष का सदस्य हो।

(२) भारत को संचालक मंडल में एक स्थायी स्थान मिल ही गया है, यह भी देश के लिए एक गौरव की बात है।

(३) कोष की सदस्यता उस को भुगतानों के संतुलन बनाए रखने में सहायता करेगा।

(४) चूंकि संसार के अन्य देशों ने कोष की सदस्यता स्वीकार कर लिये है, उसको भी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की इस योजनायें भाग लेकर वह संसार की आर्थिक नीति बनाने में हाथ बंटा सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंक

इस बैंक का पूरा पुनर्निर्माण व विकास का अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (International Bank for Reconstruction and Development) है। इस बैंक की स्थापना का उद्देश्य कोष की भाँति अल्पकालीन विनिमय समस्याओं का दूर करना न होकर दीर्घ कालीन विनिमय समस्याओं को हल करना है। इस बैंक की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यों को लेकर हुई :—

(१) आर्थिक दृष्टि से अविकसित देशों के विकास के साथ साथ सदस्य देशों को युद्ध की हानि के फलस्वरूप आवश्यक पुर्ननिर्माणव विकास में सहायता करना;

(२) व्यक्तिगत पूंजी जो एक देश से दूसरे देश में लगाई जा रही हो, उस की वापसी तथा ब्याज के भुगतान का उत्तरदायित्व लेना तथा व्यक्तिगत पूंजी के नहीं आने पर उत्पादन कार्यों के लिए स्वयं पूंजी ऋण देना;

(३) दीर्घ कालीन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संतुलन को बढ़ाना तथा उसके द्वारा सदस्य देशों में उत्पादन, जीवनस्तर। तथा श्रम सम्बन्धी दशाओं को उच्च स्तर पर लाना;

(४) धीरे धीरे युद्ध काल की परिस्थितियों को शान्ति पूर्ण अर्थ व्यवस्था में बदलना तथा युद्धोत्तर काल में व्यापारिक दशाओं पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी विनीयोग से सम्बन्धित बैंक के कार्यों को सुचारू रूप से चलाना।

(१) बैंक की कुल राशि व उसका वितरण :—

बैंक की अधिकृत पूंजी १० अरब डालर रखी गई, जिसको १ लाख डालर प्रति अंश के १ लाख अंशों में बाँटा गया। संसार के प्रमुख देशों की अंशराशि इस प्रकार है—

देश का नाम	अंशों की कुल रकम
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	२४३·५
इंग्लैंड	१००·०
चीन	६०·०
फ्रांस	४५·०
भारत	४०·०

३१ मार्च १९४७ तक ४७ देशों ने, जिनकी देय पूंजी (Subscribed Capital) ८ अरब ३३ करोड ६० लाख डालर है, बैंक की सदस्यता स्वीकार की। सारी रकम में से २०% रकम माँग ली गई और ८० प्रतिशत बाद के लिये छोड़ दी गई। प्रत्येक अंश की २ प्रतिशत रकम स्वर्ण में और १८ प्रतिशत आवश्यकता पड़ने पर उस देश की मुद्रा में जमा कराने के लिये तय हुआ।

२. बैंक के कार्य :—

बैंक प्राइवेट व्यक्तियों तथा संस्थाओं से लेनदेन नहीं कर सकता; यह केवल सदस्य देशों की सरकारों के मारफत ही ऐसा कर सकता है। बैंक में अंशों की पूंजी से उस देश को दिये जाने वाले ऋण का कोई सम्बन्ध नहीं होता। बैंक तो उत्पादन कार्यों के लिये एक देश की पूंजी का दूसरे देश में उपयोग करने के लिये पूरा प्रोत्साहन देता है। जब व्यक्तिगत पूंजी विनियोग के लिये नहीं आती, तो यह स्वयं अपने पास से ऋण देता है। इस के द्वारा ऋणों की गारेन्टी देने तथा स्वयं ऋण देने की शर्तें निम्नलिखित हैं :—

(१) जब सदस्य देश स्वयं ऋण लेने वाला न हो, तो ऋण की वापसी तथा व्याज के भुगतान के लिये उस सदस्य देश अथवा केन्द्रीय बैंक द्वारा गारेन्टी देना आवश्यक है।

(२) जब बैंक को यह विश्वास हो जाय कि ऋण लेने वाले के लिये ऋण का लेना आवश्यक है और मौजूदा बाजारू परिस्थितियों में वह बैंक की सहायता के अलावा ऋण प्राप्त नहीं कर सकता।

(३) जब एक सुयोग्य समिति (Expert Committee) ने जिसको कि बैंक ने नियुक्त किया हो, प्रस्तावित ऋण की जांच कर लेने के बाद ऋण देने का सुझाव दिया हो।

(४) बैंक की राय में ब्याज की दर तथा अन्य खर्च उपयुक्त हो।

(५) ऋण की गारन्टी देते समय बैंक ऋण लेने वाले की परिस्थिति, सदस्य देश का हित तथा अन्य देशों का हित ध्यान में रखकर गारन्टी देता है।

(६) ऋण की गारन्टी देते समय बैंक अपनी जोखिम पूरी करने के लिये उपयुक्त मुआवजा (Compensation) ले लेता है।

किन्हीं विशेष परिस्थितियों को छोड़कर ऋण का उपयोग केवल उन्हीं विकास योजनाओं के लिये किया जायगा, जिनके लिये ऋण लिया गया है।

ऋण से प्राप्त रकम कोई देश किसी भी देश में किसी भी प्रकार खर्च कर सकता है। बैंकों के उद्देश्यों के विपरीत नहीं होने पर यह रकम स्वतन्त्रता पूर्वक खर्च की जा सकती है।

(३) बैंक का विधान और प्रबन्ध :—

बैंक का प्रधान कार्यालय अमरीका में रहेगा। मुद्रा कोष की भांति इसकी कार्यकारिणी में १२ संचालक होंगे। इनमें से ५ स्थायी सदस्य हैं जो इस प्रकार हैं :—अमरीका, इंगलैंड, फ्रांस, चीन तथा भारत। यहां भी भारत को स्थायी स्थान रूस के भाग न लेने के कारण मिल गया है। कोई भी देश बैंक से

अपनी सदस्यता या तो मुद्रा कोष की सदस्यता त्याग कर अथवा बैंक को लिखित सूचना देकर त्याग सकता है। जब कभी ऋण प्राप्त करने के लिये आवेदन किया जाता है, तो एक ऋण समिति नियुक्त कर दी जाती है, जो इस बात की जांच करती है कि अमुक देश को ऋण दिया जाय अथवा नहीं। इस समिति में उस ऋण लेने वाले देश के एक प्रतिनिधि के अतिरिक्त बैंक के विशेष योग्यता प्राप्त कुछ व्यक्ति होते हैं। गवर्नरों की समिति चाहे तो बैंक को समय समय पर सलाह देने के लिये सात सदस्यों की एक सलाहकार समिति भी नियुक्त कर सकती है।

बैंक आर्थिक रूप से अविकसित देशों के विकास में सहायता पहुँचाने के लिये सतत् प्रयत्नशील है। इसके द्वारा जो ऋण दिये जाते हैं, वे प्रायः दीर्घकाल (६ वर्ष से ३० वर्ष तक) के लिये होते हैं। अब तक सब से बड़ा ऋण फ्रांस को मिला है, जिसकी रकम २५ करोड़ डालर है। कुल मिलाकर २६ करोड़ ३० लाख डालर का ऋण नीदरलैंड, डेनमार्क, लक्जमवर्ग और चिली को दिया गया। भारत को भी अनेक ऋण मिले हैं जिनका ब्योरा आगे दिया हुआ है।

भारत और अन्तर्राष्ट्रीय बैंक—दिसम्बर १९४५ में भारत इस बैंक का प्रारम्भिक सदस्य बना। जैसा कहा जा चुका है, भारत को बैंक की अधिकृत पूंजी में से ४० करोड़ डालर का हिस्सा मिला है। भारत ने नवम्बर १९४६ में ४ करोड़ डालर जिसमें से ९० लाख डालर स्वर्ण में अथवा अमरीकी डालर में, १ करोड़ २० लाख डालर स्वर्ण में और २ करोड़ डालर भारतीय रुपये में चुकाना था, जमा कराये।

फर्वरी १९४९ में भारत ने जो यातायात के सुधार तथा बहुमुखी विकास योजनाओं के लिये जो ऋण लेने की दरख्वास्त

दी थी उसकी जांच करने के लिये भारत में एक मिशन आया। इस मिशन के सुझाव भारत को ऋण देने के पक्ष में रहे थे। जिसके फलस्वरूप भारत को तीन ऋण मिले। प्रथम ऋण ३ करोड़ ४० लाख डालर का रेलगाड़ी के सुधार के लिये; द्वितीय ऋण १ करोड़ ६५ लाख डालर का बहुमुखी योजनाओं के लिये और तृतीय ऋण १ करोड़ डालर का कृषि सम्बन्धी सुधारों के लिये। इनमें प्रथम ऋण तो अगस्त १९४९ में, दूसरा ऋण अप्रैल १९५० में और तीसरा ऋण सितम्बर १९४९ में मिला। फिर दूसरा मिशन श्री ब्लैक (Mr. Black) की अध्यक्षता में आया, जिसका उद्देश्य दामोदर घाटी योजना तथा अन्य योजनाओं का अध्ययन करना था। इस मिशन ने अपनी रिपोर्ट भारत के पक्ष में दी। अभी हाल ही में भारत को एक ऋण और मिला है।

अभ्यास-प्रश्न

१—पौंड पावने पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

२—अवमूल्यन किसे कहते हैं? रुपये के अवमूल्यन का देश पर क्या प्रभाव पड़ा?

३—देश के विभाजन से भारतीय मुद्रा पर क्या प्रभाव पड़ा? उसका हल किस प्रकार निकाला गया?

४—भारत में मुद्रा के दशमलव पद्धति में बदलने के क्या प्रयास किये गये?

५—अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष कब और क्यों स्थापित हुआ? भारत से इसका क्या सम्बन्ध है?

६—विश्व बैंक भारत के आर्थिक विकास में किस प्रकार भाग ले रहा है? क्या भारत को विश्व की इन दो अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की सदस्यता लाभदायक सिद्ध हुई? समझाइये कैसे?

अध्याय १६

वर्तमान स्थिति

मुद्रामान (Monetary Standard)

भारत में कौन सा मुद्रामान स्थापित किया जाय इस बात की जांच करने के लिए सन् १६२५ में हिल्टन यंग कमीशन नियुक्त किया गया था। इस कमीशन ने सब मुद्रामानों का पूर्ण अध्ययन करने तथा उनकी भारत में कहां तक उपयोगिता है, यह देखने के बाद भारत में स्वर्ण धातु मान को अपनाने की सिफारिश की। किन्तु १६३१ में इंगलैंड के द्वारा स्वर्णमान त्याग देने के कारण भारत ने भी स्वर्णमान त्याग दिया और अपनी मुद्रा का सम्बन्ध स्टर्लिंग से जोड़ लिया। तब से अब तक भारत में स्वर्ण विनिमय मान ही चला आ रहा है।

किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना हो जाने और भारत द्वारा उसकी सदस्यता स्वीकार कर लेने के बाद अन्य देशों की भांति भारत का मान भी अन्तर्राष्ट्रीय स्वर्ण विनिमय मान हो गया। उस समय भारतीय रुपये का स्वर्ण में मूल्य ०.२६८६०१ ग्राम निश्चित हुआ था। किन्तु सन् १६४६ में इंगलैंड के साथ भारत ने भी अपनी मुद्रा का अवमूल्यन किया।

इसके फलस्वरूप भारतीय रुपये का स्टर्लिंग में तो मूल्य १ शि० ६ पेंस ही बना रहा, किन्तु डालर में यह ३२ सेंट के बजाय २१ सेंट हो गया और इसके साथ इसका स्वर्ण में भी मूल्य पहिले से घटकर ०.१८६६२१ ग्राम हो गया। यहां यह स्मरण रहे कि अवमूल्यन के कारण ही हमारे रुपये का मूल्य पाकिस्तानी रुपये में भी पहिले १०० रुपये = १०० रुपये पाकिस्तानी से घटकर १४४ रुपए भारतीय = १०० रुपए पाकिस्तानी हो गया। अब सब देशों का भाव एक अन्तर्राष्ट्रीय स्वर्ण विनिमय मान ही होने से, सब देशों की मुद्राओं का पारस्परिक विनिमय मूल्य भी निर्धारित हो गया। यह विनिमय मूल्य मुद्रा कोष की अनुमति से बदला भी जा सकता है।

जहां तक देश की आन्तरिक मुद्रा (Currency) का प्रश्न है, देश में कागजी और धात्विक मुद्रा दोनों का चलन १७ फरवरी १९४७ के बाद से हमारी धात्विक मुद्रा ने निम्न रूप ग्रहण कर लिया है :—

'मुद्रा का नाम'	'मुद्रा की तोल'	'मुद्रा वस्तु का नाम'
रुपया	१८० ग्रेन	गिलट (Nickel)
अठन्नी	९० ,,	,, ,,
चवन्नी	४५ ,,	,, ,,
दुअन्नी	९० ,,	गिलट और पीतल का मिश्रण
एकन्नी	६० ,,	,, ,, ,,
अधन्ना	४५ ,,	,, ,, ,,

पैसा	३० ,,	ताम्बे का मिश्रण
अधेला	३७½ ,,	,,
पाई	२५ ,,	,,

अब एक अप्रैल १९५३ से भारत में केवल उपर्युक्त सिक्के ही चलन में रह गए हैं। पहिले जो देशी रियासतों में उनके द्वारा ढाली गई मुद्रा चलन में थी अब उसकी निधि ग्राह्यता छीन ली गई है। ये सिक्के कलकत्ते के निकट अलीपुर टकसाल में ढाले जाते हैं।

कागजी मुद्रा का विवरण इस प्रकार है :—

'नाम नोट'	'नोट प्रकाशित करने वाला अधिकारी'	'रंग'
एक रुपये वाला	भारत सरकार	नीला
दो रुपये वाला	रिजर्व बैंक आफ इंडिया	लाल
पाँच रुपये वाला	,, ,, ,,	हरा
दस रुपये वाला	,, ,, ,,	नीला
सौ रुपये वाला	,, ,, ,,	हरा व नीला

एक रुपये वाले नोट पर तो भारत सरकार के वित्त सचिव (Finance Secretaay) के हस्ताक्षर होते हैं, और दूसरे नोटों पर रिजर्व बैंक के गवर्नर के। आजकल रिजर्व बैंक के गवर्नर श्री बी० रामाराव हैं। रिजर्व बैंक के विवरण के अनुसार ३ अप्रैल १९५३ को रिजर्व बैंक द्वारा प्रकाशित नोटों की संख्या ११५९ करोड़ ५७ लाख थी, जिसमें से ११४९ करोड़ ६६ लाख के नोट चलन में थे। इन नोटों के लिये

रिजर्व बैंक को एक निधि रखनी पड़ती है, जिसको कागजी मुद्रा निधि (Paper Currency Reserve) कह कर पुकारते हैं। नियमानुसार इस निधिमें कागजी मुद्रा का ४०% स्वर्ण में तथा शेष अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सदस्य देशों के साख पत्रों में रखना आवश्यक है। यह स्वर्ण भी कम से कम ४० करोड़ रुपये का होना आवश्यक है। रिजर्व बैंक की इस निधि का विवरण ३ अप्रेल १९५३ को इस प्रकार था :—

Reserve Bank Returns

An account of the Reserve Bank of India, for the week-ended 3rd April, 1953, as compared to that of the previous week :—

ISSUE DEPARTMENT

Liabilities :	In lakhs of Rs.) Week-ended 3-4-53	
Notes in the Banking Department...		9.91
Notes in Circulation	...	1149,66
Total Notes Issued	...	1159,57
Assets :		
'A'—Gold Coin & Bullion		
(a) In India	...	40,01
(b) Outside India	...	
Sterling Securities	...	583,15
Total of 'A'	...	623,16
'B'—Rupee Coin	...	86,54
Rupee Securities	...	449.86
Total	...	1159,57

Ratio of total of 'A' to Liabilities 53.74 per cent.

भारत के मुद्रा संचालन का सारा कार्य-भार रिजर्व बैंक पर ही है। रिजर्व बैंक अपने नोटों के बदले में, मांगने पर १ रुपये के शिक्के अथवा एक रुपये वाले नोट देने को बाध्य हैं। चूंकि अब सरकारी घोषणा के अनुसार १ रुपये वाले, सिक्के और नोट में कोई अन्तर नहीं है इसलिये अधिकांशतः माँगने पर ये एक रुपये वाले नोट ही दिये जाते हैं। भारत में ये नोट प्रकाशन कार्य नासिक में होता है।

अब हमें देखना यह है कि भारत का यह वर्तमान मुद्रा मान किस हद तक अच्छा कहा जा सकता है। इसके लिये हमको इसके गुण और दोष देखने होंगे।

गुण—(१) हमारा मुद्रामान एक अन्तर्राष्ट्रीय स्वर्ण विनिमय मान होनेके कारण हमारा संसार के सब देशों से व्यापार सम्भव है। हमारी मद्रा का विनिमय मूल्य सब देशों की मुद्राओं में निश्चित है।

(२) हमारे यहाँ आंन्तरिक चलन के लिये धात्विक व कागजी मुद्रा दोनों विद्यमान होने से, दोनों के लाभसुलभ हैं। यह धात्विक मद्रा ऐसी धातुकी बनी होती है, जिसमें हमको खर्चा विशेष नहीं पड़ता।

(३) नोटों के प्रकाशित करनेका अधिकार केवल देश के केद्रीय बैंक (रिजर्व बैंक) के हाथ में होने से, मुद्रा पर नियन्त्रण भली प्रकार से रखना सम्भव है।

(४) हमारे देश की मुद्रा का स्टर्लिंग से सम्बन्ध जुडा होने से भी अनेक लाभ हैं, जिनमें स्टर्लिंग क्षेत्र के अनेक देशों

से भुगतान की सुविधा का होना सत्य है। इस सुविधा का होना देश के विदेशी व्यापार के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

दोष—(१) हमारी सारी मुद्रा प्रतीक मुद्रा है और वह भी अपरिवर्तनीय। इसका स्वर्ण में मूल्य निश्चित होना तो केवल नाम के लिये है। इससे किसी को सोना नहीं मिल पाता।

(२) हमारी कागजी मुद्रा निधि में स्टर्लिंग प्रतिभूतियों को जो स्थान दिया हुआ है उसका एक भयंकर परिणाम तो अभी युद्ध के दिनों में हम देख भी चुके हैं।

(३) देश की धातु मुद्रा किसी बहुमूल्य धातु की न बनी होने से सरकार में जनता का विश्वास उठता जा रहा है।

(४) हमारी मुद्रा का, जो स्टर्लिंग से गठ बन्धन है और उसके साथ साथ जो हम उसका अवमूल्यन करते चले जा रहे हैं वह बड़ा घातक है।

(५) देश की मुद्रा का क्या मान है यह सरल न होने से, जनता की समझ से बाहर होता है।

अभ्यास प्रश्न

१ भारत की वर्तमान मुद्रा पद्धति पर एक छोटा निबन्ध लिखिये।

२ आधुनिक भारतीय मुद्रा प्रणाली के गुण और दोष लिखिये।

RAJPUTANA UNIVERSITY

INTER COMMERCE EXAMINATION, 1951.

ELEMENTS OF BANKING

First Paper

(Money, Currency and Exchange)

1. Define money. What are the essential qualities of a money-material ? Explain.

2. State the principal methods of regulating Note-Issue. Discuss their relative merits and demerits.

3. State and explain the Quantity Theory of Money and indicate its limitations.

4. Explain the fundamental principles of a sound-paper currency system. Criticise the Indian Currency System in the light of these principles.

5. Explain the chief features of Gold Standard. Compare and contrast Gold Bullion Standard and Gold Exchange Standard.

6. What is meant by the term 'foreign exchange rate' ? Discuss fully the various factors that cause fluctuations in the foreign exchange rates.

9. What are the immediate problems facing the Indian Currency ? Discuss them.

10. Write short notes on any three of the following :—(a) Sterling Balances (b) Specie Points (c) Devaluation (d) Index Numbers (e) International Monetary Fund.

INTER COMMERCE EXAMINATION, 1953.

ELEMENTS OF BANKING

First Paper

(Money, Currency and Exchange)

Answer any five questions. All questions carry equal marks.

1. Explain what you mean by Money, and discuss the various functions that it has to perform in modern society.

2. Why is the right to issue notes allowed only to the Reserve Bank of India ? What and how is the issue strictly regulated ? Discuss.

3 Explain what you mean by 'foreign exchanges'. How is the rate of exchange determined between two countries both of whom are on a paper standard ? Explain.

4. Describe the economic and social effects of changing prices. Do you prefer rising or falling prices, and why ?

5. Give a critical estimate of the Quantity Theory of Money.

6. What were the main recommendations of the Hilton-Young Commission ? How far were these adopted by the Government of India ?

7. What are Index Numbers ? How do these help in measuring changes in the value of money ? Is such a measurement perfect ?

8. Explain Greham's law and indicate its limitations.

9. Discuss the essential features of the present-day Indian currency system and show how the convertibility of the paper money is maintained.

10. Write critical notes on any two of the following :—

(a) Mint Par of Exchange.

(b) Gold Bullion Standard.

(c) Qualities of a money material.

(d) Monetary Standards.

U. P. BOARD

INTER COMMERCE EXAMINATIOM, 1952.

BANKING (Advanced)

First Paper

(Money, Currency and Exchange)

Time—Three hours   Full Marks—50

N.B.—Only five questions are to be attempted. All questions carry equal marks.

1. What are the inconveniences of barter ? How has the use of money led to the remvoal of these inconveniences ?

2 Describe the characteristics of a good money material. How far are they present in gold and silver ?

3. What are the advantages of the use of cheques? Are they money ?

4. Describe the existing system of note-issue in India. Would you suggest any improvement in it. ?

5. Describe the relative merits and demerits of various kinds of paper money.

6. Distinguish between Gold Currency and Gold Bullion standards. Which of these do you consider better ?

7. Describe the different types of credit instruments used in India.

8. Explain clearly the meaning of 'Devaluation of the Rupee', and describe the circumstances under which the Indian rupee was devalued in 1949.

9. Write short notes on any four of the following :—

(a) Darshani Hundi.

(b) Mint par of exchange.

(c) Exchange control.

(d) Bimetallism.

(e) Standard and token coins.

(f) Deflation.

10. Discuss clearly the theory of foreign exchange.

INTER COMMERCE EXAMINATION, 1953.

BANKING

First Paper

Time—Three Hours Full Marks—50

N. B.—Attempt any five questions. All questions carry equal marks.

1. Define barter and explain its difficulties. How were they removed through the use of money ? Is barter completely non-existent to-day ?

2. Explain the present monetary standard prevailing in India. How is the internal and external stability of Indian currency secured under the system ?

3. Explain inflation and deflation and discuss their economic effects.

4. Explain the meaning of devaluation. Why was the Indian rupee devalued in September, 1949? What have been the economic effects of this step?

5. Define credit and explain its importance in modern times. How does credit differ from capital?

6. What is a credit instrument? Give specimen forms of any two credit instruments in use in India.

7. Explain the main characteristics of the gold exchange standard and give its advantages and disadvantages.

8. "Money is what money does." Elucidate this statement.

9. Write brief notes on any four of the following:-

(a) Fiduciary note issue.
(b) Single vs. multiple note issue.
(c) Hundi.
(d) Legal tender money.
(e) Mint par of exchange.
(f) Bimetallism.
(g) Monometallism.

10. What are the methods of note issue and under what circumstances are they suitable? Are you satisfied with the system of note issue prevailing in India to-day?